डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट

[डा० सिद्धेश्वर वर्मा अभिनन्दन अंक]

शक्ति शर्मा
रामनाथ शास्त्री
श्यामलाल शर्मा

१९६६-६७

डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट

निबन्धावली

[डा० सिद्धेश्वर वर्मा अभिनन्दन अंक]

१९६६-६७

डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट 'निबन्धावली'

डा० सिद्धेश्वर वर्मा अभिनन्दन ग्रंक

Dogri Research Institute 'NIBANDHAVALI'

Dr. Siddheshwar Varma

Felicitation Volume

(Papers read in the Research Institute)

सम्पादक मण्डल :

श्रीमती शक्ति शर्मा

श्री रामनाथ शास्त्री

श्री श्यामलाल शर्मा

द्वितीय प्रकाशन :

१९६७

मूल्य :

पांच रुपये

मुद्रक :

आर० सी० प्रिंटिंग प्रैस, अपर बाजार जम्मू

प्रकाशक :

डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, रघुनाथ मन्दिर जम्मू

(साहित्य तथा ललितकला अकाडमी जम्मू कश्मीर की आर्थिक सहायता के लिये रिसर्च इन्स्टीच्यूट आभारी है।)

अनुक्रमणिका

पद्मभूषणस्य

आचार्य सिद्धेश्वर वर्म्मणो

जन्मोत्सवे शुभाऽऽशंसा:

सरस्वत्या: सुपुत्रोऽसौ
नाना विद्या विशारद:
प्रयोक्तुं यस्तु जानाति
बह्वी भाषा लिपी स्तथा
दर्शने शङ्कराचार्यं
व्याकरणे च पाणिनिम्
साहित्ये कालिदासञ्च
तानेकोऽनुकरोति य:
ध्वनि विज्ञान मर्मज्ञो
भाषा शास्त्र महारथ:
सुधी: सिद्धेश्वरो वर्मा
स जीव्यात् शरद: शतम्

वेदप्रकाश शास्त्री

अपनी ओर से—

डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट के आदरी संरक्षक, पूज्य गुरुदेव पद्मभूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी के तपस्यामय ८०वें जन्म दिवस पर डोगरी भाषी जनता की ओर से 'निबन्धावली' का यह विशेषांक 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' के रूप में अर्पित है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के स्वामी इस तुच्छ भेंट को डोगरी भाषियों और साधकों की 'विनय' के रूप में प्रश्रय दें ऐसी प्रार्थना है। आपने भारतीय भाषाओं के तारिकामण्डित आकाश में इस अलक्षित तथा उपेक्षित डोगरी भाषा की तारिका को अनुसन्धित्सुओं का केन्द्र बिन्दु बना कर, अनुसन्धान के लिये प्रेरित कर तथा उसे मान का पद दिला कर डुग्गर की तथा पार्वतीय प्रदेश की चालीस लाख जनता को अनुगृहीत किया है। आपने पश्चिमोत्तर हिमालय के इस प्रदेश की डोगरी, काश्मीरी, कांगड़ा, भद्रवाही, क्षाली, खासी, पाडरी, भलेसी आदि सताइस भाषाओं का शब्दकोश निर्माण कर के भाषा विज्ञान के क्षेत्र में डोगरी पहाड़ी को अमर स्थान दिला दिया है।

डा० वर्मा वास्तव में सिद्ध पुरुष हैं। महर्षि हैं। गत ६३ वर्षों के अनवरत अध्ययन अध्यापन से, सरस्वती की पूजा तथा शब्द ब्रह्म की उपासना से पुनीत तपः शरीर विद्वानों तथा अनुसन्धान कर्ताओं केलिये प्रकाशस्तम्भ है। ५४ भाषाओं का ज्ञान और पांच भाषाओं के प्रायः समूचे साहित्य पर अधिकार, ९ विश्वविद्यालयों तथा सैंकड़ों विद्वानों के साथ साहित्य दर्शन, भाषा विज्ञान तथा विज्ञान के विषयों पर पत्र व्यवहार ८० वर्ष की आयु

में १४ घण्टे प्रतिदिन नियमित विद्याव्यसन मानवोत्तर गुण हैं जिनके साकार रूप डा० सिद्धेश्वर वर्मा हैं। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण शब्द ब्रह्म की उपासना केलिये समर्पित है।

मेरा हर नफ़स एक सजदा है ज़ाहिद
मेरी ज़िन्दगी ही मेरी बन्दगी है।

उनका जीवन ही उपासना रूप हो गया है। उनका जीवन एक समर्पित जीवन है।

जम्मू में प्रिन्स आव वेल्ज कालेज (अब गान्धी मेमोरियल साईंस कालेज) में आप १९१५ में संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में आये और १९४३ तक अध्यापन कार्य करते रहे। इसी दौरान में आपने रियासत के दूरदराज पहाड़ी स्थानों पर जाकर भाषाओं का अध्ययन किया। जिनमें भद्रवाही, रुधारी, भलेसी और ब्रुशस्की पर लेखमाला एशियाटिक सोसाइटी बंगाल तथा इण्डियन लिंग्विस्टिक्स में बड़ा मान का स्थान पाती रही। अपना व्यक्तिगत व्यय करके इन दुर्गम स्थानों पर भाषाओं के अनुसन्धान के लिये जाना भाषा विज्ञान प्रेम की पराकाष्ठा कही जा सकती है। जीवन के इस उत्तरार्ध में इस मूक साधना का मूल्य आंका गया और १९५७ में भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया। १९६३ में जम्मू कश्मीर सरकार ने ख़िलअत अता की, १९६७ में पटियाला पंजाबी विश्वविद्यालय ने डी० लिट तथा भारत सरकार ने पुनः विद्यावाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया। आज के प्रपंचमय वातावरण में मूकसाधना की भी कदर होती है यह देखकर मन को धैर्य होता हैं कि पृथ्वी में अभी सात्विकता जीवित है।

हुजूमे बुलबुल हुआ चमन में
किया जो गुल ने जमाल पैदा।
कमीं नहीं कदरदां की अकबर
करे तो कोई कमाल पैदा।

१९४१ में डा० वर्मा जी के निदेशन में जम्मू प्रिन्स आव वेल्ज कालेज में लिंग्विस्टिक क्लास प्रारम्भ हुई। जम्मू कश्मीर की भाषाओं का सर्वेक्षण डा० साहब की दृष्टि में था। श्री तेजराम सहचर तथा श्री श्यामलाल शर्मा इस क्लास के स्नातक हैं। श्री सहचर रणवीर मल्टीलेट्रल हायर सैकण्डरी स्कूल के प्रिन्सीपल हैं और श्री श्यामलाल शर्मा डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट के

मन्त्री हैं जम्मू कश्मीर ने Bachelor of Linguistics का कोर्स समाप्त होने के पश्चात् आगे क्लास चालू न रखी। डा० वर्मा रिटायर होकर लाहौर चले गये और उन्होंने अपनी सेवायें विश्वेश्वरानन्द रिसर्च इन्स्टीच्यूट को निःशुल्क अर्पित करदीं।

वर्तमान अंक में डा० साहब का चित्र अपने सहयोगी श्री योगिन्दर सिंह 'योगी' की कृपा से उपलब्ध हुआ है। यह चित्र १९४३ का है जिस समय डा० साहब प्रिन्स आव वेल्ज कालेज से रिटायर हुए थे।

वर्तमान अभिनन्दन अंक के दो भाग हैं। पहले में डा० वर्मा जी के जीवनवृत्त सम्बन्धी डा० धर्मस्वरूप गुप्त तथा प्रो० गौरीशंकर जी के लेख हैं। डा० वर्मा जी के प्रकाशित साहित्य की सूची है तथा डा० साहब का अपना लेख है।

दूसरे भाग में डोगरी भाषा तथा उसके भिन्न २ पहलुओं पर इन्स्टीच्यूट के तत्वावधान में पढ़े गये लेख हैं। प्रयत्न किया गया है कि डोगरी भाषा और डोगरी भाषा विज्ञान सम्बन्धी लेखों का यह पुष्प गुच्छ भाषा विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित तथा सरस्वती पुत्र को भेंट किया जाये। रिसर्च इन्स्टीच्यूट की ओर से अपने आदरी संरक्षक डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी को उनके ८०वें जन्म दिवस पर हार्दिक वधाई है और श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी के शब्दों में डा० वर्मा 'जीव्यात् शरदः शतम्' तथा अपने परिवार सहित पूर्ण आयु का सुख प्राप्त करें ऐसी प्रभु से प्रार्थना है।

श्यामलाल शर्मा
मन्त्री—डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट
जम्मू।

प्रथम भाग

मन्त्री हैं जम्मू कश्मीर ने Bachelor of Linguistics का कोर्स समाप्त होने के पश्चात् आगे क्लास चालू न रखी। डा० वर्मा रिटायर होकर लाहौर चले गये और उन्होंने अपनी सेवायें विश्वेश्वरानन्द रिसर्च इन्स्टीच्यूट को निःशुल्क अर्पित करदीं।

वर्तमान अंक में डा० साहब का चित्र अपने सहयोगी श्री योगिन्दर सिंह 'योगी' की कृपा से उपलब्ध हुआ है। यह चित्र १९४३ का है जिस समय डा० साहब प्रिन्स आव वेल्ज कालेज से रिटायर हुए थे।

वर्तमान अभिनन्दन अंक के दो भाग हैं। पहले में डा० वर्मा जी के जीवनवृत्त सम्बन्धी डा० धर्मस्वरूप गुप्त तथा प्रो० गौरीशंकर जी के लेख हैं। डा० वर्मा जी के प्रकाशित साहित्य की सूची है तथा डा० साहब का अपना लेख है।

दूसरे भाग में डोगरी भाषा तथा उसके भिन्न २ पहलुओं पर इन्स्टीच्यूट के तत्वावधान में पढ़े गये लेख हैं। प्रयत्न किया गया है कि डोगरी भाषा और डोगरी भाषा विज्ञान सम्बन्धी लेखों का यह पुष्प गुच्छ भाषा विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित तथा सरस्वती पुत्र को भेंट किया जाये। रिसर्च इन्स्टीच्यूट की ओर से अपने आदरी संरक्षक डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी को उनके ८०वें जन्म दिवस पर हार्दिक वधाई है और श्री वेदप्रकाश शास्त्री जी के शब्दों में डा० वर्मा 'जीव्यात् शरदः शतम्' तथा अपने परिवार सहित पूर्ण आयु का सुख प्राप्त करें ऐसी प्रभु से प्रार्थना है।

श्यामलाल शर्मा
मन्त्री—डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट
जम्मू।

प्रथम भाग

पद्मभूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा १९४३ में

(श्री योगिन्दर सिंह योगी के सौजन्य से

— धर्मस्वरूप गुप्त

डा० सिद्धेश्वर वर्मा

- जन्म स्थान : रावलपिण्डी (पश्चिमी पाकिस्तान)
- जन्म-तिथि : नवम्बर ३, १८८७ ई०
- **उपाधियां एवं सम्मान**

डी० लिट्० सन् १९२७ (लन्दन विश्वविद्यालय)

पद्म-भूषण सन् १९५७ ई० (भारत सरकार)

खिलअ्रत (रोब आफ आनर) : (जम्मू-कश्मीर सरकार) १९६३

डी० लिट्० —(पंजाबी-विश्वविद्यालय पटियाला) सन् १९६७
राष्ट्रपति पुरस्कार (भारत सरकार) १९६७

भारतीय-भाषाओं में गहरी पैठ रखने तथा संसार की विभिन्न चौवन भाषाओं को जानने वाले; पांच भाषाओं के साहित्य की सुप्रसिद्ध अधिकतम पुस्तकों का जिन्होंने चिंतन-मनन किया है ऐसे मनीषी के लिये महासागर का प्रतीक बहुत हल्का प्रतीत होता है। हिमालय की पर्वत शृंखलाओं में पर्यटन

करने वाले इस यशस्वी भाषा-विज्ञानी का जन्म रावलपिण्डी (अब पश्चिमी पाकिस्तान में) सन् १८८७ ई० नम्बर ३, को हुआ। इनका प्रारम्भिक नाम पिंडीदास था। यद्यपि डा० वर्मा की शिक्षा-दीक्षा उर्दू के माध्यम से हुई तथापि उन्होंने लड़कपन में ही लघु-कौमुदी कण्ठस्थ कर डाली थी जिससे उनके मन में भाषा-विज्ञान के प्रति अनुराग का बीजारोपण हुआ था। आज इस वयोवृद्ध मनीषी को देखकर सम्भवतः कोई ऐसा समझे कि इनकी प्रवृत्ति रूढ़िगत परम्परा-युक्त साहित्यकारों की सी होगी परन्तु उनसे बातचीत करने पर विदित होगा कि यह तो क्षण-क्षण में होने वाले परिवर्तन को भी सदा-अस्थिर ही स्वीकार करते हैं।

आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों - कवि की भाषा, प्रतीकात्मक शब्दावली, बिम्ब-विधान, साहित्य एवं समाज में अस्तित्ववाद, साहित्य में भौतिकवादी प्रवृत्तियों का अंकन से लेकर दार्शनिक समस्याओं —परमतत्व का रहस्य, परमतत्व की खोज, पर, एवं हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी भाषाओं की साहित्यिक उपलब्धियों से उनकी भाषा-वैज्ञानिक स्थिति, फ्रैंच, जर्मन स्पेनिश साहित्य में होने वाले परिवर्तनों तथा राजनैतिक वितण्डावाद, विश्वविद्यालयों के भौतिक-वादी दृष्टिकोण, शिक्षा-प्रणाली से सामाजिक अनास्थाओं एवं कुप्रभावों पर उनकी दृष्टि जब पड़ती है तो अनेकानेक सूक्ष्म रहस्यों को उद्‌घाटित करती चलती है। उनकी दृष्टि में आज विश्व-विद्यालयों में शिक्षा का जो स्तर गिरा है—उसका कारण विद्यार्थियों की अनुशासन-हीनता नहीं -अपितु मनोवैज्ञानिक कारण हैं- डिग्रियों के वितरण तक का; जिसे भौतिकवादी प्रवृत्तियों में आस्था रखने वाला युवक बिना किसी ज्ञान की उपलब्धि के—तत्व की खोज से उदासीन, हो इधर-उधर भाग रहा हैं। यदि वास्तव में बालकों को शिक्षित करना है तो समस्त शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। मूल में कारण यही था जिसके परिणामस्वरूप डा० वर्मा ने १९१३ ई० में पंजाब-विश्वविद्यालय लाहौर से एम० ए० (इतिहास) की डिग्री पाने के उपरान्त भी अपने अध्ययन कार्य में अन्तर पड़ने पर, अपने समय में उच्चतम पद को भी ठुकरा दिया। शाही दरबार शाहपुर (राजस्थान) में आंशिक रूप से श्री राजा नाहर सिंह के निजी सचिव तथा आंशिक रूप से उनके पौत्र राजकुमार शत्रुञ्जय जयसिंह के के अध्यापक के रूप में वर्ष भर कार्य करने तथा गुजरांवाला में सन् १९१४ में हिन्दू हाई स्कूल के मुख्याध्यापक के रूप में कार्य करते समय उन्हें जब यह

अनुभव हुआ कि उनके अध्ययन में इस प्रकार का वातावरण उपयुक्त नहीं तो उन्होंने दोनों ही स्थानों से अपने आपकी मुक्ति दिलवा दी । उसी वर्ष वे प्रिंस आफ वेल्ज़ कालेज जम्मू-काशमीर में संस्कृत के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए । तब से १९४३ ई० तक वे इसी पद पर सुशोभित रहे ।

सन् १९२३ ई० में डा० वर्मा ने विभिन्न विदेशी भाषाओं ग्रीक फ्रैंच, जर्मन, रूसी आदि का विशद अध्ययन कर लिया था; परिणाम स्वरूप १९२४ ई० में डा० साहब को विदेश में अध्ययन करने के लिए 'लैंग्वेज स्कालर शिप' भारत सरकार की ओर से मिला । प्रो० आर० एल० टर्नर तथा प्रो० डेनियल जोन्स जैसे मेधावी पाश्चात्य विद्वानों के साथ तीन वर्ष अनवरत परिश्रम करने पर डा० सिद्धेश्वर वर्मा को 'भारतीय व्याकरण शास्त्रियों के ध्वन्यात्मक पर्यवेक्षण का सूक्ष्म विवेचन' विषय पर डी० लिट् की उपाधि से सुशोभित एवं सम्मानित किया गया ।

भारतवर्ष में लौटने के उपरान्त डा० वर्मा ने भारतीय-भाषाओं के अध्ययन में भगीरथ-प्रयत्न किया । उन्होंने उन समस्त हिमालय की पर्वतीय भाषाओं एवं बोलियों का गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया जिनके सम्बन्ध में भाषा-वैज्ञानिक संसार अभी तक अपरिचित तथा अन्धकार में था । वे अब तक २८ पवर्तीय भाषा समूह, भद्रवाही, खशाली, खासी, पहाड़ी, भलेसी, दर्दियन, आदि पर शब्द-कोष तैयार कर चुके हैं तथा पिपलांवालवी, अम्बालवी, कुमाऊनी, डोगरी आदि बोलियों पर काम करवा रहे हैं । चार नवम्बर १९४३ ई० में काशमीर-प्रदेश से अवकाश प्राप्त करने के उपरान्त उन्होंने विश्वेश्वरानन्द वैदिक-शोध संस्थान को अवैतनिक रूप से अपनी सेवायें समर्पित की जबकि चार वर्ष तक बे मोनियर-विलियम संस्कृत-शब्द-कोष को तैयार करने में अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय-संस्कृति अकादमी में व्यस्त रहे । सन् १९५२ में भारत सरकार ने अंग्रेज़ी-हिन्दी पारिभाषिक कोष तैयार करने के लिए विशेष अफसर के रूप में नियुक्त किया । सन् १९६० में इस पद से भी त्याग पत्र दे दिया । तभी से वे अपनी पुत्री के पास चण्डीगढ़ (२८४, सैक्टर १६ ए) में ठहरे हुए हैं ।

प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की मार्च १९६६ में जब उनसे भेंट हुई तो तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह एक समवयस्क मित्र के पास बैठा बातचीत कर रहा है । अब भी सप्ताह में एक बार मैं उनके पास जाता हूं और

अपने विषय कविता में अर्थ की समस्या, पर बातचीत करता हूं तो ऐसा विदित होता है कि सब कुछ सहज हो गया है। प्रत्येक गुत्थि को डा० वर्मा इस तरह सुलझाते हैं जैसे समाधि-स्थित ऋषि-मुनि अपने अध्ययन से अपने शिष्यों को समझाया करते थे। जब मैं कभी उनसे अन्तर्राष्ट्रीयता की बात करता हूं तो झट से वे उत्तर दे देते हैं, "भाषा-शास्त्र का अन्त पतञ्जलि मुनि, तर्क-शात्र व हेतुवाद का अन्त महात्मा बुद्ध तथा अन्तर्राष्ट्रीयता का अन्त गुरू नानक देव के साथ ही हो गया।" उनकी उक्ति कोरी बौद्धिक कल्पना या व्यायाम न होकर उनके अध्ययन-चिंतन एवं मनन का व्यावहारिक रूप तथा तथ्य है। वे यदि सोचते हैं कि आज अन्तर्राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में सोचना उपाहासास्पद है जब तक कि हम अपने प्रति ईमानदार नहीं है तो उचित ही है। आज भी हमारे अन्तर्गत जातीयता आदि, प्रान्तीयता — राजस्थानी वनारसी, मद्रासी, पंजाबी आदि की भावना समाप्त नहीं हो पाई हम राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में क्या उपयुक्त सोच सकते हैं।

शब्द-ब्रह्मपरिषद् —

सन् १९६२ ई० से डा० सिद्धेश्वर वर्मा के संरक्षण में 'शब्द-ब्रह्म परिषद्' अनेकानेक समस्याओं पर विचार कर चुकी है। 'जपजी साहब में इक ओंकार (ॐ) की परिकल्पना का दार्शनिक रूप क्या है, परमतत्व वस्तुतः प्रत्यक्ष सत्ता एवं अप्रत्यक्ष का सामूहिक रूप है' महा-कवि गालिब को शब्दावली; 'कमायूं बोली की उच्चारण अवस्था', 'आचार मुरब्बा' 'आधुनिक साहित्य में अस्तित्वशील तत्व,' 'कवि की मानसिक प्रवृत्ति,' 'कवि की भाषा,' 'डोगरी साहित्य में बिम्ब-योजना' साहित्य में सुपरनैचुरल [आधिदैविक] तत्व', 'भारतीय शिक्षा-प्रणाली तथा उसमें सुधार की आवश्यकता', आदि विषयों पर महत्वपूर्ण निष्कर्षों से जगत को अवगत करवाया है। इस परिषद् के सदस्यों की संख्या बहुत ही सीमित है। इसमें वही प्रवेश पा तकता है जो डा० साहब की कसौटी पर खरा उतरता है— जिसे जिज्ञासा एवं तत्व के लिए तड़प है।

डा० वर्मा के साथ आजकल भी दस शोधकर्त्ता कार्य कर रहे हैं। डा० साहब, ८०वें वर्ष में पदार्पण करने पर भी चौदह घण्टे काम करते हैं— छः घण्टे तो विभिम्न शोधार्थियों के साथ बातचीत एवं अध्ययन करने में शेष स्वयं लिखने-पढ़ने में। सात वर्ष हो चले हैं उन्हें अन्न ग्रहण किये हुए।

उनके भोज्य हैं फल व दूध से बने पदार्थ । ऐसे योगी से अभी भी हिन्दी साहित्य एवं अन्य भाषाओं को बड़ी आशा है । पंजाबी-विश्वविद्यालय ने सन् १९६७ में डा० साहब को डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया है । प्रभु से उनकी दीर्घायु की अञ्जलि वद्ध प्रार्थना की जाती है ।

डा० वर्मा जी के प्रकाशित ग्रन्थ तथा लेख

१ श्वेताश्वरोपनिषद भूमिका और टिप्पणी सहित इलाहाबाद १९१६ पृ० ११८

२ माघकृत शिशुपालवध, सम्पादित तथा अनूदित, श्री बूल्नर महोदय की भूमिका सहित लाहौर, १९१६, पृ० ४, २१६

३ क्रिटिकल स्टडीज इन दी फोनेटिक अवजर्वेशन्ज ऑफ इण्डियन ग्रामेरियन्ज़, लण्डन, १९२९, पृ० १३, १८० इण्डियन एडीशन दिल्ली १९६२, पृ० १५ १८०

४ कालचक्र (भारतीय-समय सिद्धान्त) नई दिल्ली, १९३६ पृ० ५३

५ आर्याई जुबानें (उर्दू) हैदराबाद १९४२, पृ० ८८

६ इटीमालोजीज आफ यास्क, हुश्यारपुर १९५३, पृ० १३. २४८

लेख—

१ निघण्टु तथा निरुक्त (आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस) १९१९ (ii) ६८–७६

२ भाषा के भारतीय दर्शन शास्त्र में अर्थ का विवेचन वेदिक मैगजीन जनवरी १९२४जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी १९२५ २१–३५

३ हिन्दी की साहित्यिक कृतियों में अनुनासिकत्व, जर्नल डिपार्टमेण्ट लैटर्ज़ १८ (१९२९) १–२०

४ सामवेद के उच्चारण का अध्ययन, आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस–६ (१९३०) ५१७—२८

५ सामवेद का निदान सूत्र आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस–६ (१९३०) ५५१—५४

६ भद्रवाही में नपुंसक लिंग (इण्डियन लिंग्विस्टिक्स) १ (१९३१)—३, ३८
आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस–५ (१९२८) सम्रीज आवपेपर्ज ३१-३२

७ बुशस्की लेख माला (इण्डियन लिंग्विस्टिक्स—१ (१९३१) ५–६, ६–३२

८ भाषा विज्ञान का वर्तमान तथा भविष्य—अध्यक्षीय भाषण, फिलासफी तथा व्याकरण विभाग आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस बड़ोदा ७ (९३३) १५९—६४

९ क्षीरस्वामी की अमरकोश पर टीका में कुछ नये संस्कृत धातु आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस ८ (१९३५) ७६५–६८

१० लाह्न्दा की भाषकी, जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल २ (१९३६) ४७—११८

११ रुधारी बोली इण्डियन लिंग्विस्टिक्स ६ (१९३६) २–६; ४३९–५१७

१२ ऋग्वेद में सम्प्रदान की व्याकरण सम्मति, गंगानाथ झा संस्मरण अंक (इलाहाबाद १९२७) ४३५—५६

१३ क्षाली भाषा समूह की बोलियां, जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ४ (१९३८) १—६५
सम्रीज आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस ६ (१९३०) ६८७—८८

१४ भारतीय भाषायें अन्तर्राष्ट्रीय लिपि में, दर्दो पहाड़ी, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स ७ (१९३९) ८८—९७

१५ मेरे बच्चे की भाषा का निर्माण, भारतीय और इरानियन अध्ययन सम्बन्धी ग्रन्थ सर डेनिसन रास को समर्पित (बम्बई १९३९) ४०४—४१०

१६ ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा में उपसर्गों की प्रयोग पद्धत्ति N I A २ (१९३९–४०) ७४८—५६

१७ इण्डो युरोपियन gm-sko है या gm shko N I A ३ (१९४०—४१) ३८३—३८५

१८ भलेसी बोली, संक्षेप : आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस १० (१९४०) सम्रीज आफ पेपर्ज १९७

१९ अर्बी भाषा एक संस्कृतज्ञ की दृष्टि में, संक्षेप : आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस ११ (१९४) सम्रीज आफ पेपर्ज १७१—७६

२० भलेसी बोली, संक्षेप : आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस ११ (१०४१) सम्रीज आफ पेपर्ज २१४

२१ भारतवर्ष की जन सम्पर्क की भाषा की समस्या के सम्बन्ध में प्रश्नावली संक्षेप : आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस ११ (१९४१) सम्रीज आफ पेपर्ज २२०—२४

२२ बुशस्की बोलियों का भाषा शास्त्रीय अध्ययन जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ७ (१९४१) १३६ –७३

२३ ब्राह्मण ग्रन्भों की भाषा में संस्कृत 'अर्धम्' उपसर्ग के रूप में इण्डालोजी अध्ययन ग्रन्थ, श्री पी० वी० काने को समर्पित (पूना १९४१) ५४५—४६

२४ ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा में उपसर्ग का स्थान ABORI २३ (१९४२) ६३३— ५६

२५ हिन्दी उर्दू या हिन्दुस्तानी, सबरस (हैदराबाद) अक्तूबर १९४२

२६ उर्दू में गैर जबानों का तलफ्फुज कैसे किया जाये, सबरस (१९४३)

२७ भद्रवाही में बहिरर्थी कारक (elative case) जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ११ (१९४५) ८५—८६

२८ भारतीय भाषायें फोनैटिक लिपि में ११, जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ११ (१८७१) ६१—६६

२६ वेदिक सुर की मुख प्रवृत्तियां JUPHS १८ (१९४५) ६—१५

३० ब्राह्मण ग्रन्थों में संज्ञात्मक उपसर्गों के तुलनात्मक अर्थ, भारत कौमुदी डा० रा० क० मुकर्जी के सम्मान में प्रकाशित ग्रन्थ २ (इलाहाबाद) १९४७

३१ भलेसी बोली, जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल L—४ (१९४८) पृ० ६४

३२ संस्कृत भाषा— विविक्ति की संकल्पना के माध्यम के रूप में, इण्डियन लिग्विस्ढिक्स ११ (१९४६

३३ अध्यक्षीय भाषण इण्डियन लिंग्विस्टिक सैक्शन पन्द्रहवां अधिवेशन आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस, बम्बई (१९४६) १५६—७१

३४ शब्द और मानव ज्ञान, कल्पना (हैदराबाद), १९५० ७—८

३५ वैदिक सुर और पाणिनि की व्याख्याएं, जर्नल ब० ब० रायल एशियाटिक सोसाइटी (१९५०–५१) १–६

संक्षेप आल इण्डिया ओरियण्डल कांफ्रेंस १५वां अधिवेशन (१९४९) सम्रीज आफ पेपर्ज १७

३६ छन्दों की वैदिक संकल्पना, आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस १६वा अधिवेशन (१ ५३) ii. १०–११

३७ मानव विचार और भाषा, कल्पना २ (१९४१) ६–११

३८ भाषा, ध्वनि शास्त्र और उच्चारण, राष्ट्र भारती (जून) १९५२ ३३५–३७

३६ व्याकरण क्या होता है ? विश्वज्योति १. ४. (जून १९५२) ४१–३२

४० गोण्डी पर इण्डो आर्यन की छाप, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स १२ (१९५२), १–७

४१ वर्ण मीमांसा, कल्पना ३ (१९५२) ४६३–६५

४२ हिन्दी ध्वनियों की तुलनात्मक आवृत्ति, संक्षेप : आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस १७ (१९५३) सम्रीज आफ पेपर्ज १०३ – ४

४३ वैदिक भाषा, पाणिनि का मूल्य निर्धारण करने की योजना, सक्षेप आल इण्डिया ओरियण्टल कांफ्रेंस १७ (१९५३) सम्रीज आफ पेपर्ज़ १०४–५

४४ सिद्धान्तकौमुदी की वैदिक परिमितता संक्षेप (आ० इ० ओ० कां) १७ (१९५३) सम्रीज आफ पेपर्ज (१०५–६)

४५ भ रत की जन भाषा के लिये शब्दावली, लक्ष्मण स्वरूप समारक ग्रन्थ (हुश्यारपुर) (१९५४) ३४–३७

४६ महाराजा गुलाबसिंह और उनको जागरुक करने वाली स्त्री नमीं चेतना (जम्मू) ३ (१९५४) ४३–४८

४७ डोंगरी का भारतीय भाषाओं में स्थान, नमीं चेतना (जम्मू) ४१–४४

४८ श्री श्यामलाल शर्मा द्वारा अनूदित बताल पचीसी पर भाषा वैज्ञाणिक टिप्पणी, ब्रह्मवाणी (जम्मू)

४९ भाषा ध्वनि व्यञ्जना का मूल तत्व, राजर्षि अभिनन्दन ग्रन्थ ५०७–८

५० कश्मीरी भाषा का अक्षर विन्यास, इन आनर आफ डेनियल जोन्ज (१९५६) लण्डन

५१ संयुक्त भाषा में तामिल स्वर, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स १४ (१९५४) iii. २१–२४

५२ वर्ण उच्चारण, कल्पना. ६, vii. (जुलाई १९५५) ७५–७८

५३ हिन्दी ध्वनियों की तुलनात्मक आवृत्ति, देवनागर (१९५१) १०३–८

५४ भाषा और साहित्य, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स १६ (१९५५) सुनीतिकुमार चैटर्जी रजतजयन्ती ग्रन्थ २०३–८

५५ भारतीय भाषाओं में बोले जाने वाले शब्दों की मात्रा पर विहगम दृष्टि, लिंग्विस्टिक सर्कल आफ दिल्ली (१९५५) १३–१६

५६ हिमालय में मेरा बोलियों का शिकार, लिंग्विस्टिक सर्कल आफ दिल्ली (१९५६) १–६

५७ पश्चिमोत्तर भारत में अंग्रेजी का उच्चारण, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स १८ (१९५६) ८६—८८

५८ उच्चारण और वायु (कल्पना) ८ viii (अक्तूबर १९५७) १—४

५९ कश्मीरी के पुरावशेष एक अनुसन्धानात्मक प्रयास, लिंग्विस्टिक सर्कल आफ दिल्ली (१९५७) ३–७

६० भारत की भाषाओं में पत्नी की बहन (साली) के पति (साढू) के लिये शब्द, एस० के० बेल्वैकर अभिनन्दन ग्रन्थ (बनारस १९५७) ९९—१०१

६१ शुभ कामना, भारतीय साहित्य (आगरा) २ (१९५४) ४६१—६३

६२ तामिल भाषा की संकल्पनात्मक मशीनरी, एक अनुसन्धानात्मक प्रयास, बी० एम० ओ० ए० एस० २० (१९५७) ५५५—६०

६३ हिमालय में मेरा बोलियों का शिकार, भारतीय साहित्य ४ (१९५८) २८५–९०

६४ भारत की भाषाओं में लिंग विधान, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स १८ (१९५८) आर० एल० टर्नर रजत जयन्ती ग्रन्थ अंक १

८६—६१

६५ उच्चारण यन्त्र, कल्पना १० ii (फर्वरी १६५६) १–३

६६ भाषा विज्ञान पर बौद्धिक विचार विमर्श लिंग्विस्टिक सर्कल आफ दिल्ली (१६५६) २६– ३१

६७ आधुनिक भारतीय भाषाओं में कारक की कल्पना, बी० डी० सी० आर० आई० २० (१६६०) एस० के० डे० अभिनन्दन ग्रन्थ ३८७–८८

६८ संस्कृत भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली में 'मूर्त' का स्थान, पी० के० गोडे अभिनन्दन ग्रन्थ (पूना १६६०) ४४६— ५३

६६ क्या हिन्दी कवर्ग कण्ठय ध्वनियां हैं ? हिन्दी अनुशीलन हिन्दी परिषद प्रयाग धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक १६६०, ५१–५२

७० महाकवि गालिब की शब्दावली, भाषा (दिल्ली) जून १६६३ १५२–५५ सितम्बर १६६३ १६३–६८, दिसम्बर १६६३ १७२–७८

७१ पतञ्जलि के महाभाष्य में वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रस्तुति, विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल १ (१६६३) १–३६

७२ डा० रघुवीर (१६०२– १६६३) निधन सूचक लेख (वि० इ० ज०) १ (१६६३) २५६–६०

७३ डोगरी बोलियों का तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय साहित्य ८ iv (अक्तूबर १६६३) १–३

६४ अम्बालवी बोली में बलाघात और अक्षर विन्यास में व्यञ्जनों स्थान, इण्डियन लिंग्विस्टिक्स २५ (१३३४, बाबूराम सैक्सेना अभिनन्दस ग्रन्थ ६·–६६

७५ लम्बोदर जुत्शी (१८६ –१६४४) निधन सूचक लेख विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजीकल जर्नल २ (१६६४) २८२–८३

७६ पश्चिमोत्तर हिमालय की हिन्दी आर्यायी भाषायें वि० इ० ज० २ (१६६४) २३६–४१

७७ डोगरी में कवि कल्पना, निबन्धावली (डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट जम्मू, १६६५)

७८ पश्चिमोत्तर हिमालय की हिन्दी आर्यायी भाषाओं में सामाजिक वाक्यांश वि० इ० ज० ६ (१६६) १-४

७६ पश्चिमोत्तर हिमालय की हिन्दी आर्यायी भाषाओं में सामाजिक प्रवृत्तियां, वि० इ० ज० ३ (६६५) १५६-६२

८० हिमालयकी की तराई की हिन्दी आर्यायी भाषाओं में महाप्राणत्व, इण्यिन लिंग्विस्टिक्स २७ (१६६६) सुकुमारसेन अभिनन्दन ग्रन्थ

८१ पश्चिमोत्तर हिमालय की भाषाओं में प्राचीन परिभाषा (शब्दावली) वि० इ० ज० ४ १६६६) १-४

८२ कुमांऊनी भाषा में बलाघात वर्णनीय विशेषताएं (डा० देवी दत्त शर्मा के सहयोग से) वि० इ० ज० (१६६६) १६७—७२

८३ तामिल भाषा में उपालिजिहवी पश्चमूर्धीय संघर्षी, विश्व उच्चारण शास्त्रीय सम्मेलन (फोनेटिक सोसाइटी आफ जापान (१६६६) ५१६-२४

भूमिकाएं, प्राक्कथन् तथा प्रारम्भिकाएं

१ गीतगोविन्द की भूमिका, संपादक विनयमोहन शर्मा (दिल्ली १६५५) पृ० १—१५

२ प्राक्कथन : रामायण एक भाषाशास्त्रीय अध्ययन ले० सत्यव्रत (दिल्ल १६६४) पृ० १७—२३

३ प्राक्कथन राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण ले० देवी दत्त शर्मा इलाहावाद ६६६६) पृ० ४

समीक्षाएं

१ अवधी का विकास ले० बाबूराम सक्सेना एम० आइ० ए० १ (१६६८—६६) पृ० ३४५ ४८

२ सामान्य भाषा विज्ञान ले० बाबूराम सक्सेना एन० आई० ए० ६ (दिल्ली १९४३–४४) पृ० १६३—६८

३ दक्खनी हिन्दी ले० बाबू राम सक्सेना ए० बी० ओ० आर० आई० ३३ (१९५२) पृ० २७८ ८२

४ अर्थ विज्ञान ले० बाबूराम सक्सेना ए० बी० ओ० आर० आई० ३३ (१९५२) २८२—९२

५ ध्वनि विज्ञान ले० गो० बि० ढल्ल लिंग्विस्टिक सर्कल दिल्ली (१९५७) पृ० ३७—३९

६ दि आयरिश आव रिङ, ले० ब्रिएटनाख लिंग्विस्टिक सर्कल आव दिल्ली (१९५८) पृ० ३२

७ ऋग्वेद की सोम ऋचाएं ले० एस० एस० भावे अंक २ जे० एस० एस० यूटिवर्सिटी १० (१९६१) पृ० १०८–१२

८ बित्राग त्सूर वेदिशन लैक्सीकोग्राफी फान आर्येन्द्र शर्मा विश्वेश्वरानन्द इण्डो लाजिकल जर्नल १ (१९६३) १५४–५६

९ ए कम्पैरेटिव डिक्शनरी आव इण्डो आर्यन लैंग्वेजिज़ सं० श्री आर० एल० टर्नर अंक १ विश्वेश्वरानन्द इडोलाजिकल जर्नल २ (१९६४) १७४–८४

१० संस्कृत काव्य शास्त्र ले० प्रेम प्रकाश सिंह

११ कुतबनकृत मृगावती सं० एस० एस० मिश्र सम्मेलन पत्रिका (इलाहाबाद)

१२ भाषा और भाषिकी ले० देवीशंकर द्विवेदी 'माध्यम' (इलाहाबाद) २ ६ (९६ ९७)

१३ इनडैक्स टु पुरनानूरु ले० सुब्रह्मण्यम विश्वेश्वरानन्द इण्डो-लाजिकल जर्नल २ (१९६४) १९७–९८

१४ इण्डियन थीयरीज आव मीनिंग ले० के० कुनजुन्नी राजा विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल २ (११६४) ३८६–०५

१५ ऋग्वेद की सोम ऋचाएं ले० एस० एस० भावे अंक ३
विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल ४ (१९६४) ९४–१०५

विश्वेश्वरानन्द इन्डोलाजिकल जर्नल
वर्ष अंक १ मार्च १९६७
डा० सिद्धेश्वर वर्मा विशेषांक से साभार उद्धृत

—गौरीशंकर

अभिनन्दन

पञाह ते इक बरा बीती गिआ ते मेरा आदर हिरख मान ते स्नेह प्रोफैसर वर्मा जी दै वास्ते इन्नें बरें च दिनोंदिन बददा गै गिया। भाएं मिं बी उमरी च उंदे कोला बारां बरे गै घट्ट आं पर विद्या च ज्ञानै च ते अनुभवै च ओह् मेरे कोला कई सदियां अग्गैं न। पञाएं बरें दी जान-पछान कोई घट्ट नईं। दो पुश्तां बीती गईयां। तौइया दे पुलै हेठ किन्ना पानी बगी गिया ते बावे दे किले उप्पर किन्नीयां बां ते ह्लेरियां झुल्ली गईयां। जमाना मिं ते सिद्धेश्वर होरें बदलोंदा ते पासे परतदा ते पलेशटे मारदा दिक्खिया। १९१६ दी जम्मुआं ते १९६७ दी जम्मुआं च जमीन समानै दा फरक होई गिआ। राजे दी मण्डिआ राजे दा राज नईं रिआ। जम्मुआं दी बादी इन्नी संघनी होई गई जे तिल भर धरने दी जगह नईं रेई। शैरै च ते

हुन गलियें च बी बजार बनी गए । कोई खूंजा बी नईं लबदा जित्थें कोई हट्‌टी नईं बनी दी होऐ । दस्स बारां दुकानां साढ़ी गै निक्की जिन्नी गली च मकानें चा कड्डि लैतिआं न । ते रघुनाथ मंदिरै दी संगले आली ड्योढी आली साढ़ी गली केड्डी कऐ । इए साब होर थां बी सारे शैरे च ऐ । पलेटा नेहरा रामनगर तवी पार लोक गै लोक, मकान गै मकान बजार गै बजार, साह लैने दी बी बिथ नईं रई । रघुनाथ बजारै च जनता दी कांग आई दी दी रहंदी है ते कुसै लै सड़क पार करनी बी औखी होई जंदी है । इधरा बामने दी बड़ी कालूचक, मीरां साहब ते बावे तीक नमीं जम्मुआं वस्सी दी लबदी उधरा दमाना पलौड़ा ते घौ ते तिल्लो दा तला पुरानी जम्मुआ किन्नै इक्कै चक्क होई गए । पाकिस्तान बनने किन्नै जम्मु स्यालकोट गड्डी दी लैन बी नईं रै । नवांशैर ते बशना दी महिमा होर बधी गै ।

जम्मुआं च प्रिन्स आफ वेल्ज़ कालिज दा नां गवर्नमैंण्ट गांधी मेमोरिअल कालिज होई गिआ । इक होर बी कालिज नमीं जम्मुआं च पुलैपार बनी गिआ जिसदा नां मौलाना आज़ाद मेमोरिअल कालिज ए । इक गवर्नमैंण्ट महिला कालिज बी पलेटा च पुरानी मेखचीना च ए । पलेट बी हुन भलियां भरोची दी है । १९१६ च मिं श्रीरणवीर हाई स्कूला चा दसमीं पास कीती । हैडमास्टर साड़े रजादा नरिंजनदास से ओ अंग्रेजी पढ़ांदे हे । Lamb's Tales from Shakespeare, Gulliver's Voyage, Robinson Crusoe ते Golden Treasury उंदे कोला पढ़ी । मास्टर रामदित्ता मल्ल, मास्टर दीनानाथ गंदोत्रा, मास्टर ईश्वरदास मिंगी पण्डित हृषीकेश जी होर बी असें गी पढ़ांदे हे । समा जंदे चिर नईं लगदा । १९१६ च मिं कालिज दाखिल होआ । राब्सन साहिब प्रिन्सिपल से ने दादीना साहिब वाइस प्रिन्सिपल, प्रोफैसर साहिबान वादिया, सान्याल, बैनर्जी, बोस, कुण्डु, कपूर, मघर मलानी, सूरी, खोसला, धवन, हूजा, कर्मचन्द उस वेल्लै अपने अपने मजमून पढ़ांदे से ते उंदे कन्नै गै प्रोफैसर सिद्धेश्वर वर्मा होर संस्कृत । उस वेलै उर्दू हिंदी पंजाबी युनिवर्सिटी च नैसी पढ़ाई जंदी । मौलवी हादी ते मौलवी इब्राहीम अरबी फारसी पढ़ांदे से । प्रो० दादीना ते प्रो० बोस मेरे 'ए' ग्रुप दे ट्यूटर से । ते साड़े कालिज दे हैंडक्लर्क बख्शी राधा कृष्ण जी हे जिहड़े हुन बी कईं बारी मिलदे रौंदे न ।

पता नईं अज्ज-कल्ल बी होंदी है जां नईं साढ़ैं वेल्लै स्कूलै च ते

कालिजै च इक्क प्रार्थना दी घन्टी होंदी ही। प्रोफैसर सिद्धेश्वर होरें कोला चार साल संस्कृत ते पढ़ी गै पर चार साल कालिजै च इन्दे किन्नै प्रार्थना कीती। कालिजै दे प्रोफैसर इक्क कोला इक्क बद्द अपने मज़मूनै च हे। शासन, अनुशासन, प्रशिक्षण तां फिर राब्सन साहिब दा कमाल हा। बिना उंदी आज्ञा दै कालिजै च चिड़ी नईं सी फड़कदी। पढ़ाई दे कम्मै च कि, बोडिङ्ग च कि, खेडे दी ग्रौण्डे च कि राब्सन साहिब दा प्रभाव परतक्ख लभदा हा। पिन्सिपल राब्सन असेंई फर्स्ट इयर थोंग्रां लैए फोर्थ इयर तीकर पढ़ांदे रै। एफ० ए० च R. L. Stevenson दा Treasure Island ते बी० ए० च शेक्सपिअर दा As you like it ते Julius Caesar ड्रामा उन्दे कोला पढ़िया, ते साड़ियां अंग्रेंज़ी एस्से दीयां कापियां राब्सन साहिब आपे सोधियै आनदे से।

मिं आपने सारे मास्टरें ते प्रोफैसरें दी बन्दनां करनां जिन्हें कोला पढ़ियै किज सिक्खमत्त आई ते किश करने जोग होए।

प्रोफैसर सिद्धेश्वर होर अजें नमें नमें १९१५ बिच गै जम्मुआं कालिज बिच आए से। मेरे साथी जिहड़े उन्दे 'शा पढ़दे रहे, भलियां जाणदे न जे संस्कृत पढ़ांदे पढ़ांदे ओह किन्नी भाषा दी गहराई बिच्च जंदे हे। एह चेता रखियो जे संस्कृत उसलै अंग्रेज़ी दै जरिए पढ़ाई जंदी ही। मालविकाग्निमित्र, कुमार संभव (५ सर्ग) एफ० ए० च० ते मुद्राराक्षस दशकुमार चरित. शिशुपाल वध (२ सर्ग) ते कने कठ उपनिषद बी० ए० च इन्दे कोला पढ़ी। संस्कृत अनुवाद ते व्याकरण आप्टे ते काले दिएं कताबें थोआं करांदे से। इक्क संस्कृत दा शब्द लईए उसदी व्युत्पत्ति व्याकरण रचना, अर्थ प्रयोग, सब किज चन्गी तरह समझाईए अग्गै चलदे हे, कोई संशय नईं से रौन दिंदे।

इक्क मिं अपनी आप बीती दस्सनां। मिगी संस्कृत पढ़ने दा शौक है गै सा, मिं आखिया जनजाता आनर्स कोर्स भी लै लैं। प्रो० वर्मा जी दी अनुमति किन्नै कोर्स लै लिया। कलैंडरै च सिलेबस दित्ता दा हा। वर्मा होर आक्खन लगे दिक्खी लै ते पढ़। मिं इक दिन आखिया प्रोफैसर जी आनर्स दे कोर्सै पर लैकचर भी दिओ। उन्दे जवाबै दी अज्जै तीकर बलेल मेरे कन्नें पवै दी ऐ। आक्खन लगे—There is no honour in taking up Honours if you want me to

lecture मतलब कि आनर्स लैते दी की बडियाई जे मिएं गै पढ़ाना ऐ। उन्दा इतना गै आशीर्वाद काफी हूा। उन्दी दयादृष्टि ते प्रेम अपने विद्यार्थियों लै अपार है मिं बी उन्दी आखे अनुसार उन्हेंई कदें बी फिर नईं आखिया कि मिं आनर्स दा कोर्स कराओ। आपूं गै पढ़दा रिहा पर उन्दियें शुभ कामनाएं दे सहारे उप्पर, की जे मि पूरी श्रद्धा सी। परीक्षा १६२० च दित्ती ते मिं पन्जाब विच फर्स्ट आया। बस जी प्रो० सिद्धेश्वर हुन्दीं आशीर्वाद सफल होई ते मिं लाहौर डाक्टर बुल्नर होरें कोल एम० ए० करन पुज्जी गिया की जे मिगी युनिवर्सिटी दा वजीफा मिली गिआ हा। इआं मेरे पर गुरुवर सिद्धेश्वर हुन्दी कृपा बनी रही। एह जे वृत्तान्त १६१६ थुआं १६२० तोड़ी।

एहदे परैंत मिं लाहौर टुरी गिआं ते प्रोफैसर साहिब कन्नै मलाटी गरमीएं दीएं छुट्टिएं च होंदी रही। जम्मुआं उन्दे कन्ने तवी दे पुलै दी सैर सुद्धी कीती। इस पुलै दा नां उन्हें 'अमृत सेतु' रखिया दा हा। संरे च गै बतेरी विद्या चर्चा होंदी सी। ते वड़ा लाभ हुन्दा हा।

जद अस इन्दे कोल जम्मुआं पढ़दे से तदूं एह आखदे हुन्दे से Jammu or Germany तात्पर्य इह जो मिं हुन रिसर्च करन जर्मनी गै जाङ। सचें मुचें इन्हेंई १६२४ च गवर्न्मैंण्ट आफ इण्डिया दा वज़ीफा युनिवर्सिटी राहीं लण्डन युनिवर्सिटी च रिसर्च करने गीतै थोआ। त्रै बरे उत्थै रिसर्च कीती ते डी० लिट दी उपाधि प्राप्त करिए जम्मुआं कालजै च आई गये। उन्दा थीसिस Phonetic observations of Ancient Indian Grammarians इक मारके दी चीज है, ते लण्डन युनिवर्सिटी नै गै छापी ए ते दोबारा छपी चुकी है। वर्मा हुन्दा जवानां सिक्खनां बाएं हत्थै दी खेड है। दुनिआं दिएं कई प्रमुख जवानें च माहिर न, जिआं कि अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मन, अरबी, तामिल, युनानी, लाजतीनी उर्दू, हिन्दी, फारसी, पंजाबी, आदि रलाई मिलाईऐ एह दस जवानां भारत दियां ते बारां यूरपीन जानदे न, जे मौका मिलै तां चीनी जपानी बी सिक्खना नईं छोड़न लगे।

इन्दे जनिअ भाषा विज्ञान वेत्ता ते भाषा दार्शनिक इनिया-गिनियि गै होग, हिन्दोस्तानै च इन्दा नां प्रसिद्ध है। एह शब्द शास्त्रै दे ऋषि मन्ने जन्दे न। अजै बी अस्सीएं सालें दी उमरी च १८ घण्टे रोज लिखाई

पढ़ाई दा कम्म करदे न। इह रौने आले जेहलम जिले दे न। इन्दे ग्रां दा नां ततराल है,इह कटासरास कोल ए। इन्दा जन्म ३ नवम्बर १८८७ च रौलपिंढी होआ, संस्कृत किन्नै विशेष प्रेम सा। एम० ए० हिस्टरी दा १९११ च कीता ते भी शास्त्री १९१३ च करी लई। बी० ए० १९०९ दा कीता दा हा।

इक्क गल्ल दस्सां, इन्हेंई किताबां Review करने दा बड़ा शौक ऐ। जे कुसै अरबी या तामिल दी किताब रिव्यू लई भेजी तां नां नईं कीती भावें अरबी या तामिल मूडा दा गै पढ़नी की नईं पई। इहजही लगन, इहजई मिहनत, इहजही विद्वत्ता, इहजई प्रतिभा, गूढ़ खोज करने दी प्रवृत्ति, इस जमानै च घट्ट गै विद्वानें च लबदी ऐ। मिंह ते इने गी भाषा विज्ञान योगी शब्द ब्रह्म तपस्वी, विद्याव्यासनी, भाषापारदृष्टा मुनि समझनां ते इस्सै भावना कन्नै हुन भी इन्दे आखे अनुसार म्हीने च इक बारी जरूर दर्शन करन जन्नां। इहते परम तीर्थन विलायती थुआं आइए इन्हें कई कम्म कीते। १९२८ च Linguistic Society of India दी स्थापना कीती ते Indian Linguistics नां दी भाषा शोधानुसन्धान पत्रिका कड्डी। हिमालय पर्वतीय प्रान्त दियें बोलियें दी खोज कीती ते उन्दा थौ पता कड्डिया तें उन्दे शब्द कोष तियार कीते। दरद लोकें दी मुड्डली बोलियें दा बी ब्योरा कड्डिए काट छांट कीती। ग्रिअरसन साहिब दे लिङ्गिवस्टिक सरवे दा संक्षेप बनाया। इह इक्क बड़ा भारी कम्म हा। जिहां क्षेमेन्द्र नै रामायण महाभारत वृहत्कथा दियां मञ्जरिआं बनाइयां इयांगै इन्दा कम्म बी उन्दी उपमा रखदाऐ यास्कदे निरुक्तै दे निर्वचनें पर इक चंगी किताब लिखी। इह दौं त्रै रचना इन्हें १९४३ च रिटायर होने परैन्त कीतीयां। १९४७-५१ च नागपुर जाइए इन्हें स्वर्गीय डाक्टर रघुबीर हुन्दे किन्नै बी भाषा कोष रिसर्च दा कम्म कीता। १९५२-६० च इह दिल्ली गवर्न्मेंण्ट आफ इण्डिया दे शिक्षा विभाग च पारिभाषिक हिन्दी कोष बनांदे रहे ते इन्दे कम्मै दी पारखी गवर्न्मेंण्ट नै इन्हें ई 'पद्म भूषण' दी पदवी किन्नै सम्मानित कीता। वर्मा हुन्दी होर ज्यादा जान-पनछान करनी होए तां 'सिद्ध भारती' अभिनन्दन ग्रन्थ पढ़ो, जिहड़ा इन्हेंई वी० वी० आर० आई नै इन्दी संठवीं वरस गन्डे पर भेंट कीता हा। इहदे च उन्दी जीवन कथा ते इन्दी लिखाई पढ़ाई दा पूरा ब्योरा मिलदा ऐ। इन्दा पत्र व्यवहार बड़ा चलदा रौंदा ऐ ते चिट्ठी पत्री राहें कई

दोस्त मित्र इन्दी रिसर्च थोग्रां लाभ उठांदे रौंदे न। रिसर्च पत्रिकाएं च ते पुस्तकें दी भूमिकाएं च पुस्तका लोचन रूपै च इन्दे बतेरे लेख निकलदे रौंदे न। ग्राजकल विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टिटट्यूट होश्यारपुर दी चण्ढीगड़ दी शाखा दे ग्रधिष्ठाता न १९६० च इह चण्डीगढ़ पुज्जे हे। शब्द ब्रह्मजिज्ञासा दा पीठ इन्दी कोठी २८४ सक्टर १६-A चण्डीगढ़ इक केन्द्र तीर्थ स्थान ऐ। जिज्ञासु जन जात्तरुएं दे रूपै च जां सांयात्रिक बानयै इन्दे दर्शनें गी ग्राउन्दे दे तृप्त होइए जंदे न।

इह इन्दा ग्रस्सीवां बरा जादा। परमात्मा करै इह जुग जुग जीन ते भारतीय शब्द शास्त्रै दीआं घुण्डिग्रां खोलदे रौन ते ग्राउने ग्राली पीढ़ियें दे ज्ञानै गी भरपूर करन। थोड़े दिन होए इन्दा सम्मान पंजाबी युनिवर्सिटी पटिआला ने घर ग्राइयै इन्हेंई डी० लिट दी पदवी किन्नै कीता। ठीक है 'न रत्न मन्विष्यति मृग्यते हि तत'। जौहरी रत्नें दे पारखी रत्न तुप्पिए लब्बी लैन्दे न। भगवान ग्रग्गै प्रार्थना ए जे इदा मान होर बदधा जा ते इन्दे शिष्यवर्ग साक सम्बन्धी दोस्त मितर इन्दी छत्र-छाया च बधदे फुलदे रौन ते शब्द शास्त्र दा भण्डार भरोचदा रवै।

श्री श्यामलाल होरें दा डोगरी निबन्धावली तय्यार करिये प्रौफैसर वर्मा होरें गी भेंट करने दा इह चा बड़ा सराहने योग है। इह उब्दे लई ते इन्दे लई वी बड़ी शोभा दी गल्ल ए ते मेरे धन्नभाग न जे मिगी ग्रपने पुज्य गुरुवर सिद्धेश्वर होरें गी श्रद्धाजली भेंट करने दा ग्रवसर मिलिग्रा।

—डा० सिद्धेश्वर वर्मा

डोगरी छन्द की प्रवृत्तियां

१. प्रारम्भिका

डोगरी के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की बढ़ोत्तरी ने, अनुसन्धान के उन गहरे घटकतत्वों की ओर आशापूर्ण पग बढ़ाया है जो भाषा की सुर-लय के नियामक हुआ करते हैं। ह्रस्व-दीर्घ और मात्रायें गिनने तथा केवल वर्तनी (स्पैलिंग) के नियम और भाषा की आत्मा का हनन करने वाले सिद्धान्तों से डोगरी कवि बन्धे नहीं। इससे आशा बन्धती है कि छन्द शास्त्र के क्षेत्र में डोगरी कवि नये क्षितिज ढूण्ड निकालेंगे तथा नई धरती का निर्माण करेंगे।

२. वर्तनी के जटिल तथा जड़ नियमों की क्रूरता :

संस्कृत और प्राकृत के छन्द शास्त्र ने भारतीय मेधा को जैसे जकड़ कर रख दिया है, नष्ट प्राय कर दिया है। उनमें वर्तनी पर पूर्णतया जोर दिया जाता है, जो कि भ्रम में डालने वाली होती है। डोगरी की आधुनिक कवि-कृतियां इन ह्रस्व-दीर्घ की जटिलताओं के बन्धनों के प्रति विद्रोह करती हैं और उन नियमों के उपद्रव की ओर सचेत करती हैं।

३ डोगरी छन्द-रचना की चुनौती

डोगरी छन्द-रचना इन मात्रिक बन्धनों की शृंखला को तोड़ कर स्वच्छन्द रूप से बहने लगी है। निम्नलिखित उदाहरण इस बात को पुष्ट करते हैं :

१. (क) श्री रामनाथ शास्त्री द्वारा लिखित भर्तृहरि (नीतिशतक) के पृष्ठ ३१ पर जो कविता है, वह मात्रा और वजन की कैद से मुक्त है :—

बुध ते बिरस्पति होर भी गरैह न,
राहू ऐ निचिन्त इन्दे उप्पर उसी ज़ैर नेईं ।
सबनें च वड्डे चन्न, सूरज ए दौं न
मस्या जां पुन्नेयां गी कदें इन्दी खैर नेईं ।।

यहां बुध में ह्रस्व उ है और राहू में दीर्घ ऊ है, परन्तु उच्चारण में दोनों का वज़न एक समान है, दोनों में एक जैसी उच्चता है । बुध में कुछ आरोही और राहू में कुछ अवरोही-सुर है और उच्चारण में दोनों का समान उच्चारण हो जाता है ।

(ख) पृष्ठ ६२ पर :

खोपे दा हा रुक्ख, जिदे खल्ल बैठा हफे दा,
फल पेआ सिद्दा सिरा पर, सिर सुज्जा ऐ ।।

वहां खोपे के दोनों दीर्घ स्वर दूसरी पंक्ति के फल के दोनों ह्रस्वों के साथ लय मिला रहे हैं ।

२. 'भड़ास' के कवि श्री शम्भुनाथ डोगरी छन्द-रचना को मात्रिक बन्धनों से निर्मुक्त करने के लिये वास्तविक उच्चारण में अनेक वर्णों का लोप कर जाते हैं, जैसे :

जोआनी गी जन्दे बी, चिर नेइओं लगदा, आजु दा दरेया, रुकदा निं बगदा (भड़ास पृ० ५)

यहां ऊपर चिर की लय, नीचे रुकदा से समानान्तर है । और इसी कविता में :

औन्दा बड़ापा, अकल ओल्लै औन्दी,
ओई जन्दी अत्थड़ ते सत्ता निं रौन्दी ।

में अकल ओल्लै का ताल नीचे सत्ता निं से मिलाया जा रहा है ।

३. इन कवि महोदय की स्वातन्त्र्य-प्रियता स्वरों के गुण विशेष के क्षेत्र में भी खुले बन्दों चलती है :

दस्स भाई मेरेया ओ डोगरेया सज्जना ! (भड़ास पृ० २४)

यहां मेरेया का तालमेल डोगरेया के साथ बिठाया गया है । कविता लिखने के क्षेत्र में इस प्रकार की स्वच्छन्दता को स्वेच्छा

चारिता कह कर छन्दशास्त्र के अनुयायी और पुराने नियमों पर चलने वाले नाराज़ होंगे परन्तु यदि वे उच्चारण-शास्त्र और संगीत विद्या की विविध सम्भावनाओं और विधियों का ज्ञान रखते हों तो वे उस स्वच्छन्दता की भर्त्सना करने से परहेज़ करेंगे।

४. छन्द सामञ्जस्य के भिन्न प्रकार :

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या डोगरी ने छन्दशास्त्र के नियमों को तोड़ दिया है ? क्या डोगरी इन नियमों का पालन करना आवश्यक नहीं समझती ? यदि ऐसा है तो छन्द-सामञ्जस्य के उसके कौन से अपने नियम हैं ? इसका उत्तर तो भावी अनुसन्धाता ही देंगे। इस समय हम तो डोगरी कविता की प्रवृत्तियों पर ही कुछ कहने में समर्थ हैं। इन प्रवृत्तियों को इस प्रकार निर्दिष्ट किया जा सकता है :

डोगरी कविता का एक नमूना 'फूलां दा कुर्ता' 'भड़ास पृ० ३६ पर द्रष्टव्य है। इसमें :

दिन चढ़ी आया शैरा गी जाना,
रातीं दे डगै दा ढंग बनाना।

इस कविता में शैरा गी जाना का ताल डंग बनाना से है। और दिन चढ़ी आया का रातीं दे डंगै के साथ है।

५. आरोह अवरोह के घटक तत्व :

डोगरी छन्द की एक और प्रवृत्ति यह है कि कविता के एक भाग में कुछ वर्ण आरोही और उसके आगे ही आने वाले अवरोही हो जाते हैं। उदाहरण के लिए देखें, भड़ास पृष्ठ (२) :

मट्ठी मट्ठी चाला चलै दी ए बदली,
पादी चफेरैं घरमोल।

इस कविता पंक्ति में प्रमुख आरोह "चलै दीऐ बदली" पर है और गौण आरोह 'पा दी' पर है। यह आरोह दोनों अवस्थाओं में अक्षर-समूहों का समझना चाहिये।

इसी प्रकार पृष्ठ ५६ पर :

कदें-कदें आपूं गै सीक ऐ बटोई जन्दी

यहां भी प्रमुख आरोह 'सीक ऐ' पर हैं और गौण 'आपू गै पर ।

आधुनिक साहित्यिक डोगरी में 'कवित्त' छन्द के प्रभाव के कारण एक भीतरी लय का जन्म हो रहा है। मध्यकालीन हिन्दी कविता के अनुरूप एक नमूना देखिये : (भड़ास पृ० ३१)

ओदी के ऐ बसैन्त, जेदा घर गै निं कैन्त

यहां बसैन्त का काफिया कैन्त से है।

६. आरोह अवरोह के घटक तत्वों के नमूने :

डोगरी छन्द में आरोह अवरोह के बहुत से नमूने पेश किये जा सकते हैं :—

१. दीनू भाई पन्त द्वारा सम्पादित मधुकण में पृष्ठ (८) पर श्री मधुकर की एक कविता है।

ए टोल्ली कुड़ियें चिड़ियें दों
अपनी गै खेडा लग्गी दी ।

यहां टोल्ली की तुलना में दी पर आरोही सुर है इसी प्रकार अपनी की निस्वत दी पर चढ़ता सुर है।

२. एक आरोह अवरोह के पश्चात् दूसरा आरोह अवरोह भी आ जाता है जैसे, भर्तृहरि (नीतिशतक) पृ० ८८ :

जिदे मन, सील सुच्चा जोतियां जगान्दा ऐ

३. नीतिशतक के ही पृ० ९९ पर एक चरण में प्रमुख आरोह है और दूसरे चरण में गौण आरोह है, जैसे :

जिधा रस लुच्चड़ें गी साध करी दिन्दा ऐ ।

४. भर्तृहरि के ही पृ० ८९ पर एक आरोह अवरोह के बाद दूसरा आरोह अवरोह आ जाता है, जैसे :

संजम बानी उप्पर जिसदा ऊऐ बीर नराला ऐ,
भली मानसी शोभा साथी, बड्डें दी, बलवानें दी ।

७. घटक-तत्वों की प्रधान विशेषता, स्वराघात

हर कविता-पंक्ति में एक अक्षर ऐसा है जो औरों की तुलना में अधिक सुना जाता है। इसको प्रमुख अक्षर कहते हैं, जैसे ऊपर

आई कविता पंक्ति में 'भली मानसी' का भ और 'शोभा साथी' में शो के आरोह का आधार एक मानसिक भावना है ।

उपसंहार :—

ऊपर लिखी पंक्तियों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं ।

१. डोगरी छन्द की प्रवृति है कि आरोह अवरोह के आधार पर कुछ अक्षर समूहों की दूसरे अक्षर समूहों से एकतानता बन जाती है ।

२. इन आरोही अक्षरों का नियामक प्रायः स्वराघात हुआ करता है ।

३. आन्तरिक लय बड़ी प्रिय होती जा रही है । एक चरण दूसरे चरण से सामञ्जस्य रखता है ।

४. यह छन्द वर्तनी अधीन गुरु लघु की कैद से मुक्त हो रहा है ।

५. उपर्युक्त आरोह अक्षर-समूहों पर विस्तार पूर्वक अध्ययन अपेक्षित है ।

६. डोगरी छन्द पर अनुसन्धान टीमें विधिपूर्वक अध्ययन करेंगी ऐसी अपेक्षा है ।

द्वितीय भाग

—प्रो० रामनाथ शास्त्री

डोगरी—भाषा या उपभाषा ?

साहित्यिक रूप से उभरती हुई कोई भी भाषा-बोली उसी तरह संवेदनशील होती है जैसे परतन्त्रता के अन्धेरे से मुक्त हो कर विकास के पथ पर अग्रसर होने को उत्सुक कोई पिछड़ी हुई जाति। शक्तिशाली उपनिवेशवादी शक्तियों के स्वार्थ में, लाचारी का जीवन काटना तो एक निरीह विवशता होती है, लेकिन इससे जैसे उस जाति को राष्ट्र-परिवार में स्थान पाने के अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकता, उसी तरह अविकसित भाषा-बोलियों को भी सदा सदा के लिये उसी पिछड़ेपन में कैद नहीं रखा जा सकता।

डोगरी एक ऐसी ही साहित्यिक रूप से उदीयमान बोली है जो उस पुरानी धारणा के बारे में अत्यन्त खीझ अनुभव करती है, जिस में एक उपेक्षापूर्ण तोता-रटन्त से काम लिया गया है। वह धारणा है डोगरी को पंजाबी की उपभाषा मानने की। इस दुर्भाग्यपूर्ण धारणा के जन्म दाता हैं डा० ग्रियर्सन जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के भाषायी सर्वेक्षण से सम्बद्ध, अपने महत्वपूर्ण प्रकाशन (Linguistic Survey Of India) की पुस्तक नौ, भाग १ में डोगरी का उल्लेख इस प्रकार किया है :

Punjabi has two dialects—the ordinary idiom of the language and Dogra or Dogri. The later, in various forms is spoken over the Sub-montane portion of the Jammu State and over most of the Head Quarters Division of the Kangra district with an overflow into the neighbouring parts of the

districts of Sialkot and Gurdaspur and of the state (Chamba.

अर्थात्—पंजाबी की दो उपभाषाएं हैं—एक तो भाषा का सामा व्यावहारिक रूप और दूसरा डोगरा या डोगरी। यह दूसरा उपभाषा रूप कई विविधताएं लिये, जम्मू प्रान्त के निचले पहाड़ी प्रदेश में त पंजाब के कांगड़ा प्रान्त में बोला जाता है। सियालकोट तथा गुरदासपु के ज़िलों के उत्तरी पहाड़ी प्रदेशों के अतिरिक्त रियासत चम्बा के निच प्रदेश में भी इसका प्रसार है।"

सर ग्रियर्सन का यह भाषायी सर्वेक्षण इतने विशाल पैमाने पर हु था कि उसके प्रकाशित कलेवर के सम्मुख भारतीय भाषाशास्त्री प्रा जड़मुग्ध होकर जैसे नतमस्तक रह गये। इतने महान् कार्य को इत कुशलता से सम्पन्न करने वाले मनीषी के प्रति आभार की भावना भी बड़ प्रबल थी, तथा उसके साथ साथ उसमें अपनी हीन-भावना भी रही हो तो आश्चर्य नहीं।

परिणाम इसका यह हुआ कि सर ग्रियर्सन के निष्कर्षों को प्रायः अन्तिम मान कर, आप्त वचन के रूप में उद्धृत किया जाने लगा। हिन्दी में लिखी-छपी भाषा-विज्ञान सम्बन्धी पोथियों में, जहां भारतीय उपमहाद्वीप में प्रयुक्त भाषाओं का ब्योरा रहता है, वहां यदि कहीं डोगरी का किसी विद्वान् ने उल्लेख किया भी है तो एकाध पंक्ति में केवल इतना कहा गया है कि डोगरी पंजाबी की एकमात्र उल्लेखनीय उपभाषा है।

श्री डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० भोलानाथ तिवारी, श्री मोहन लाल गौतम, राम बहोरी शुक्ल, और भगीरथ मिश्र आदि ने अपने ग्रन्थों में डोगरी का ज़िक्र ऐसे किया है :

(१) पंजाबी भाषा में बोलियों का भेद अधिक नहीं है। उल्लेख योग्य केवल एक बोली "डोग्री" है। यह जम्मू राज्य में बोली जाती है। टाकरी या टक्करी नाम की इस की लिपि भी भिन्न है।

—डा० धीरेन्द्र वर्मा (हिन्दी भाषा का इतिहास)

(२) पंजाबी के प्रमुख दो रूप हैं। एक तो आदर्श या परिनिष्ठित पंजाबी है, जो केन्द्रीय पंजाब के मैदानों मे प्रयुक्त होती है। पंजाबी का

दूसरा रूप डोगरा या डोगरी है । यह जम्मू तथा पंजाब के कुछ भागों में बोली जाती है । इस पर "कश्मीरी" तथा "लहंदा" का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । डोगरी के स्थानीय रूपांतर-कंडिम्राली, कांगड़ी तथा भटयाली हैं । डोगरी टाकरी लिपि में लिखी जाती है ।

—डा० भोला नाथ तिवारी (हिन्दी भाषा)

यह सन्दर्भ पूर्ण रूप से सर ग्रियर्सन के कथन का प्रायः शब्दानुवाद है ।

(३) पूर्वी पंजाबी, अमृतसर और उसके आस पास के भाग में बोली जाती है। इस की कई उपभाषाएं हैं। इन में डोगरी, कांगड़ा तथा जम्मू में प्रचलित है ।

—राम बहोरी शुक्ल तथा भगीरथ मिश्र
(हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास)

(४) पंजाब की उपभाषाओं के बारे में पहले पहल कुछ पश्चिमी विद्वानों ने भी खोज की है । डा० ग्रियर्सन की पुस्तक इस विषय पर आज भी प्रामाणिक मानी जाती है। पूर्वी पंजाबी की उपभाषाओं में डोगरी कांगड़ी तथा हिमाचल प्रदेश की भाषाएं प्रमुख हैं ।

जम्मू प्रदेश में डोगरी भाषा बोली जाती है । इस क्षेत्र को डोगर देश भी कहा जाता है । डोगरी काफी सीमा तक, टकसाली पंजाबी से मिलती है । अन्तर केवल इतना है, कि नामों के पीछे विभक्तियां अलग तरह से जोड़ी जाती हैं । इस की शब्दावली पर कश्मीरी और पोठोहारी का प्रभाव है ।

—श्री पी० के० हरिवंश
(सप्तसिन्धु 'उपभाषा विशेषांक' "पंजाब की उपभाषाएं")

(५) ग्रियर्सन के सर्वे के अनुसार पंजाबी की उपभाषा डोगरी है ।

—प्रो० गौरी शंकर
(डोगरी भाषा, सप्तसिन्धु, जनवरी १९६५)

(६) भाषा विज्ञान के कई पंडित डोगरी को पंजाबी की उपभाषा कहते हैं, और कई विद्वानों की दृष्टि में यह एक स्वतन्त्र भाषा है, साधारणतया भौगोलिक दृष्टि से डोगरी का सीधा सम्बन्ध पंजाबी के साथ आता है ।

—श्री श्याम लाल शर्मा

डोगरी भाषा (एक परिचय) "सप्तसिन्धु"— जन० १९६५

(७) पंजाबी की केन्द्रीय बोली के छः प्रकार हैं। माझी, दुआबी, मलवई, लहंदी, पहाड़ी और सरहद्दी। पहाड़ी बोली के निम्नलिखित भेद हैं: डोगरी, कांगड़ी, पश्चिमी चम्बयाली।

—प्रो० मोहन मैत्रेय (सप्तसिन्धु जन० १९६५)

(८) पंजाबी इक सुतंतर जबान है जो आप कई उपभाषावां रखदी है, जिवें मुलतानी, पोठोहारी, डोगरी, भटिआली, पुआधी आदि। सो इक सुतंतर बोली किसे दी उपबोली किवें हो सकदी है?

—प्यारा सिंह "पदम"
पंजाबी भाषा दी वड़िआई
(पंजाबी दुनिया (भाषा अंक) मार्च-अप्रैल—१९६५

(९) पंजाबी दिआं उपभाषावां दा विगिआनक (विज्ञानक) अधिएन (अध्ययन) करन दा जतन सबतों पहलां डा० ग्रियर्सन ने कीता। पर उसने केवल पंजाबी दे पूरबी भाग दियां उपभाषावां नूं पंजाबी दियां उपभाषावां मन्नेआ है, पच्छमी पंजाब दी भाषा नूं उसने लहिंदा नां दे के सुतंतर भाषा मन्नेआ है, अते पोठोहारी आदि नूं उसदी उपभाषा। जो कुझ ग्रियर्सन ने भाषायी आधार ते सिद्ध करन दा जतन कीता सी, उस समें उह अन-विज्ञानक अते गलत सी। लेकिन डा० तेजा सिंह आदि विद्वानां ने लहंदी नूं पंजाबी दी उपभाषा मन्नेआ है।

—स० राजिन्दर सिंह
"पंजाबी दिआं उपभाषावां"
(पंजाबी दुनिया—अप्रेल १९६५)

सर ग्रियर्सन के इस निष्कर्ष को कि डोगरी पंजाबी की उपभाषा है, हिन्दी पंजाबी के इन विद्वानों ने यदि सहज ही स्वीकार कर लिया, तो इस में आश्चर्य नहीं।

किसी ने भी डोगरी का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। भाषायी सर्वेक्षण के इतिहास में इस तरह की उपेक्षा के, तथा एक गलत धारणा को ही बार बार दुहराने के उदाहरण बहुत मिलते हैं। डोगरी को भी इसी अन्धानुकरण की प्रवृत्ति का लक्ष्य बनना पड़ा है।

इस प्रवृत्ति ने जिस प्रकार इस प्रश्न के दूसरे पक्ष को सर्वथा दबा सा दिया था उसे देख कर दुःख भी होता है और खीझ भी । वैज्ञानिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति भी कई बार बड़े २ प्रभावों के नीचे दब जाती है । डोगरी को एक स्वतन्त्र भाषा स्वीकार करने वाले सभी तथ्य आज तक जैसे विचार करने के योग्य भी नहीं माने गये । बस एक ही रट है जो बार २ दुहराई जाती है । और वह यह कि सर ग्रियर्सन डोगरी को पंजाबी की उपभाषा घोषित कर चुके हैं ।

आइए आज इस रोचक विषय पर विवेक संयत धैर्य से विचार करें । सब से प्रथम सर ग्रियर्सन के ही उस महिमशाली सर्वेक्षण ग्रन्थ के साक्ष्य से प्रारम्भ करते हैं ।

अपने ग्रन्थ की पहली पुस्तक (Vol. I भाग १) में भारतीय भाषायी सर्वेक्षण के क्षेत्र में हुए कुछ पहले प्रयत्नों का भी उन्होंने उल्लेख किया है । उन्होंने वहां ईलियट (Eliot) द्वारा लिखित भारतवर्ष के इतिहास (History of India, Part III Page 562) से एक अंश उद्धृत किया है, जिस में अमीर खुसरो (१२५३ ई०—१३२५ ई०) का एक वक्तव्य दिया गया है । खुसरो के वक्तव्य का हिन्दी रूप इस प्रकार है :

"चूंकि मैं जन्म से भारतीय हूं, इसलिये मैं इस देश की भाषा के बारे में कुछ कहना चाहता हूं । आज इस देश के अलग २ प्रदेशों में ऐसी स्वतन्त्र और रोचक भाषायें बोली जाती हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल मुख्तलिफ मालूम होती हैं । ये भाषाएं हैं : सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, डूगरो (डोगरा लोगों की ज़बान) मैसूर की कन्नड़, तिलंग (तेलगु), गुजरात, मलाबार, तामिल, गौड (बंगला), अवध (पूर्वी हिन्दी) तथा दिल्ली के आस पास बोली जाने वाली भाषा (पश्चिमी हिन्दी) ।

सर ग्रियर्सन ने अपने भाषा-सर्वेक्षण की भूमिका में तेरहवीं सदी के इस ख्यातनामा साहित्यिक राजनीतिज्ञ की, डूगरो (डोगरी) के स्वतन्त्र भाषा होने सम्बन्धी इस स्पष्ट घोषणा का उल्लेख किया है । इस प्रसंग में उन्हों ने एक अंग्रेज पादरी श्री विलियम कैरे (Carrey) का भी ज़िक्र किया है जो १७९३ ई० में भारत में आया और ईसाइयत के प्रचार की योजना के निमित्त जिसने १८१६ ई० में भारत की ३३ प्रमुख भाषाओं की एक विस्तृत सर्वेक्षण रिपोर्ट अपने मिशन को पेश की । इन ३३ भाषाओं

में श्री कैरे ने बंगला, हिन्दी, कश्मीरी, बुच (लहंदा और सिन्धी आदि के साथ डोगरी का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। भाषा सर्वेक्षण की जो पद्धति श्री कैरे ने इस्तेमाल की थी, सर ग्रियर्सन ने भी अपने सर्वेक्षण में उसी पद्धति का अनुसरण किया है।

इन दो स्पष्ट मतों से भली भान्ति परिचित होकर भी सर ग्रियर्सन ने डोगरी को स्वतंत्र भाषा स्वीकार नहीं किया। इससे सामान्यतया यह धारणा पुष्ट होती है, कि अवश्य ही उन्हें अपने सर्वेक्षण में ऐसी सुनिश्चित सामग्री मिली होगी जिसके आधार पर उन्होंने अमीर खुसरो तथा श्री कैरे से असहमति प्रकट करते हुए डोगरी को पंजाबी की उपभाषा घोषित किया। वह सामग्री क्या थी ?

आइये ज़रा उस सामग्री की परख पड़ताल करें। इस सर्वेक्षण में सर ग्रियर्सन को स्थानीय प्रशासन की ओर से पूर्ण सहयोग और सुविधाएं प्राप्त थीं। अवश्य ही उन्हें प्रत्येक प्रादेशिक सर्वेक्षण के लिये स्थानीय पढ़े लिखे व्यक्तियों, सम्भवत: सरकारी कर्मचारियों की सेवाएं भी प्राप्त रही होंगी। प्रत्येक भाषा-उपभाषा की भाषा-वैज्ञानिक परख-पड़ताल करने के लिये उन्होंने प्रधान रूप से Prodigol's son (अपव्ययी आत्मज) की अंग्रेज़ी कथा के उस भाषा-बोली में अनुवाद देखे-परखे और कहीं कहीं उसके साथ ऐसी ही कुछ दूसरी सामग्री (जैसे लोक-कथा, लोक गीत आदि) का भी उपयोग किया।

Prodigol's son शीर्षक कथा के अनुवाद के आधार पर भाषा-बोली के स्वरूप को निश्चित करना बड़ा भरोसे का साधन नहीं हो सकता। कारण, अनुवाद करने वाले का उस भाषा-बोली से सम्बन्ध तथा उस पर उस के अधिकार की मात्रा, इस प्रयत्न को प्रभावित करती है। अनुवाद में प्रयुक्त होने वाले शब्द, वाक्यांश, मुहावरे, क्रिया-रूप आदि तो निश्चित रूप से उस अनुवादक के ही होंगे। वे उतनी ही मात्रा में उस भाषा की प्रकृति के भी अनुकूल हैं इस तथ्य की परीक्षा करने की सुविधा सर ग्रियर्सन को भी उपलब्ध नहीं हो सकती थी। कारण, जो आदमी डोगरी के प्रतिनिधि बन कर उसे मिले होंगे उन्हीं पर भरोसा करके चलना उसकी मजबूरी थी।

और यह अनुवाद प्रस्तुत करने वाले डोगरी के प्रतिनिधि कैसे थे ?

इसका स्पष्ट अनुमान हमें उस लोक-गीत से हो जाता है, जिसे सर ग्रियर्सन ने अपने सर्वेक्षण ग्रंथ में डोगरी को पंजाबी की उपभाषा कहने के लिये प्रमाण-रूप में संकलित किया है। वह गीत 'रोमन ट्रांसक्रिप्शन' में वहां दिया गया है। उसका नागरी में रूप यह है :

१ हां रे, जिश्रा घहबरोन्दा (घबराश्रोंदा) चेत (चित) मे'रा गदिए—की (गद्दिए–की) चाउहंदा (चौंदा) केन बद (विध) मिल-ए गदिए की जाइ-के ?

२ हां-रे पंज ठग च' उरां (चोरां) गदिए - दा रहा (राह) भही (भी) ल' उट–लइदे (लैन्दे), ता'रे (तारे) गेंदी (गिन्दी) नू (नूं) रएन (रैण) ब' एहावई (बिहावई)।

३ हां–रे इछक (इश्क) श्रोन'उखा (अनोखा) लाड़ए–की गदिए–दा हो'एश्रा (होइश्रा) केन बेद म'लिए (मिलिए) गदिए की जा–आ–के (जाई के) ?

४ हां–रे करकै (के) म्हबता (महब्वत) मान'उए (मानुए) दे राह वैच (विच) रहद'ए (रहंदे), तारे गेंदी (गिन्दी नों नूं) रेहण (रैण) वइहाव—ए (बिहावे ।

इस लोक गीत (?) के श्राधार पर डोगरी को पंजाबी की उपभाषा (dialect) घोषित करना कितना श्रस्वाभाविक लगता है।

जिन कर्मचारियों ने डोगरी भाषा के उदाहरण के रूप में यह 'गीत' डा० ग्रियर्सन को दिया होगा वे कहां तक डोगरे रहे होंगे ? इस धरती के लोक-साहित्य से उन का परिचय कितना वास्तविक रहा होगा ?

श्रौर डा० ग्रियर्सन ने इसी सामग्री को प्रामाणिक मान कर डोगरी को पंजाबी की उपभाषा घोषित किया है। इस गीत को पढ़कर मुझे इस बात का दुःख हुश्रा है, कि ऐसे कामों में यदि सही सामग्री न मिले तो परिणाम कितने दुर्भाग्यपूर्ण हो सकते हैं।

क्या इस गीत को डोगरी भाषा का लोक गीत कहा जा सकता है ? श्राज तक डोगरी के सात-श्राठ सौ लोक-गीतों का जो संग्रह हुश्रा है, उस में क्या किसी संग्रहकर्त्ता को यह गीत भी मिला है ? क्या भाषा श्रौर विषय दोनों में इस तरह के कोई लोकगीत डुग्गर की सीमा-रेखा के

अन्तर्गत प्राप्य हैं ? तीनों प्रश्नों का सहज उत्तर एक ही है, अर्थात् नहीं।

भाषा और विषय की दृष्टि से इस लोक गीत पर तनिक ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। भाषा-उच्चारण डोगरी के मौलिक ध्वनि-स्वभाव से कई जगह टक्कर खाता है। गीत में कई शब्दों के बोल-चाल के रूप के साथ-साथ (ब्रैकट) में उसका दूसरा अधिक शुद्ध रूप भी दिया गया है। इस गीत में ये बातें विचार करने के योग्य हैं।

i) डोगरी में कर्मकारक के साथ 'नूं' कारक चिह्न का प्रयोग नहीं होता। यह विशुद्ध पंजाबी कारक चिह्न है। "गेंदी (गिन्दी) नू" का डोगरी रूप होता है —गिनदिया गी।

ii) डोगरी "ब" प्रधान भाषा है। इसमें कोई शब्द "व" से शुरू नहीं होता। यह आदि "व" पजाबी भाषा की विशेषता है। इस गीत में "व" का प्रयोग इसे डोगरी के क्षेत्र से बाहिर ले जाता है। "रहा (राह) वैंच बिच" विशुद्ध पंजाबी उक्ति है। डोगरी में होना चाहिए था — राहे बिच' या 'रस्ते बिच'।

iii) डोगरी में 'ह' ध्वनि अत्यन्त सूक्ष्म रूप में उच्चारित होती हैं। पंजाबी में 'ह' का उच्चारण बड़ी स्पष्टता से होता है—जैसे इस गीत के इन रूपों में हुआ है : घहबरोन्दा (घबराओंदा, चाउहंदां (चौंदा) भही (भी), ब'एहावइ (बिहावइ), होए' आ (होइआ), रहद–ए (रहंदे)

iv) घहबरोंदा (घबराओंदा), चाउहंदा, भही (भी), चूरां (चोरां) तथा लुट लइंदे आदि, ये सभी रूप डोगरी भाषा के लिए नितान्त अपरिचित हैं।

v) "पंज ठग चूरां गदिए दा रहा (राह) भही (भी) लुट लइदे (लैन्दे)" डा० ग्रियर्सन ने इस पंक्ति का अर्थ यूं किया है : (Ah, five robbers and thieves waylay the Gaddi in his path. स्पष्ट है, कि यह वाक्य डोगरी वाक्य की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। चूरां लुट लइंदे, गदिए दा राह भी लुट लइदे (लैंदे) डोगरी भाषी को बड़ी विचित्र उक्तियां लगेंगी।

vi) इसी तरह "तारे गदी (गिन्दी) नू नूं) र' एन (रैन) विहावै। बड़ी विचित्र वाक्य-रचना है। अंग्रेज़ी में इसका अर्थ दिया गया है : I pass the night counting the stars. "मैं तारे गिनद

रात बिता देती हूं ।" डोगरी में इसका रूप होता :—'तारे गिनदेआं रैन बिहाई छोड़ां ।" आप में से कइयों को यश शर्मा के गीत की यह पंक्ति याद होगी :

तारे गिनदेआं रात बिहाई छोड़ी ।

इन दोनों अभिव्यक्तियों में जो असाधारण अन्तर है, वह अत्यन्त स्पष्ट है ।

"तारे गेंदी नू रैन विहावे" और
"तारे गिनदेआं रैन बिहाई छोड़ी" ।

पहली अभिव्यक्ति निश्चित रूप से डोगरी भाषा की तर्जमानी नहीं करती । और फिर इस सब के ऊपर "इच्छक और महब्बत" की ये चौंका देने वाली उक्तियां, जिनसे डोगरी लोकगीत परिचित ही नहीं हैं ।

इस लोक गीत के आधार पर डा० ग्रियर्सन ने अमीर ख़ुसरो और मिस्टर कैरे के मतों की अवहेलना करके घोषणा की कि डोगरी पंजाबी की उपभाषा है । और कितने दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी-पंजाबी के भाषा-विद्वानों ने आंख, कान मूंद कर इसी घोषणा को दुहरा-दुहरा कर अपने कर्तव्य को सम्पन्न कर लिया ।

डा० ग्रियर्सन ने ऐसा क्यों किया ? कुछ लोगों का विचार है कि वह अंग्रेज था और भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य के हितों से प्रभावित था । यह शंका निर्मूल भी हो सकती है, लेकिन इसके साथ ही यह भी एक यथार्थ है कि सर ग्रियर्सन द्वारा किए गए इस व्यापक सर्वेक्षण के सभी निष्कर्ष अन्तिम नहीं माने जा सकते ।

पंजाबी भाषा के विद्वान् जैसे प्यारासिंह पदम, डा० हरदेव बाहरी, डा० तेजा सिंह, स० राजिंदर सिंह आदि भली भान्ति जानते हैं कि ग्रियर्सन ने पच्छमी पंजाबी को "लहंदा" नाम देकर एक स्वतंत्र भाषा मान कर केवल तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा है ।

डा० हरदेव बाहरी अपने लेख "पंजाबी ते लहंदी" में (पंजाबी दुनिया : मार्च-अप्रैल १९६५ सफा २१५ पर) लिखते हैं :

असीं पंजाबी ते लहंदी बोलन वाले जानदे हां कि पंजा[illegible] दें इस

भूभाग दी भाषा इक्को है। दो भाषावां दा विचार करना हकीकत तों दूर है......। ए सवाल कदीं उठ नहीं सकदा, सिवाए ग्रियर्सन दे दिमाग दे कि उन्हां दी भाषा, लहंदी हुंदियां होइयां बी पंजाबी नहीं है। सानूं ते कोई फर्क नहीं दिसदा।"

इस बारे में डा० तेजासिंह के मत का उल्लेख इस लेख के शुरू में हो चुका है। इसी तरह हिन्दी के भाषा-विज्ञानी डा० ग्रियर्सन के द्वारा किये गये भारतीय आर्य भाषाओं की बाहरी तथा आन्तरिक उपशाखाओं (Inner & Outer Circles) में विभाजन को सही नहीं मानते।

डा० धीरेन्द्र वर्मा इस विषय में लिखते हैं: "ग्रियर्सन तथा चैटर्जी के समुदाय के विभागों की तुलना रोचक है। साधारणतया चैटर्जी महोदय का वर्गीकरण अधिक स्वाभाविक मालूम होता है।"

डा० भोला नाथ तिवारी (हिन्दी भाषा–सफा १०६ पर) लिखते हैं, डा० सुनीति कुमार चैटर्जी ने इन तीनों (अर्थात्–डा० ग्रियर्सन द्वारा दिये गये त्रिवर्गीय भाषा–विभाजन) की ही आलोचना की है।......ग्रियर्सन जिन बातों के आधार पर बाहरी–भीतरी वर्गीकरण को स्थापित करना चाहते थे, वे बहुत संपुष्ट नहीं हैं।

लेकिन इन जागरूक मनीषियों ने डोगरी को आर्य-परिवार में इतना महत्वपूर्ण नहीं समझा कि उसके विषय में कुछ मौलिक जानकारी प्राप्त करना वे उचित समझते। इसलिये ये लोग इस बारे में ग्रियर्सन की ही बात को दुहरा कर सन्तोष कर लेते हैं। परन्तु इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा, कि अप्रामाणिक साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकालने की एक गलती को ही सारा मनीषी-समाज आंखें मूंद कर रटता-दुहराता चला जाए।

कई भाषाओं में भी उपनिवेशवादी प्रवृत्ति काम करती है। अपने साम्राज्य के गौरव के मद में वे कई बार अविकसित भाषा-बोलियों को अपनी उपभाषा कह कर इस तरह बांध रखना चाहती हैं कि न वे स्वयं उन्हें विकसित करने का यत्न करती हैं, और न ही उन्हें स्वयं अपने विकास के लिये यत्न करता देखना चाहती हैं। पंजाबी और डोगरी में उसी तरह, शोषक तथा शोषित का दुर्भाग्यपूर्ण सम्बन्ध रहा है।

पंजाबी भाषा की स्वतन्त्रता के समर्थक भाषा-विद् डोगरी को अविकसित गंवारू भाषा कह कर उसके स्वतन्त्र विकास को पंजाबी के विरुद्ध एक विद्रोह

समझते हैं। देखिये —"पंजाबी दुनिया" मई १९६५ के अंक में प्रो० बाहरी का लेख—"डोगरी—उपभाषा"। प्रो० बाहरी पद्म-भूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा पर इस लिए रुष्ट हैं कि उन्होंने ही सर्व प्रथम डोगरी को एक स्वतन्त्र भाषा कह कर इस विद्रोह के बीज बोए हैं। वे आगे लिखते हैं :

"जम्मू दे कुझ उत्साही भाषा-विज्ञानी इह फैसला घर ही कर बैठे हन कि चाहे आपने ही कोई नवें भाषा-विज्ञानक नेम क्यूं न घड़ने पैन किसे तरां बी इह सिद्ध करके दस्स देना है, कि डोगरी घटोघट पंजाबी दी उपभाषा नहीं। उह जिस हऊंमे दा शिकार हो के, उस बारे सुचेत हुन्दे होई बी लोकां दिआं अते केंदरी सरकार तीक रसाई रखन वालियां दिआं अक्खां विच घट्टा पा के, केंदरी सरकार तों डोगरी नूं पंजाबी नालों अलहिदा दस के, इक वक्खरा स्थान दुआन दिआं आहरां विच हैन। पता नईं उन्हां दी ए मृग-तृष्णा कदों असली रूप धारदी है।" "मेरी जाचै इन्हां भाषा-विज्ञानियां दी गल्ल, किसे झूठी गल्ल नूं सौ बार कहन तों बाद सच तुल्ल मनाउना है।"

प्रो० बाहरी के इस रोष पर हमें आश्चर्य नहीं क्योंकि हम आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक सभी क्षेत्रों में इस शोषक मनोवृत्ति के काफी देर तक निरीह शिकार रहे हैं।

इसी मनोवृत्ति का दूसरा पहलू भी कम रोचक नहीं, जहां पंजाबी की उप-भाषा कह कर, डोगरी के प्रति वैसा ही अपनत्व दिखाया गया है जैसा कोई घर के नौकर के प्रति दिखाता हुआ उसके गंवारुपन की, सरलता की ऐसी सराहना करे, कि यथार्थ की एक आंख ही फोड़ दी जाए। इस मनो-वृत्ति का उदाहरण देखिए—(पंजाबी दुनिया, मार्च-अप्रैल १९६५ सफा ३९८) पर प्रकाशित श्री राजिन्दर सिंह का लेख 'पंजाबी दिआं उपभाषावां"। विद्वान् लेखक, लेख के अन्त में डोगरी का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :

"कांगड़े, शिमले अते जम्मू दी बोली नूं डोगरी जां पहाड़ी आखिआ जांदा है। डा० ग्रियर्सन अनुसार इसदे कंडियाली, भटियाली अते कांगड़ी तिन्न मुख्ख रूप हन। इस दे लोक गीतां विच अजब जिही मिठास हुंदी है जो पंजाबी दे दिल नूं धू पाउंदी है। मसलन :

"मैं गलानियां सच वे, बांके निभा चाचूआ।
मिझो बी लेई चल कढ वे, माड़े बांके ने चाचूआ॥

यह लोक गीत आप में से बहुतों ने सुना-पढ़ा होगा। जां दी पंक्तियां

यहां डोगरी (पहाड़ी) की, चित्त को छू लेने वाली मिठास को दिखाने के लिए दी गई हैं, उन्हें देखकर क्या ऐसा नहीं लगता कि किसी पहाड़ी सरल सुन्दरी का सहजरूप पंजाबी वेशभूषा तथा पंजाबी 'मेक अप' से, बड़े भद्दे ढंग से बिगाड़ दिया गया है । मूल गीत के शब्दों को किस प्यार भरी उपेक्षा से विकृत किया गया है ।

"ग्रौं गलानियां सच ओ" : को बना दिया है "मैं गलानिआं सच वे।" "माढ़े बांकू देग्रा चाचुग्रा" की जगह—बांकू नेआ चाचूआ कितना बड़ा मज़ाक है। ग्रौर इस मूढ़ अनुराग की पराकाष्ठा–"लई चल कढ वे" में देखिये। मूल गीत के शब्द हैं : मिंगी बी—(वी नहीं) लेई चल कच्छ बो—ग्रौर "कच्छ वो" के स्थान पर "कढ वे" कहने में केवल दो शब्दों के प्रयोग का ग्रन्तर नहीं है—दो विभिन्न संस्कृतियों की मौलिक धाराग्रों का ग्रन्तर है । "कच्छ लेई चल" का सीधा सरल अर्थ है ग्रपने पास ले चल। दुःखी बहू ग्रपने इकलोते बेटे बांकू के चाचू ग्रर्थात् पिता से, गीत के माध्यम से ग्राग्रह करती है कि यहां पीहर में सास ग्रौर ननद के ईर्ष्या–द्वेष के कारण उसका जीवन ग्रत्यन्त दुःखी हो गया है, तुम ग्राकर मुझे भी ग्रपने साथ ले जाग्रो ।"

श्री राजिदर सिंह ने इतने सरल भाव को एक दम उल्टा रूप दे दिया है "कढ वे" कह कर। "कढ वे" का ग्रर्थ है भगा कर ले जाग्रो। ग्रपनी विवाहिता स्त्री को ही भगा कर ले जाने की बात कितनी ग्रनुचित लगती है। इतना मौलिक ग्रन्तर हो जाने पर भी पहाड़ी गीत के बोल सरदार साहब के कलेजे को "धू पाने" में समर्थ हुए हैं। यह कैसा प्यार है !

प्रो० बाहरी की खीज में ग्रौर इस प्यार में आप डोगरी के लिए किसे ज्यादा खतरनाक समझेंगे ?

डोगरी ने एक दयनीय वेबसी में इन दोनों तरह के निर्मम ग्राघातों को चुप रह कर सहा है । लेकिन उसका यह दुर्भाग्य भी उसे मिटा नहीं सका।

हां, उसकी प्रगति को इससे गहरा ग्राघात ग्रवश्य लगा। लेकिन स्वदेश में व्याप्त नवयुग की इस स्वर्णिम प्रभात में, डोगरी भी दूसरी कई पिछड़ी हुई भाषाओं के साथ, ग्रपने चिरकालीन स्वप्नों को साकार कर रही है । डोगरी के इस साहित्यिक नव जागरण में, उसे ग्रपनी उपभाषा मानने वाली पंजाबी ने कितना योग दिया है ? उपभाषाएं तो मुख्य भाषा की शाखाएं

होती हैं— शाखाएं सूखी रहें या सूखती रहें, भला इसमें मूलाधार को क्या प्रसन्नता होगी ?

हिन्दी ने ब्रज, अवधी आदि को यदि अपनी सहोदरा उपभाषाएं स्वीकार किया था तो उनकी साहित्यिक प्रगति को अपनी प्रगति माना था। क्या आज तक हिन्दी भाषा तथा साहित्य का कोई ऐसा प्रामाणिक इतिहास लिखा गया है, जिसमें अवधी तथा ब्रज के सहस्रों साधकों की साधना का गौरव-पूर्ण उल्लेख न किया गया हो ? हिन्दी के विद्यार्थी के ज़हन में, हिन्दी के महारथियों का नाम लेते ही, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, मु० प्रेमचन्द आदि से भी पहले चंदबरदाई, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, रसखान, जायसी और बिहारी आदि के भव्य चलचित्र क्यों घूम जाते हैं ?

क्या हिन्दी का एक भी प्रतिनिधि काव्य-संग्रह ऐसा दिखाया जा सकता है जिसमें भक्ति-काल तथा रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों की काव्य-साधना के नमूने न दिए गए हों ?

और क्या पंजाबी भाषा और साहित्य का भी कोई ऐसा निष्पक्ष इतिहास, काव्य-संग्रह, कथा-संग्रह, लेख-संग्रह अथवा एकांकी-संग्रह दिखाया जा सकता है, जिसमें उसकी उप-भाषाओं का भी ससम्मान उल्लेख हुआ हो ? नहीं। लेकिन यह इतनी उपेक्षा क्यों दिखाई गई है ? क्या इसलिए कि डोगरी भाषी लोगों की धरती को पंजाब में केवल तीन रूपों में पहचाना जाता है, *(i) उनके घरों में काम करने वाले मुंडुओं की धरती, (ii) पंजाब की मण्डियों में काम करने वाले हढ़वपु पांडियों की धरती, (iii) तथा बेहुनर और बेइल्म होने के कारण फौज के लिये रंगरूट देने वाली धरती।*

डोगरी का यह बहुतबड़ा दुर्भाग्य रहा है कि अपनी भौगोलिक परिधि में भी उसे पंजाबी जैसी उग्र-स्वभाव वाली, तथा अहं भावना से पूर्ण एक समृद्ध भाषा के, राजनयिक तथा आर्थिक प्रभुत्व में दबे रहने की लाचारी बनी रही है। लाचारी के इस अन्धेरे दुर्ग की दृढ़ इमारत में कुछ दरारें पड़ीं थी १९४७ ई० में, जब समस्त देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ रियासत में भी जनतंत्र की संजीवनी हवाएं चली थीं। उस दुर्ग का बहुत बड़ा अंश गिरा १९६६ ई० में, जब कांगड़ा-कुल्लू के प्रदेश पंजाब के जूए से मुक्त होकर हिमाचल में जा लगे।

इस प्रशासनिक परिवर्तन से नए हिमाचल प्रदेश में डोगरी-पहाड़ी भाषा-

बोलियों की एक कैद तो खत्म हुई लेकिन अभी अपनी मुक्ति के लिए उन्हें हिन्दी के साम्राज्यवादी बंधन से मुक्ति पाना बाकी है। पूर्वी पंजाब प्रदेश को द्विभाषी राज्य घोषित करके, हिन्दी तथा पंजाबी "ज़ोनों" (Zones) में बांट लेना सयासी स्वार्थ का एक अत्यन्त निंदनीय गठजोड़ था। क्योंकि पंजाब को भाषायी दृष्टि से सर ग्रियर्सन ने भी त्रिभाषी प्रदेश स्वीकार किया था। इस विषय में उनका कथन इस प्रकार है :

To its North and North-East Punjabi is bounded by the Pahari of the lower ranges of the Himalayas. It (Panjabi) hardly extends into the hill country. On the east it has various forms of Western Hindi, vernacular Hindostani in east Amballa and Bangru spoken in the country immediately to the west of Jamna. On the South it has the Bangari and the Bikaneri dialects of Rajsthani spoken in West Hissar & Bikaner Boundry between Panjabi and all these Languages is very fairly defined although, of course, there is a certain amount of merging from one language to another. On the north there is a *distinct* dialect of Panjabi, the Dogri, which is intermediate beween Standard Panjabi and Pahari of the lower Himalayas. To the west of Panjabi lies the Lahanda or Western Panjabi Language.

(Grierson on Panjabi)
(Introduction Page 1-2)

लेकिन राजनीतिक क्षेत्र की दो स्थानीय प्रतिद्वन्द्वी दलबन्दियों ने डोगरी-पहाड़ी भाषाओं की सत्ता की पूर्ण अवहेलना करके उसे अपने ही घर में प्रवासिनी बना दिया।

हिन्दी और पंजाबी से त्रस्त तथा शोषित इन डोगरी-पहाड़ी भाषाओं की दशा आज उस मासूम फाख्ते की सी है जिसे खाने के लिए एक बाज ऊपर चक्कर लगा रहा है तथा एक मक्कार बिडाल नीचे से सरकता आ रहा है।

लेकिन लगता है, कि आंधी-तूफानों के ये 'दुर्दिन' अब छटने वाले हैं। गत तीन दशकों में डोगरी ने, इस विशाल डोगरा प्रदेश के एक सीमित भूभाग में उग्र तपस्या करके [illegible] साहित्यिक दरिद्रता के अन्धेरे में साधना के जो

दीप जगाए हैं, उनकी लौ, स्वार्थी सयासत की तूफानी आन्धियों की हुंकारों पर मुस्कराती हुई जगमगा रही है। यह अविश्वसनीय 'मिरेकल' (Miracle) एक ऐसा तथ्य है जिसके कठोर चट्टानी धरातल पर कई ग्रियर्सन सर पटक कर भी इसे झुठला नहीं सकेंगे।

आप कहेंगे यह भी भावुकता तथा आवेश की बात है। इससे तो वैज्ञानिक सत्य की पुष्टि नहीं होती। आप का कहना ठीक है। यह आवेश हमारे लिए कितना ही सहज क्यों न हो, लेकिन ऐसे विषयों में तो तर्कपूर्ण विवेचन से ही किसी निष्कर्ष तक पहुंचना उचित होता है।

वैसे तो ग्रियर्सन ने भी डोगरी की विशिष्ट सत्ता का समर्थन करने वाले कई तत्वों का उल्लेख किया है, जैसे—

(1) Indeed, it is a curious fact that the Dogri shows peculiarities of pronounciation, which also exist in Bagri.

(2) Dogri has an elphabet of its own.

(3) The conjugation of the verb presents a few irregularities.

(4) The future in Dogri has several forms which are strange to the standard Punjabi.

(5) The post-position of the accusative and dative in Dogri is generally ki or di.

उन्हों ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि डोगरी की अपनी एक स्वतंत्र लिपि है जिस का प्रयोग दो रियासतों, जम्मू-कश्मीर तथा चम्बा में होता रहा है। स्वतंत्र लिपि की सत्ता इस बात की सूचक है कि डोगरी ने अपने आप को कभी भी पंजाबी की उपभाषा स्वीकार नहीं किया। डोगरी की भाषा-शास्त्रीय तथा ध्वन्यात्मक विशेषताओं का यथोचित अध्ययन-विवेचन सर ग्रियर्सन के लिए संभव नहीं था।

डोगरी के क्षेत्र में जिस तरह के लोग उनको सहायक रूप में मिले थे उनकी क्षमता की एक झलक आपने उस लोकगीत में देख ही ली है। डोगरी का भाषा-शास्त्रीय विवेचन भी तो डा० ग्रियर्सन के लिए उन्हीं लोगों ने प्रस्तुत किया होगा। ग्रियर्सन स्वयं तो भारत की सभी भाषा-बोलियों के जानकार नहीं हो सकते थे।

आइये, अब इस प्रश्न का दूसरा पक्ष भी देखें जिसका उल्लेख हम पीछे अमीर खुसरो तथा पादरी श्री विलियम कैरे के मतों का उद्धरण देकर कर आए हैं।

१९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में, जॉन बीम्स (John Beams) नाम के एक अंग्रेज़ भाषा-विज्ञानी की एक छोटी, लेकिन महत्वपूर्ण पुस्तक छपी थी–

'An Outline of Indian Philology'। इससे पहले श्री बीम्स इस क्षेत्र में : "Comparative Grammar of Modern Aryan Languages. (आधुनिक आर्य भाषाओं का तुलनात्मक भाषा-शास्त्र (तीन भाग) जैसी महत्वपूर्ण कृति प्रस्तुत कर चुके थे। इन रचनाओं से स्पष्ट है, कि श्री बीम्स ने इस विषय पर जिस अधिकार पूर्ण योग्यता से कलम उठाई, वह सर ग्रियर्सन से किसी प्रकार कम नहीं थी।

"भारतीय भाषा-विज्ञान की रूप–रेखा" नामक पुस्तक में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उल्लेख करते हुए श्री बीम्स लिखते हैं :

The earlist representation of this (Indic) class is the language of the Vedas, the most ancient recorded form of Sanskrit The languages of this (Indic class) at the present day are the following :

अर्थात् वर्तमान काल में इस वर्ग की प्रमुख आर्य भाषाएं ये हैं :

1. Hindi (हिन्दी) 2. Bangala (बंगला)
3. Panjabi (पंजाबी) 4. Sindhi (सिंधी)
5 Maratha (मराठा) 6 Gujrathi (गुजराती)
7 Nepalese (नेपाली) 8. Uri a (उड़िया)
9. Assamese (असामी) 10 Kashmiri (कश्मीरी)
and 11. D gra और (डोगरा)

डोगरा (अर्थात् डोगरी) के क्षेत्र की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं :

In the mountain ranges between the Panjab and the Valley of Kashmir the Dogra dialect or dialects are spoken.

अर्थात्–पंजाब और कश्मीर घाटी के मध्य स्थित पहाड़ी प्रदेश में डोगरा (डोगरी) नाम की बोली या बोलियां प्रयोग में आती हैं।

यहां "डोगरा" के लिए जॉन बीम्स द्वारा प्रयुक्त (Dialect) (अर्थात्

बोली) शब्द से यह नहीं समझना चाहिए कि इन्होंने भी सर ग्रियर्सन के ही मत की पुष्टि की है। उस सूरत में जॉन बीम्स पंजाबी और डोगरी को इस सूची में अलग-अलग स्थान न देते। बोली (dialect) शब्द का प्रयोग बीम्स ने जिस अर्थ में किया है, उसे समझने के लिए हम यहां विख्यात भाषा-विज्ञानी, पद्मभूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा के मत को उद्धृत करते हैं :

डा० वर्मा का एक लेख डोगरी संस्था की त्रैमासिक पत्रिका "नमीं चेतना" के प्रथम अंक में, जो जुलाई १९५५ में निकला था, प्रकाशित हुआ था। लेख का शीर्षक था—"

The place of Dogri in the Languages of India.

—भारत की भाषायों में डोगरी का स्थान। डा० महोदय ने उस लेख में डोगरी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है :

Of the seven families of Languages in India the Dogri Language occupies an important place philologically, for it is a frontier language and in a way, could be classed among the frontier languages of India.

My speaking of Dogri as Dogri Language may be condemned as a 'philological heresy' by the philologist for the 'The Dogra or Dogri dialect of Panjabi (Greirson, L. S. I. Vol. IX page 637) is supposed to be the established characteristic of Dogri.

If Dogri is a dialect of Panjabi, why should it be called the Dogri Language ? Now it must be admitted that in a sense Dogri must be called a dialect. What is that sense ? In the sense of non-standardization. For instance, even for the word 'was' Dogri has three current words viz. था, सा, and हा (more correctly आ)

Such a phenomenon will be impossible in a language proper, like English, or Hindi. But granted that from the non-standardization point of view Dogri must be called a dialect, can we proceed further and call it a dialect of Panjabi or of any other Pahari Language ? For, to be a dialect is one thing and to be a dialect of another language another thing.

Dogri must be taken as an independent dialect and not a dialect of any other language like Panjabi or Pahari.

The test of a dialect when taken as the form of a language is 'Spontaneous intellegibility'—the dialect must be understood (by the speakers of its main language) without any effort or interpreter In the light of this test Dogri cannot be called the dialect of any other language. Hence it is more reasonable to call Dogri a language in the sense of an independent dialect."

— अर्थात् भारत में प्रयुक्त सात भाषायी परिवारों में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से डोगरी भाषा का एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि सीमान्त की भाषा होने के कारण इसे हम भारत की सरहद्दी भाषाओं में गिन सकते हैं। मैंने डोगरी को जो एक भाषा कहा है, संभव है कुछ भाषा-विज्ञानी इसे केवल एक हठपूर्ण उक्ति कहें क्योंकि उनके मत में ग्रियर्सन के द्वारा डोगरी को पंजाबी की उपभाषा घोषित कर दिए जाने से उसका स्वरूप सदा के लिए निधारित हो चुका है। आलोचक पूछ सकते हैं कि जब डोगरी पंजाबी की उपभाषा (dialect) है तो उसे 'भाषा' क्यों कहा जाए ?

एक तरह से मैं भी सहमत हूं, कि डोगरी को एक दृष्टि से बोली (dialect) ही कहना उचित होगा। वह दृष्टि है डोगरी के कई रूपों में निश्चयात्मकता का न होना। जैसे हिन्दी 'था' के लिए डोगरी में तीन रूपों का एक समान चलन है, जैसे —था, सा और हा (जिसे बोला जाता है 'आ')।

यह अस्थिरता अंग्रेज़ी अथवा हिन्दी जैसी विकसित भाषाओं में संभव नहीं। लेकिन, इस अनिश्चयात्मकता को देखकर यदि डोगरी को हम एक बोली (dialect) कहें तो क्या इसका यह भी अर्थ होगा कि डोगरी पंजाबी या किसी पहाड़ी भाषा की बोली (dialect) है? क्योंकि 'बोली' होना एक बात है और किसी भाषा की बोली होना बिल्कुल दूसरी बात।

'बोली' से जब हमारा अभिप्राय किसी दूसरी केन्द्रीय भाषा की उपभाषा होना होता है तो वहां उसका स्वरूप निर्धारित करने की एक ही कसौटी होती है : सहज सुबोधता अर्थात्—मुख्य भाषा बोलने वाले उस बोली को बिना किसी प्रयत्न या अनुवादक की सहायता के समझ सकें। इस परीक्षण के प्रकाश में डोगरी को पंजाबी अथवा किसी दूसरी भाषा की

उपभाषा नहीं कहा जा सकता। इसलिए एक स्वतन्त्र बोली होने के कारण डोगरी को हम एक भाषा की संज्ञा भी दे सकते हैं।"

भाषा तथा उपभाषा के स्वरूप को निर्धारित करने वाले कोई अन्तिम लक्षण, माप अभी तक निश्चित नहीं किये जा सके हैं। श्री जॉन बीम्स ने भी इस विषय का विवेचन किया है। वे लिखते हैं :

Much discussion has taken place on the question—what constitutes a language and what a dialect ? What amout of deviation from the classical or central standard of a language is compatible with merely dialectic variations and at what point is the boundry passed and a new language constituted ?

It appers probable that no determination will ever be arrived at on this subject, because it is one on which it is impossible to lay down a general rule.

Geographical situation, political and physical accidents, education, habits, religion, all have their bearing on language.

–अर्थात् इस विषय में काफी तर्क–वितर्क हुआ है कि भाषा क्या है और बोली या उपभाषा क्या है तथा यह कि केन्द्रीय अथवा प्रमुख भाषा से कितनी मात्रा तक अन्तर रहते किसी बोली को उसकी उपभाषा माना जाए तथा किस सीमा-रेखा को पार करने पर उसकी, भाषा के रूप में, स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर ली जाए।

मेरे मत में इस विषय पर कभी भी किसी, अन्तिम रूप से सर्व-स्वीकृत मत तक हम नहीं पहुंच पाएंगे क्योंकि इस बारे में सामान्य नियम निर्धारित करना सम्भव नहीं है। भौगोलिक स्थिति, राजनीतक तथा दूसरी परिस्थितियां, शिक्षा, स्वभाव, तथा धार्मिक आस्था–ये सभी बातें भाषा के स्वरूप को प्रभावित करतीं हैं।" जॉन बीम्स इस बारे में आगे लिखते है :

1. The test of mutual intelligibility is a very unsafe one; as it depends on the intellegence of individuals.
2. The fact that a form of speach is used only by a small number of people is no argument against its being really an independent language.
3. It is a mistake to suppose that rustic dialects are

degenrate or debased forms of the language. For from being debased they often retain early and pure forms of words which have dropped out of the cultivated dialect.

4. Vocabulary also determines the separate entity of a language, even if the grammatical forms are almost identical. As is the case with Hindi and Panjabi. Though the latter has many words in common with Hindi yet it retains so many Sanskrit words which have dropped out of Hindi and vice-versa and has so many purely local terms of its own that the vocabulary is very different from that of Hindi. And again mutual intelligibility does not exist.

(An Introduction to Indian Philology, Page 33)

१. अर्थात्—पारस्परिक सुबोधता का तथ्य भी बड़ा भरोसे का नहीं है, क्योंकि इसका संबन्ध व्यक्तियों की बौद्धिक क्षमता से है ।

२. किसी बोली को बोलने वालों की संख्या अधिक नहीं है, इस आधार पर उसे स्वतन्त्र बोली मानने से इन्कार करना तर्क-संगत नहीं ।

३. यह कहना या सोचना बिल्कुल निराधार है कि कोई बोली देहाती रूप रंग लिए होने पर अवश्य ही किसी भाषा का विकृत रूप होगी । विकृत होने के स्थान पर ये बोलियां प्राय: शब्दों को उनके परम्परागत विशुद्ध रूप में सुरक्षित रखती हैं, जबकि संस्कृत अर्थात् विकसित बोलियों में से वे शब्द प्राय: बहिष्कृत हो जाते हैं ।

४. बोली का शब्द-समूह भी उसकी स्वतन्त्र सत्ता का प्रमाण होता है चाहे कुछ भाषा-शास्त्रीय रूपों में (दूसरी बोली-भाषा से) उसकी किसी मात्रा में समानता ही दिखाई देती हो । जैसे हिन्दी तथा पंजाबी में । यद्यपि पंजाबी की शब्दावली में बहुत से शब्द हिन्दी के भी हैं, फिर भी पंजाबी में संस्कृत के कई ऐसे रूप-प्रयोग अभी भी चलते हैं, जो हिन्दी में नहीं दीखते । दूसरे पंजाबी के शब्द-कोष में [illegible] स्थानीय शब्द इतने अधिक हैं, कि दोनों

भाषाओं की शब्दावलियां सर्वथा भिन्न प्रतीत होती हैं। और फिर पारस्परिक सुबोधता का अभाव भी एक प्रमुख तत्व है।"

कितने दु:ख की बात है कि आज तक डोगरी की सत्ता निर्धारित करने के लिए डा० ग्रियर्सन के अन्धानुयायियों में से किसी ने भी इन सामान्य सिद्धान्तों पर डोगरी का परीक्षण नहीं किया। उन्होंने इस विषय में डा० सिद्धेश्वर वर्मा तथा जॉन बीम्स जैसे ख्यात नामा भाषा-विज्ञानियों के मतों की अवहेलना करने की भी धृष्टता की है। और यह जानते हुए भी कि जहां डा० ग्रियर्सन इस भाषायी सर्वेक्षण के सिलसिले में हमारी रियासत में अत्यन्त अल्पकाल के लिये ठहरे थे वहां डा० वर्मा डोगरी के प्रदेश में लगभग ३० वर्ष तक, वहां के सरकारी कालेज में प्राध्यापक रहे और इस अर्से में उन्होंने इस प्रदेश की बोलियों के सम्बन्ध में जो अनुसन्धान कार्य किया उसकी तुलना भला डा० ग्रियर्सन के इस काम से कैसे की जा सकेगी, जिसे सम्पन्न करने के लिए उसे अपने स्थानीय सहयोगियों तथा कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता था।

इस अन्तर का एक कारण यह भी रहा होगा, कि डा० ग्रियर्सन का भाषायी सर्वेक्षण तो प्राय: भारत के सभी प्रमुख पुस्तकालयों तथा विद्या-केन्द्रों में उपलब्ध था और पद्म-भूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा का डोगरी सम्बन्धी विवेचन बहुत हद तक अज्ञात ही रहा। उसे उतना प्रचार न मिला।

लेकिन हिन्दी तथा पंजाबी के भाषा-विज्ञानियों में कौन ऐसा है जो उनके व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व से अपरिचित होगा, तथा यह न जानता हो कि भारत सरकार द्वारा सम्मानित इस ख्याति-लब्ध भाषा-विज्ञानी ने अपने जीवन के बहुत महत्वपूर्ण वर्ष डोगरी-पहाड़ी बोलियों के प्रदेश में ही गुज़ारे हैं। अत: डोगरी के विषय में, ग्रियर्सन के बाद उनके द्वारा होने वाले इस अनुसंधान के निष्कर्षों को जानना-मानना भी आवश्यक है।

अमीर खुसरो, श्री विलियम कैरे, श्री जॉन बीम्स तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा, इन मनीषियों के इस बारे में घोषित निष्कर्षों का पलड़ा क्या अकेले डा० ग्रियर्सन के घोषित मत से किसी प्रकार हल्का हो सकता है? जबकि, यह भी दिखाया जा चुका है, कि ग्रियर्सन ने डोगरी को पंजाबी की उपभाषा कह कर और लहंदी को पंजाबी से स्वतन्त्र भाषा घोषित करके किसी तत्कालीन सयासी मसहलत को चाहे पूरा किया हो तथ्यों के साथ न्याय

नहीं किया। डोगरी को स्वतंत्र भाषा–बीली कहने वालों की सूची यहीं समाप्त नहीं हो जाती। प्रो० गौरीशंकर (M. A., B. Lit. (Oxen) एक प्रतिष्ठित विद्वान् तथा भाषा विज्ञानी हैं। इन्होंने ही १९३१ ई० में Indian Linguistics की vol. I part II और IV में प्रकाशित अपने लेख : डोगरी का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन (Grammatical aspects of Dogri Languge) में पहली बार डोगरी के विषय में वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया था। १९३४ ई० में प्रो० गौरी शंकर जी ने गीता का डोगरी गद्य में अनुवाद करके प्रकाशित किया जो इस बात का सूचक है कि वे डोगरी को कितना महत्व देते थे। सन् १९६५ ई० में इन्होंने गोहाटी (आसाम) में होने वाली (All India Oriental Conference) के चौदहवें अधिवेशन में "Some salient features of Dogri Language"—शीर्षक से एक महत्वपूर्ण लेख पढ़ा था। इस लेख में उन्होंने डोगरी तथा पंजाबी में होने वाले कुछ मौलिक अन्तरों की चर्चा करते हुए अन्त में लिखा है :

Dogri and Panjabi, though different in phonetics and structures and the more so in vocabulary, have the great difference in the tone, the credence, the accent, the rythem, the stress and the music of the tongue

अर्थात् —"डोगरी तथा पंजाबी, स्वरोच्चारण, सामान्य रूप-विन्यास तथा शब्दावली की दृष्टि से तो एक दूसरे से भिन्न हैं ही, इनमें और गहरा भेद दिखाई देता है ध्वनि, स्वराघात, ताल-लय, उच्चारण में आने वाले विशिष्ट उतार चढाव, तथा संगीतात्मकता आदि के कारण।"

डोगरी की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने वाले भाषा-विज्ञान के स्थानीय विद्वानों में -श्री बंसीलाल गुप्ता (M. A) (लेखक—"डोगरी भाषा और व्याकरण"), श्री श्यामलाल शर्मा, श्री तेज राम सहचर तथा श्री धर्म चन्द्र प्रशान्त आदि के मतों का उल्लेख करना यहां आवश्यक नहीं क्योंकि पंजाबी के कई विद्वान् उन्हें डा० सिद्धेश्वर वर्मा का ही अनुगामी मानते हैं। वैसे भी घर के जोगी जोगड़े कहलाते ही हैं।

लेकिन, "हिन्दी शब्दानुशासन" जैसे महत्व-पूर्ण ग्रन्थ के रचयिता, भाषा-शास्त्र तथा भाषा-विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य किशोरी दास

बाजपेयी तो डा० वर्मा के अनुगामियों में से नहीं हैं। डोगरी के विषय में आचार्य बाजपेयी का मत है कि :

'डोगरा प्रदेश की अपनी प्राकृत थी, जिसका विकास आज की "डोगरी" भाषा है। पंजाब से मिला हुआ डोगरी प्रदेश हैं, यानी डोगरी और पंजाबी भाषा की सीमा मिलती है, और इन दोनों में वही अन्तर है, जो पंजाबी और हिन्दी में या बंगला और उड़िया में है। यानी कुछ तत्व एक से हैं, पर शेष सब अलग-अलग। रूप, रंग, चाल, ढाल आदि में स्पष्ट अन्तर है। परन्तु बंगला भाषा से परिचित व्यक्ति उड़िया भाषा तुरन्त सीख समझ लेगा। परन्तु भाषा-भेद तो है ही। पंजाबी भाषा से डोगरी भाषा को पृथक् करने वाले तत्व हैं—उसके पृथक् प्रत्यय, पृथक् क्रियारूप, पृथक् अव्यय, और पृथक् कारक-विभक्तियां।

इस तरह, एक ओर है डा० ग्रियर्सन का एक पुराना लेकिन आज तक बहु प्रचारित मत कि डोगरी पंजाबी की उपभाषा है और दूसरी ओर है अमीर खुसरो, विलियम कैरे, जॉन बीम्स, पद्म-भूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा, प्रो० गौरीशंकर तथा आचार्य किशोरी दास बाजपेयी का अपने अपने तौर पर निर्धारित मत कि डोगरी पंजाबी से पृथक् एक स्वतन्त्र भाषा बोली है।

इस तथ्य को प्रो० बाहरी भी मानते हैं। उन्होंने अपने उसी लेख में लिखा है :

"सिवाए डा० ग्रियर्सन अते कुझकू पंजाबी साहिय दे इतिहास कारां अते भाषा-विज्ञानियां दे होर कोई भी भाषा दा माहिर डोगरी उपभाषा नूं पंजाबी भाषा-समूह ही उपभाषा मन्नरण लई त्यार नहीं।"
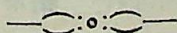
ग्रन्थ-सूची

२. Grierson on Panjabi, (Language Dept. Patiala Panjab)

१. An Introduction to Indian Philology.
—John Beams.

३. भारत का भाषा सर्वेक्षण-खण्ड १—भाग १
अनु० उदयनारायण तिवारी

४. सम्मेलन पत्रिका (भाग ४९–सं–१) (पौष, फाल्गुन, शक १८८४

५. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (१६वां भाग)
ना० प्रा० सभा काशी

६. नमीं चेतना (अंक १–१९५५ ई०)

७. पंजाबी दुनिया (भाषा अंक—मार्च' अप्रैल १९६५)

९. हिन्दी भाषा —डा० भोलानाथ तिवारी

१०. हिन्दी साहिय, उद्भव और विकास—राम बहोरी शुक्ल,
भगीरथ मिश्र,

११. हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा

१२. सप्त सिन्धु (उपभाषा विशेषांक) नवम्बर, दिसम्बर, (६५)
जनवरी १९६६

१३, Some Salient Features of Dogri.
–Prof. Gauri Shankar M A B LITT.

१४. डोगरी भाषा और व्याकरण—श्री बंसी लाल गुप्ता M. A.

—धर्मचन्द्र 'प्रशान्त'

"डुग्गर" शब्द का विवेचन

डुग्गर भूमि प्राकृतिक सौंदर्य के कारण भारत भर में प्रसिद्ध रही है। यद्यपि यह भूमि पिछड़ी रहने के कारण साहित्य में उतना स्थान नहीं पा सकी फिर भी इसका वर्णन महाभारत और पुराणों में अवश्य मिलता है। महाभारत में इस क्षेत्र को मद्रदेश कहा है। पाण्डु की दूसरी पत्नि माद्री यहीं की थी और महासती विदुला की भी जन्म भूमि यही है।

पाणिनि ने मद्र देश को जनपद कहा है और इसे प्राचीन वाहिक का उत्तरी भाग माना है (अ० १८ श्लोक १३१), इसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) बतलाई है। मद्रदेश के दो भाग थे, पूर्वी मद्र और अपर मद्र अर्थात् पश्चिमी मद्र। यह देश इरावति (रावी) और झेलम के बीच पड़ता है और बीच में चन्द्र भागा नदी बहती है। चन्द्रभागा और रावी के बीच का क्षेत्र ही हमारा डुग्गर है।

उत्तर वैदिक साहित्य में भगवती वैष्णव देवी के पवित्र त्रिकूट पर्वत का वर्णन मिलता है। अथर्व वेद में इसे त्रिककुत् कहा गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में इसकी व्याख्या की है। त्रिककुत् पर्वते (५।४।१४७)। उन्होंने इसे सुरमे के लिये प्रसिद्ध माना है वैदिक इण्डिक्स में पाश्चात्य विद्वान कीथ ने त्रिककुत् (त्रिकूट) को उत्तरी वाहिक (पंजाब) और कश्मीर के मध्य में माना है। त्रिककुत् शब्द महाभारत में कर्ण पर्व में भी आया है (५४–२९)। पद्मपुराण, विष्णु पुराण, वामन पुराण और वायु

इत्यादि पुराणों में इस पवित्र भूमि का वर्णन मिलता है जिसमें पापनाशिनी देविका नदी बहती हैं। इसके तट पर बसने वाले स्थान और इसके उद्गम क्षेत्र (शुद्धमहादेव) का भी वर्णन आया है। पाणिनि ने भी इसका वर्णन किया है। देविका कूला: शालमः (७–३–१)। इसके तट पर सुन्दर प्रकार के चावल होते थे।

पाणिनि ने अंवष्ठ और आंबष्ठ इन दो नामों का वर्णन किया है। युनानी मत के अनुसार अंबष्ठ (Sambastar) था और वह चन्द्रभागा के आर-पार था। आज भी अम्बारां और अम्ब चन्द्रभागा के आर-पार है (अखनूर के निकट) छोटे-छोटे ग्रामों के रूप में हैं। हो सकता है कि महाभारत काल में यह दोनों छोटे छोटे राज्य रहे हों। ये लोग कौरवों की ओर से लड़े थे। अम्बारां की खुदाई में कुछ खण्ड मूर्तियें और टैराकोटा उपलब्ध हुए उन पर युनानी कला की पूरी छाप है। इससे भी इस स्थान की प्राचीनता का पता चलता है।

पाणिनि ने डुग्गर भूमि पर बहने वाली दो नदियों का वर्णन किया है—भिद्य और उद्ध्य। भिद्योदघ्यौ नदे (१. १. ११५)। ये दोनों रावी की सहायक नदियें हैं। भिद्येरावति, उद्घ्योरावति। डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'पाणिनि कालीन भारत' में इसका वर्णन किया हैं। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में भगवान् राम और लक्ष्मण की उपमा इन दोनों नदियों से की है।

तोयदागम इवोद्धयभिध्य योर्नामधेय सदृशं पिचेष्टित्तम् (सर्ग ११, श्लोक ८)। इन दोनों नदियों को हीरानगर तहसील में बहने वाली नदियां बेंई और उज्झ माना गया है। डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी इस बात का वर्णने किया है।

इस प्रकार इस भूमि का वर्णन कहीं न कही अवश्य मिलता है परन्तु 'डुग्गर' (द्विगर्त) शब्द किसी भी ग्रंथ में नहीं मिला। इसी प्रकार बैक्टेरियन और हूनों के राज्य में यह क्षेत्र सम्मिलित रहा है परन्तु उनके उद्धरणों में भी द्विगर्त शब्द कहीं नहीं मिला। चीनी-यात्री ह्यूनसांग राजौरी भिम्बर के रास्ते कश्मीर गया था परन्तु द्विगर्त का उसने भी कहीं नाम नहीं सुना। महाकवि कल्हण ने भी कहीं द्विगर्त की व्याख्या नहीं की। जब कि उसने

किश्तवाड़, भिम्बर, राजौरी, पुन्छ, बलौर इत्यादि स्थानों का चर्चा किया है।

'डुग्गर' शब्द 'द्विगर्त' का अपभ्रंश है, यह कई विद्वानों का मत है। परन्तु अष्टाध्यायी में गर्त शब्द मिलता है (४, २, ११६) इसे गड्ढे का पर्यायवाची माना है और चक्रगर्त बहुगर्त शब्द मिले हैं परन्तु द्विगर्त शब्द नहीं है। इसी प्रकार काशिका में वृक गर्त भ्रु जाल गर्त शब्द मिले हैं परन्तु द्विगर्त नहीं। गर्त अर्थ गड्ढे के अर्थ में प्रयुक्त होता है, झील अथवा सरोवर के लिये नहीं। परन्तु जिन्होंने झील के लिये गर्त' शब्द का परिचय दिया है, वे भूल गये कि डुग्गर में झील एक नहीं, कई हैं। जिस पर्वत शिखर पर कपलास कुण्ड है उसीके आगे चार-पांच झीलें हैं। 'डुग्गर' द्विगर्त को अपभ्रंश माना गया है और इनको सरूईंसर और मानसर मान लिया गया है। परन्तु डुग्गर की परिधि इन्हीं दो झीलों तक नहीं हैं। डुग्गर में तो भद्रवाह से लेकर बसोहली तक भी क्षेत्र है और वहां चार-पांच झीलें हैं।

दूसरे यदि हम भाषा शास्त्र की सहायता लें तो भी 'गर्त' का अपभ्रंश गत्त' मिलेगा 'ग्गर'' नहीं। प्राकृत में 'गर्त' का अपभ्रंश 'गत्त' अथवा 'गड्ड' मिलता है, 'ग्गर' नहीं। हिन्दी का 'गढ़ा' गत्त से ही निकला हैं। डुग्गर में झील के लिये 'सर' शब्द प्रयुक्त होता है, 'गत्त' नहीं।

जिन्होंने 'द्विगर्त्त' को 'डुग्गर' का मूल रूप माना, उन्होंने त्रिगर्त को समक्ष रखा। 'त्रिगर्त' शब्द ती महाभारत अथवा पुराणों में मिलता है परन्तु 'द्विगर्त' कहीं नहीं मिला जिससे यही सिद्ध होता है कि द्विगर्त त्रिगर्त का सादृश्य (anology) मात्र है। अतः जब हमारे सामने प्रमाण मौजूद हैं तो इधर-उधर अंधेरे में टटोलने की आवश्यकता ही क्या है ? कारण इसमें भाषा शास्त्र बिल्कुल सहायता नहीं करता।

कुछ विद्वानों ने बिना तर्क के 'डुग्गर' को 'दुगर्त' से जोड़ने का प्रयास किया है और इसी प्रकार दुगर्म से भी 'डुग्गर' की उत्त्पत्ति बतलाई गयी है। एक और व्यक्ति का कथन है कि 'डुग्गर' शब्द 'दुष्कर' का विकृत रूप है जैसे दुष्कर–दुक्कर–डुग्गर।

चंबा के अजायबघर में एक तख्ती पर कुछ स्थानों के नाम के साथ 'डुगर' शब्द मिला है। इसका वर्णन प्रो० गौरी शंकर जी ने अपनी पुस्तक

(Introduction to Dogri) में किया है। परन्तु वे भी किसी निश्चय पर नहीं पहुंचे हैं।

डुग्गर शब्द की प्राचीनता

सर्व प्रथम हमें डुग्गर शब्द का परिचय फारसी के प्रसिद्ध कवि खुसरो से मिलता है। नपहर में उन्होंने, कश्मीरियो लाहौरियो के साथ-साथ 'डोगरो' का प्रयोग किया है। यह काल १३वीं शताब्दि का अन्त है। उस समय खुसरो को पंजाबी शब्द का पता नहीं था परन्तु डुग्गर की व्यापकता का उसे परिचय था। वैसे प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 'डुग्गर' 'पंजाबी' से अधिक प्राचीन है। पंजाब शब्द का प्रयोग मुगल शासन के अन्तिम भाग में हुआ है। खुसरो का डुग्गर शब्द का उल्लेख इसकी प्राचीनता का द्योतक है व्युत्पत्ति का नहीं।

कोई बीस वर्ष की बात है जम्मू के एक सज्जन श्री वैसाखी राम सूरी राजस्थान में कुछ समय ठहर कर लौटे तो मैंने उनसे पूछा कि राजस्थान में आपने क्या देखा। उन्होंने उत्तर दिया कि मुझे वहां डुग्गर ही मिला। डुग्गर और राजस्थान की संस्कृतियों की इतनी समता मिली है जिसे देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया हूं। उन्होंने मुझे कहा कि इस बात की खोज होनी चाहिए। इसके कुछ वर्ष उपरान्त मुझे राजस्थान में जाने का सौभाग्य मिला और मैं कितने ही ग्रामों में भी घूमा। सचमुच मुझे राजस्थान डुग्गर का ही रूप मिला। दोनों की संस्कृतियों में बड़ी समता मिली।

राजस्थान में गोबर भूमि पर लेपने का रिवाज है और उसपर मुहावर डाले जाते हैं। मुहावर को डुग्गर में मौहारा बोलते हैं : घर के बाहिर मुंग अथवा मकोल फेरने और दीवारों पर रंग-बिरंगे चित्र लिखने की प्रथा डुग्गर में है और वही राजस्थान में भी देखी। राजस्थानी घर की बनावट डुग्गर के प्राचीन घर की शकल से बिल्कुल मिलती है। ऊपर झरोखों और बखारचों के नमूने आज भी कोटा में आप देख सकते हैं। दरवाज़ों और दीवारसाख पर मीनाकारी डुग्गर में मिलती है अथवा राजस्थान में। पंजाब हमारा पड़ोसी प्रान्त है, वहां की गृह कला और संस्कृति में महान् अन्तर मिलता है।

यहां आप चड़ेयाई सन्दरानी की तर्फ चले जायें और राजस्थान में कोटा के किसी ग्राम को देखने जाय तो आपको कुछ भी अन्तर जान नहीं

पड़ेगा। मकान के बाहरले दरवाजे की मीनाकारी देख कर जिस घर में विवाह हुआ है इसका पता लग जाता है। बाहिर दरवाजे पर तोरण लगा रहता है, वहां भी इसे तोरण ही कहते हैं। विवाह में पीले किये हुए आटे की आरती का राजस्थान में भी रिवाज है। कैहल वहां भी बजाई जाती है परन्तु उसके लिये शब्द कोई और है। विवाह की रस्म डुग्गर और राजस्थान में एक ही है।

यहां की वेशभूषा और राजस्थानी वस्त्रों में बड़ा अन्तर है राजस्थान में महिलायें धोती पहनती हैं सुत्थन नहीं, परन्तु घाघरा तो आम पहना जाता है। जम्मू में आज से ४० वर्ष पूर्व कोई भी डोगरा स्त्री घाघरे के बिना बाहिर नहीं निकलती थी। घाघरे के साथ राजस्थान में चोली पहनी जाती है, यहां चोलड़ी थी जिसका रिवाज एक सौ वर्ष पहिले था। पुराने चित्रों में आप डोगरा स्त्रियों को चोलड़ी पहने देखेंगे। डुग्गर में चोलड़ी चली आती थी परन्तु अन्त में यह बूढों के शोक के दिनों तक सीमित रह गयी। पिछली पौध के लोग जानते हैं कि चोलड़ियें स्त्रियें पहनतीं तो नहीं थी परन्तु हर घर में मिल जाती थीं, बूढ़ों की मृत्यु के दस दिनों में इसे दीवार पर टंगने का रिवाज था। यह रिवाज पंजाब में नहीं है, केवल राजस्थान में है।

बसोहली अथवा जम्मू शैली के आप चित्र देखें और फिर राजस्थान शैली के चित्र देखें उनमें विचित्र ही समन्वय मिलेगा। आप देखेंगे तो कह देंगे कि दोनों की वेशभूषा एक ही स्थान की जान पड़ती है। आज से पच्चास वर्ष पूर्व विवाह में वर को पोशाक पहनाई जाती थी रंगदार पाजामा उसके ऊपर जामा और सिर पर रंगदार पग्ग, यही राजस्थानी पोशाक थी जो आज वहां भी नहीं है। पंजाब हमारा पड़ोसी देश है, वहां इस प्रकार की पोशाक कभी नहीं रहीं।

आज भी डुग्गर में बूढी स्त्रियें गिद्दी पहिनती है परन्तु कुछ ही वर्ष पूर्व हर महिला गिद्दी पहिनती थी। यह राजस्थान में आज नहीं है परन्तु पता लगाहै कि जैसलमेर में आज से ६०–७० वर्ष पूर्व इसका रिवाज था।

आज वो गहने नये-नये डिजायन के मिलते हैं परन्तु सौ वर्ष पहिले का गहना आप उठा लें, वही गहना उस समय राजस्थान में पहना जाता था। पुराने दो गहने प्रसिद्ध थे। बांटे और पौंचियें। पहला कंधे के नीचे भुजा पर बांधा था और पौंचियें कलाई पर। इसी प्रकार गोखरू का

भी रिवाज था। नाम और जुगनी, कानों के बाले और अर्ध्य चन्द्रमा और कर्णफूल और चक्क यह सभी राजस्थानी गहने हैं। विवाह के समय वधु को जो पोशाक आज से ५०–६० वर्ष पूर्व पहनाई जाती थी—पसोआज—वह बिल्कुल राजस्थानी पहरावा था।

भाषा

डोगरी और राजस्थानी भाषाओं का आपस में बड़ा सम्बन्ध जान पड़ता है। राजस्थानी चार उपभाषाओं का नाम है, मवैती (जयपुर की) हड़ूती (जोधपुर की) मारवाड़ी उदयपुर की और जैसलमेरी जैसलमेर की। डोगरी हड़ूती और मवैती के निकट जान पड़ती है। मारबाड़ी और जैसलमेरी से यह दूर ही है। आज की राजस्थानी बहुत उन्नति कर चुकी है ज्यों ज्यों भाषा उन्नत होती चली जाती है उसमें अन्तर पड़ता जाता है। आज की डोगरी और स्व० महाराजा रणवीर सिंह के समय में लिखी पुस्तकों की डोगरी में महान् अन्तर है। प्रेमसागर की हिन्दी और आज की हिन्दी में जमीन और आस्मान का अन्तर हैं। परन्तु दो सौ वर्ष प्राचीन राजस्थानी की कोई पुस्तक उठा लें और उसको डोगरी के साथ मिलायें तो दोनों की भाषा में आपको बड़ा कम अन्तर दिखाई पड़ेगा। (Vowel gradation) जो भाषा शास्त्र में एक महत्व-पूर्ण विषय है डोगरी और राजस्थानी में करीबन एक ही।

डोगरी में तूं मन्नें में जां—राजस्थानी में इसी प्रकार मन्नें अथवा 'आखें' प्रयोग मिलते हैं।

निमक के लिये राजस्थानी शब्द लून है। म्हाडा, दही के लिये मट्ठा कोट, छज्जा, क्लिङ्, कज़क, कुडम।

इसी प्रकार अनेकों शब्द दोनों भाषाओं में, एक ही हैं। डोगरी में भक्तिरस के गीत के लिये कारक और वीररस के लिये बार है। ये दोनों राजस्थानी शब्द हैं। लोक गीत गाने के लिये राजस्थान में भी छोटी–सी सारंगी काम में लाई जाती है जिस प्रकार डुग्गर में, वहां भी गारढी स्थान स्थान पर कारकें और बारें गाते फिरते हैं। तुरी नृसिहा राजस्थानी साज हैं। हमारे यहां जैमल, फत्ता, रसालू, गुग्गा, इत्यादि लोकगीत वारों में प्रसिद्ध है यह वहां के हैं, इसी प्रकार मण्डलीक और कालीबीर इत्यादि देवता दोनों स्थानों पर पूजे जाते हैं।

जिस प्रकार हमारे डुग्गर में अक्सर ग्राम गुड़ा कहलाते हैं । यहां कई गुढ़ हैं। यह गुढ़ा शब्द बिल्कुल राजस्थानी है । वहां भी प्रायः ग्राम गुढ़ा नाम से पुकारे जाते हैं। राजस्थानी स्त्री घर में गोबर लेपती है, सजावट के लिये डुग्गर की तरह मुहारे डालती है, यह मुहारा शब्द राजस्थानी है। तात्पर्य यह कि राजस्थान और डुग्गर की संस्कृति और भाषा में आश्चर्यजनक समानता है। आखिर यह है क्यों ? यह प्रश्न विचारनीय है।

राजस्थान में डुंगरपुर स्थान है पहले यह रियासत थी । यहां के रहने वालों को डोंगरा कहा जाता है । वहीं पर पता लगा कि राजस्थानी भाषा में डूंगर शब्द का अर्थ पहाड़ी है और पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाले को डोंगरा कहा जाता है । गुजराती मैं डोंगरा शब्द उससे पूर्व भी मेरे मस्तिष्क मे था और मैंने डोगरा और डोंगरा में अन्तर जानने का प्रयत्न किया था । मुझे कई बार विचार भी आया कि कहीं डूंगर और डुग्गर और डोंगरा एक ही न हों। जब राजस्थान और डुग्गर की संस्कृति और भाषा में समन्वय देखा तो मेरा विश्वास हो गया कि इन दोनों में कोई भिन्नता नहीं है ।

राजस्थान के प्राचीन इतिहास को देखने से पता चलता है कि वहां से बौद्ध-काल में और उसके बाद आठवीं शताब्दी के उपरान्त दो-तीन सौ वर्ष तक राजस्थान से लोग निकल कर उत्तरी भारत में जा बसते रहे हैं । यह (Migration) केवल राजस्थान से ही नहीं हुई गुजरात से सहस्रों परिवार नेपाल में जा कर बसे आज की पाली भाषा इस बात की गवाह, है उसमें २० प्रतिशत शब्द गुजराती हैं ।

डोगरी और राजस्थानी शब्दों की समानता और वहां और यहां की संस्कृति की समता से पता लगता है कि राजस्थान से जो लोग इन पर्वतों पर आकर बस गये, वही डोगरे कहलाये । जिस तरह राजस्थान में स्थान स्थान पर किले हैं, उसी प्रकार यहां पर आकर उन्होंने जगह जगह किले बनाये । राजस्थानी और डुग्गर के किलों की निर्माण कला एक ही थी ।

डुग्गर के इतिहास से पता चलता है कि यहां के मूल निवासी राजपूत चन्द्र बंसी थे। चनैनी, मनकोट, बिलावर, बसोली और भड्डु में चन्द्रवंशी राजपूतों का राज्य था । रघुवंशी बाहिर से आये हैं । स्व० महाराजा रणबीर सिंह जी ने डुग्गर के राजों का वंश वृक्ष बनवाया जो

लिथो में छपा और बाद में १९४८ विक्रम संवत में मुफीद आम प्रैस जम्मू में छपा उसमें राजा जम्बू लोचन से बीस पीढ़ी पहले राजा अग्निगर्भ का जिकर है, उसमें नोट लिखा है कि यही राजा राजस्थान से सीसावर्ण सीसोदिया वंश से निकल कर यहां चले आये। यह वंश वृक्ष मेरे पास है जो इस बात का बड़ा प्रमाण है कि यहां के राजपूत राजस्थान से आये हैं। परन्तु (Migration) देश परिवर्तन केवल राजपूतों ने ही तो किया नहीं होगा उसमें ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र भी सम्मिलित रहे होंगे, इसके लिये अभी और अनुसन्धान की आवश्यकता है। हमारे राजे महाराजे आरम्भ से अपना सम्बन्ध राजस्थान से बतलाते रहे हैं। कुछ इतिहास कारों में इन्हें जयपुर के कछवाहे राजपूत कहा है। जम्मू में आ बैठने के कारण जमुआल कहलाये और जो साम्बा में बैठ गये थे समयाल कहलाये। यह अभी और गवेषणा का विषय है, इस पर किसी और पेपर में प्रकाश डाला जायगा।

अब प्रश्न रह जाता है कि डूंगर और डोंगरा शब्दों के अनुस्वार क्यों लुप्त हो गये? डूंगर डुग्गर और डोंगरा डोगरा क्यों बन गये।

हम देखते हैं कि डोगरी भाषा में विन्दु अथवा अनुस्वार का लुप्त होना साधारण रूप से मिलता है जोकि पंजाबी और हिन्दी में नहीं है।

हिन्दी—मां, पंजाबी—माँ डोगरी—मा।

हिन्दी साँस	डोगरी साह
,, फूंकना	,, फूकना
,, सेंकना	,, सेकना
,, डांटना	,, द्रड्डना
,, ऊंच	,, उच्च
,, छींट	,, छीट
,, छींक	,, छिक्क
,, ऊंट	,, ऊट
,, कान्च	,, कच्च
,, साँच	,, सच्च
,, डंसना	,, डसना
,, ईंट	,, इट्ट
,, छींटा	,, छिट्ट

हिन्दी	डोगरी
,, संवारना	,, सोआरना
,, डूंगा (Punjabi also)	,, डूगा
,, संझवार	,, मजाटै
,, मूण्डण	,, मूनन
,, पंसारा	,, पसारा
,, पेंच	,, पेच
,, हंसना	,, हसना
,, ग्रांख	,, ग्रक्ख
,, साँप	,, सप्प
,, फांक	,, फक्क
,, होंठ (P)	,, ग्रोठ
,, खूंसना	,, खूसना
,, टंकोर	,, टकोर
,, धंसना	,, धसना
,, फंसाना	,, फसाना
,, सींचना	,, सेड़ना
, मूंछ	,, मुच्छ
,, झंझावात	,, झक्खड़

पंजाबी	डोगरी
,, सौंह	,, सोह
,, चौंका	,, चौका
,, छींट	,, छीट
,, जोंक	,, जुक्क
,, हूंक	,, हूक
,, मंदरा	,, मदरा
,, शौंकन	,, शौकन
,, सौंगी	,, सौगी
,, सौंकन	,, साकन

पंजाबी		डोगरी	
,,	पंसारी	,,	पसारी
,,	झांट	,,	झत्त
,,	नौं	,,	नौ
,,	रोंह	,,	रोह
,,	तूं	,,	तो
,,	हौंसला	,,	हौसला
,,	भैंस	,,	मैह
,,	दरुंत्तर	,,	दरूत्तर
,,	जठूंत्तर	,,	जठूत्तर
,,	हैंकडी	,,	हैकडी
,,	फींसी	,,	फिम्मनी
,,	सेंक	,,	सेक
,,	गूंतर	,,	गूतर

इस प्रकार हम देखते हैं डोगरी में शब्द का अधिकतर अनुस्वार लुप्त हो जाता है जबकि हिन्दी पंजाबी में वही शब्द अनुस्वार के साथ बोले जाते हैं। इस कारण डूंगर डुग्गर और डोंगरा डोगरा हो गयें हैं।

इस लिये जिन्होंने द्विगर्त ही डुग्गर का मूल रूप माना है उनके सामने कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है परन्तु डूंगर की युक्ति दृढ़ है।

डोगरों के निवास स्थान होने के कारण यह धरती डुग्गर कहलाती है। डुग्गर के निवासी होने के कारण हम लोग डोगरे नहीं कहलाते हैं। इसका प्रमाण हमारे सामने है वह यह कि जिस प्रकार डोगरा शब्द प्रचलित तथा परिचित है, डुग्गर नहीं। यह गुजरात, बंगाल, पंजाब, राजस्थान, मद्रास, महाराष्ट्र की तरह प्रसिद्ध नहीं है परन्तु डोगरा शब्द भारत भर में ही नहीं संसार में भी प्रसिद्ध है। डोगरा देश से बाहिर जाने पर कितने व्यक्ति कहते हैं कि मैं डुग्गर का रहने वाला हूं यदि कोई कह भी दे तो समझेगा कौन? महाराजा रणवीर सिंह के प्रश्रय में जितना साहित्य छपा है उसमें डुग्गर शब्द का बहुत ही कम प्रयोग मिलता है।

जम्मू के मैदानी इलाके और [illegible] शकरगढ़ और गुजरात

में डुग्गर शब्द बड़ा प्रचलित था, कारण वहां से पंजाबी का रूप बदल कर डोगरी से प्रभावित हो जाता था, इसलिये पंजाबी से भिन्नता दिखलाने के लिए डुग्गर शब्द प्रचलित हो गया था ।

एक सज्जन ने लिखा है कि यदि आप द्विगर्त को कल्पित शब्द समझते हैं तो यह आया कहां से ? बात यह है कि महाभारत और पुराणों में त्रिगर्त शब्द मिलता है । डुग्गर शब्द के मूल शब्द को ढूंढने वालों ने इसे निकाला है, यह त्रिगर्त का सादृश्य (analcgy) मात्र है । यदि द्विगर्त शब्द कहीं से मिल जाय तो समस्त झमेला ही मिट जाता है और जब तक वह मिलता नहीं, यह कल्पित कहलाता रहेगा । सरूईसर और मानसर को गर्त मान कर द्विगर्त शब्द की उत्पत्ति मानी गयी है परन्तु वे भूल गये यहां गर्त एक नहीं कई हैं और गर्त का अर्थ सरोवर नहीं गढ़ा है । इस लिये द्विगर्त की युक्ति खंडित हो जाती है । इसके विपरीत डूंगर वाला मत कोई नया नहीं पुराना है । प्रसिद्ध विदेशी पर्यटक Drew ने भी अपनी पुस्तक Territories of Jammu and Kashmir में इसका उल्लेख किया है ।

—शिव कुमार शर्मा

डोगरी भाषा और उसका क्षेत्र

डोगरी भाषा शौरसेनी प्राकृत से विकसित भारतीय आर्य भाषाओं की मध्यवर्गी उपशाखा जिसमें ब्रजभाषा, राजस्थानी, गुजराती, पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी और पहाड़ी भाषाएं हैं उनमें से एक है। डाक्टर अब्राहम ग्रीयर्सन ने अपने भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण में सपादलक्ष की भाषाओं को पहाड़ी भाषाएं सम्बोधित किया है, परन्तु डोगरी भाषा को पंजाबी के अन्तर्गत रक्खा है और इसका प्रदेश सपाद लक्ष का पश्चिमी भाग बतलाया है। ग्रीयर्सन महोदय ने डोगरी भाषा को पंजाबी की एक उपभाषा माना तो है, परन्तु साथ ही यह स्वीकार भी किया है कि डोगरी के संज्ञारूप तथा अन्य शब्द समूह पंजाबी से भिन्न हैं। डा० ग्रीयर्सन के उपरान्त देश के अन्य भाषाशास्त्रियों में आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी ने पहाड़ी भाषाओं को राजस्थानी का रूपान्तर सा माना है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपना वर्गीकरण डा० चैटर्जी के आधार पर ही दिया है। वास्तव में सभी भाषाशस्त्रियों ने डा० ग्रीयर्सन को ही आधार मान कर अपने विचार व्यक्त किये हैं।

डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी ने ही सर्व प्रथम भाषागत विशेषताओं की दृष्टि से डोगरी के महत्व को पहचाना तथा इसे सीमावर्ती भाषा (a frontier language) कहा है। इसका महत्व इस लिये भी बताया है, कि इसकी पश्चिमोत्तर सीमा से दर्दीय भाषाएं आरम्भ होती हैं और यह बीच

की एक कड़ी की तरह स्थित है। डा० वर्मा जी की प्रेरणाओं के फलस्वरूप ही आज इस प्रदेश के कुछ विद्वानों का ध्यान भाषा विज्ञान की दृष्टि से इस की ओर गया है। इसके अतिरिक्त डोगरी साहित्यकारों के साहित्य संवर्धन के लिये किये गए भगीरथ प्रयत्नों के फलस्वरूप आज डोगरी भाषा का सशक्त तथा निखरा हुआ साहित्यिक रूप भी हमारे सामने वर्तमान है। आज जब अनेक भाषागत दृष्टिकोणों से इस भाषा पर विचार विमर्श हो रहा है, अतः इसका कौन सा क्षेत्र है, तथा किस क्षेत्र में यह अपनी पड़ोसी भाषाओं से पृथक होना आरम्भ हो जाती है, इस का दिग-दर्शन कराना ही इस लेख का उद्देश्य है।

भाषाओं के नामकरण प्रायः प्रदेशों के नाम तथा जातियों के नामों पर हुआ करते हैं। एक विशिष्ट प्रदेश में सदियों इकट्ठे रहने पर उस प्रदेश के लोगों में जो भाषा, सभ्यता तथा सांस्कृतिक एकरूपता सी आ जाती है उसके कारण ही उस समाज को एक जाति विशेष की उपाधि मिल जाती है। डोगरी साहित्य में जिस प्रदेश का हमें अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है वह वास्तव में डोगरी भाषा का ही प्रदेश नहीं वह डोगरी जाति का प्रदेश है। डोगरी कवियों ने इस प्रदेश का वर्णन करते हुए जम्मू, भद्रवाह भलेस, चम्बा, नूरपुर, हरिपुर, कांगड़ा आदि प्रदेशों के नाम लिये हैं। इन से डोगरा जाति तथा उस के प्रदेश पर काफी प्रकाश पड़ता है परन्तु डोगरी भाषा का क्षेत्र इतना नहीं। इसके अतिरिक्त जम्मू प्रान्त, चम्बा स्टेट तथा कांगड़ा जिला के लोग जब भारतीय सेना में भरती होते हैं तो वह अपने आप को डोगरा ही लिखवाते हैं। शासन की ओर से भी उन की सेना को डोगरा फौज का ही नाम दिया है। इन सब तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि डोगरा जाति एक विशेष जाति है जो इस सारे पहाड़ी प्रदेश में सदियों से इकट्ठा रहती आ रही है; परन्तु भाषा की दृष्टि से इस प्रदेश में अनेक उपभाषाएं हैं और उन का आपस में गहरा सम्बन्ध भी है। उन सब भाषाओं में डोगरी सब से प्रधान है तथा अधिक बड़े क्षेत्र में और अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है।

डोगरी भाषा का प्रदेश सपादलक्ष के पश्चिमी भाग में स्थित है जो पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते हुए चन्द्रभागा नदी के पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश से लेकर सतलुज नदी तक करीब दो सौ मील से कुछ अधिक लम्बे,

ग्रौर पंजाब का मैदानी प्रदेश जहां समाप्त हो कर पहाड़ी प्रदेश ग्रारम्भ होता है वहां से ले कर पांच से सात हजार फुट ऊंची पर्वत-माला जहां ग्रारम्भ होती है वहां तक लगभग ५० से ८० मील चौड़े क्षेत्र में फैला हुग्रा है। इस प्रदेश के उत्तरी-पूर्व में कुल्लू, मण्डी-सुकेत तथा शिमला ग्रादि के पहाड़ी प्रदेश स्थित है। दक्षिण में पंजाब के होशियारपुर जिला तथा गुरदासपुर जिला ग्रौर पाकिस्तान का स्यालकोट जिला स्थित है। पश्चिम में रियासत की नोशहरा ग्रौर राजौरी आदि तहसीलें हैं, ग्रौर उत्तर में तहसील रियासी की नेग्राबत ग्ररनास, तहसील रामबन, तहसील भद्रवाह ग्रौर चम्बा क्षेत्र का समस्त उत्तरी भाग स्थित है। इस दो सौ मील लम्बे क्षेत्र में डोगरी की वास्तव में दो मुख्य उपभाषाएं हैं। एक जम्मू की डोगरी ग्रौर दूसरी काँगड़ा की डोगरी है। इनको ग्रलग उपभाषाएं इस लिये कहा है कि यह एक ही भाषा होते हुए भी इन के बोलने की सुर (Tone) में कुछ ग्रन्तर है तथा कुछ सर्वनामों ग्रौर उन के कारकों में भी कुछ साधारण सा ग्रन्तर है। जम्मू तथा कांगड़ा उपभाषा के क्षेत्रों के मध्य में रावी नदी के दोनों ग्रोर बसोहली, चम्बा ग्रौर जिला कांगड़ा के कुछ क्षेत्र पड़ते हैं। इस क्षेत्र के पश्चिम में जम्मू का क्षेत्र, उत्तर में भद्रवाह तथा चम्बा की चम्बेग्राली तथा गद्दी बोलियों के क्षेत्र, पूर्व में जिला कांगड़ा की तहसील नूरपुर के क्षेत्र ग्रौर दक्षिण में कठूग्रा तथा पठानकोट के क्षेत्र पड़ते हैं। ग्रतः इन सब के प्रभावों के कारण यहां की बोली जम्मू तथा कांगड़ा की बोलियों से कुछ भिन्न सी प्रतीत होती है। इसी प्रकार विलासपुर के कुछ क्षेत्र में जिस के पश्चिम में जिला कांगड़ा, उत्तर में मण्डी सुकेत, पूर्व से शिमला क्षेत्र तथा दक्षिण में पंजाब का जिला होशियारपुर का क्षेत्र स्थित है एक ग्रौर बोली भी है जो कांगड़ा की बोली में शिमला की ग्रोर वाली सुर (Tone) को लिए हुए पंजाबी तथा हरेग्राना की जाट बोलियों के कुछ शब्दों के सम्मिश्रण से एक नया ही रूप लिए हुए है जिसे स्थानीय नाम के ग्राधार पर कल्हूरी उपभाषा कहा जाता है। इसे भी भाषागत विशेषताग्रों के आधार पर कांगड़ा की डोगरी की ही उपभाषा के रूप में रक्खा जा सकता है। इस प्रकार डोगरी की मुख्य रूप से चार उपभाषाएं हो जाती हैं। प्रथम जम्मू की डोगरी, दूसरी बसोहली चम्बा उपभाषा, तीसरी कांगड़ा की भाषा ग्रौर चौथी कल्हूरी उपभाषा है।

इन उपभाषाग्रों में भी भौगोलिक कारणों से तीन प्रकार की सुरें

(Tones) सुनने को मिलेंगी। प्रथम उस स्थान की भाषा की सुर है जहां भौगोलिक दृष्टि से कंडी प्रदेश समाप्त होकर मैदानी प्रदेश आरम्भ हो जाता है। इस क्षेत्र की बोली पर पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है क्योंकि यहां ही पंजाब का प्रदेश भी साथ लगता है। जब इस क्षेत्र से उपर की ओर चलें तो प्रथम छोटी-छोटी पहाड़ियों वाला प्रदेश आता है तथा उसको पार करने के उपरान्त सुन्दर बावलियों वाला प्रदेश जो दो पर्वत-मालाओं के मध्य एक आंचल की तरह स्थित है आता है। कंडी तथा यहां की भाषा अपने ठेठ रूप में है। जब हम इस प्रदेश से और उपर की ओर चलें तो पांच और सात हजार फुट ऊंची पर्वत माला वाला प्रदेश आता है। यहां की बोली की सुर नीचे की बोली से बदलना आरम्भ हो जाता है और अधिक पहाड़ी-पन को लिये हुए है। इस प्रकार यदि हम सारे डोगराभाषी क्षेत्र का भ्रमण करें तो हमें भाषा के अनेक भेद मिलेंगे, परन्तु उन सभी को उसी उपभाषा के अन्तर्गत स्थान दिया जावेगा जिस में विकार आ जाने पर वह अलग भासित होती है। इस प्रकार इस लेख में डोगरी के केवल चार भेदों को ही माना गया है जिन में सर्व-प्रथम हम जम्मू क्षेत्र की डोगरी भाषा से आरम्भ करते हैं।

जम्मू क्षेत्र की डोगरी भाषा जिला जम्मू, जिला उधमपुर, जिला कठूआ की तहसील कठूआ, तह० हीरानगर और तहसील बिलावर के अधिक भाग में और तहसील अखनूर तथा तहसील रेयासी के साथ लगने वाले नौशहरा तथा राजौरी के कुछ भाग में बोली जाती है। इस सारे क्षेत्र में भी जहां दूसरी भाषाओं के साथ इसका मेल होता हैं वहां कुछ विकार अवश्य प्रतीत होता है अतः अपने पूर्ण ठेठ पन में इसका वास्तविक क्षेत्र जम्मू तहसील का कंडी प्रदेश, तहसील अखनूर का पहाड़ी प्रदेश जिस में चौकी चौरा आदि सम्मिलित हैं, फिर उसके साथ ही लगने वाला तहसील रेयासी का पौनी क्षेत्र, फिर दरया चनाब को पार कर के पूर्व की ओर बढ़ते हुए रियासी, कटरा, पैंथल, चड़ेयाई, उधमपुर तथा रामनगर के क्षेत्र, फिर रामनगर से दक्षिण की ओर बढ़ते हुए रामकोट, डींगाअम्ब तथा सल्लन आदि क्षेत्र और वहां से फिर पश्चिम की ओर बढ़ते हुए तहसील हीरानगर के कंडी क्षेत्र जिन में रई-कूटा तथा घगवाल आदि क्षेत्र आते हैं तथा तहसील साम्बा के कंडी क्षेत्र पड़ते हैं। और यदि इस ठेठ डोगरी के क्षेत्र में ही भाषागत प्रवृत्तियों के अनुसार डोगरी भाषा का

मूल केन्द्रीय क्षेत्र ढूंडा जाय तो उस में जम्मू तहसील के कण्डी भाग जिस में वीरपुर, सून्ामा, छन्नी हिम्मत, पलौड़ा, कोट, भलवाल आदि क्षेत्र आते हैं से लेकर उधमपुर का क्षेत्र जिस में कटरा, पंथल, चड़याई और उधमपुर तक के क्षेत्र आते है बह वैठता है। वैसे तो बोली जाने वाली भाषा के अनेक रूप हुआ करते हैं। बच्चों, पुरुषों, स्त्रियों, विभिन्न पेशेवर लोगों की बोली, शहरी तथा ग्रामीण बोली में सूक्षरूप से कुछ न कुछ अन्तर तो हुआ ही करता है तो भी मोटे तौर पर जानकारी के लिये जम्मू उपभाषा का एक नमूना दिया जाता है।

डोगरी:—

एक्का आदमिएं दे दउं जागत हे। एक्क दिन निक्के जागतै आपने बब्बेई आखेआ पइ "ए बापू जी घरै दी जादातु दा जेड़ा हेस्सा मिगी औंदाऐ ओ मिकी दई ओड़ो।" बब्बे जेकी बी जादात है ही ओ दौनें जागतें च वंडी दित्ती। जेस लै लौके जागते अपना हेस्सा लई लेआ ते ओ दूर कुतै मुल्खै च गेआ उठी॥"

अब हम जम्मू उपभाषा का कठूआ क्षेत्र से अवलोकन करना आरम्भ करते हैं। इधर हमें सर्व प्रथम कठूआ से लगने वाले रावी के पार के क्षेत्र की भात्रा में डोगरी और पंजाबी का मिलाजुला स्वरूप मिलेगा। रावी नदी के तट से आठ नौ मील पूर्व की ओर बढ़ते ही भाषा में पंजावीपन इतना अधिक बढ़ जाता है कि उसे डोगरी कहना व्यर्थ होगा। गुरदासपुर नगर रावी नदी से करीब दस मील के अन्तर पर स्थित है। गुरदासपुर नगर से करीव एक दो मील के अन्तर से लेकर पठानकोट नगर तक रावी नदी के पूर्वी तट का करीब सात आठ मील चौड़ा क्षेत्र हम डोगरी के अन्तरगंत रख सकते हैं। इस क्षेत्र की रहने वाली मुख्य जातियां लोवाने, सैनिएं, राजपूत, ब्राह्मण तथा महाजन हैं। इनमें से लोवाने तथा सैनिएं तो पंजावी भाषा का प्रयोग करते हैं, परन्तु राजपूत, ब्राह्मण तथा महाजन डोगरी भाषा का प्रयोग करते हैं। यह लोग प्राय: अपने रिश्ते चम्बा, कांगड़ा और जम्मू के प्रदेशों में ही करते हैं। यह लोग घरों में डोगरी परन्तु वाहर पंजावी वोलते हैं, पढ़ाई-लिखाई में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। इनकी स्त्रियों बच्चों की भाषा तो कुछ ठेठ पन लिये हुए है परन्तु पुरुषों की भाषा पंजाबी [illegible] है।

तहसील कठूआ के दक्षिण में नगरी-पड़ोल, एरवां, संगारवां तथा रावी और उज्ज नदी के मध्य में स्थित जिला गुरदास पुर के क्षेत्र जिस में नरोट जैमलसिंह, कीड़ियां-मकवाल आदि गांव आते हैं इसी प्रकार की डोगरी पंजाबी मिश्रित भाषा का ही प्रयोग करते हैं। तहसील हीरानगर के क्षेत्र कोट-पुन्नू जो उज्ज नदी के मध्य में स्थित है वहां की भाषा की भी यही स्थिति है। इस प्रकार की डोगरी पंजाबी मिश्रित भाषा उज्ज नदी को पार करके साथ-साथ पश्चिम की ओर बढ़ते हुए मढ़ीन तक बोली जाती है। इस के आगे पाकिस्तान सीमा के साथ २ पश्चिम की ओर बढ़ते हुए साम्बा तहसील के रामगढ़ क्षेत्र तक हमें ठेठ डोगरी ही मिलेगी।

तहसील साम्बा के रामगढ़ क्षेत्र तथा उसके पश्चिम में तहसील रणवीर सिंह पुरा के पाकिस्तान से लगने वाले क्षेत्रों में डोगरी पंजाबी का मिला-जुला स्वरूप ही प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार जम्मू से रणवीर सिंह पुरा जाने वाली सड़क के पूर्व की ओर बिशनाह आदि स्थानों पर तो ठेठ डोगरी ही बोली जाती है परन्तु इस तहसील की दक्षिणी और पश्चिमी सीमा पर तथा रणवीरसिंह पुरा कस्बे में तो प्रायः पंजाबी ही सुनने को मिलती है। बहुत कम लोग डोगरी बोलते मिलते हैं। इस तहसील में कस्बे के आस-पास के गांवों में बहुत से लोग भिम्बर, पुंछ और मुज़फराबाद से आये हुए बसे हुए हैं। यह लोग प्रायः पंजाबी ही बोलते हैं। तहसील के पश्चिमी भाग में प्रधान रूप से बोली जाने वाली भाषा को चिभाली बोली कहा जाता है। यह बोली इस क्षेत्र में सन् १९४७ ई० के बाद भिम्बर क्षेत्र के लोगों के आ कर बस जाने पर आई है। इसका स्वरूप इस प्रकार है।

"एक्क आदमी दे दो मुड़े हे। एक्क दिन निक्के मुड़े ने अप्पने प्यो गी आखेआ के" जायदाद दा जेड़ा बी हेस्सा मिगी औंदा ऐ ओ तुस मिगी देई देओ। प्यो ने घर दी सारी जायदाद दोएं मुड़ें च बंडी दित्ती। जिस ले छोटे मुड़े ने अपना हेस्सा लेलेआ ते ओ बार परदेस टुरी गेआ। उत्थे जाइये उन्ने अपनी सारी जादात बुरे कम्मा च पै के जाया कर दित्ती।"

इस प्रकार की भाषा का प्रभाव जम्मू तहसील के क्षेत्र अंद्रवाह, जो तवी के किनारे-किनारे चन्द्रभागा नदी तक विस्तृत है, उस पर भी है।

चन्द्रभागा नदी को पार कर के जम्मू तहसील के उपरान्त तहसील अखनूर आती है। इस तहसील का दक्षिणी भाग ज्योड़ियां आदि क्षेत्र है और पश्चिमी भाग छम्ब आदि क्षेत्र है। ज्योड़ियां तक तो ठेठ डोगरी ही बोली जाती है परन्तु ज्योड़ियां के दक्षिण में बहुत थोड़ा क्षेत्र है जो स्टेट के अधिकार में है वहां के कुछ गावों का नाम मट्टू, सेंथ आदि है। यहां की बोली को वहां के लोग भिगली बोली या बजवाथी बोली कहते हैं। यह भाषा पाकिस्तान में स्थित बजवाथ क्षेत्र की बोली है और चिभाली के उदाहरण से मिलती-जुलती है।

यदि हम पलांवाला से छम्ब क्षेत्र की ओर बढ़ें तो मनावर के पास पहुंचते-पहुंचते भाषा में परिवर्तन आ जाता है। इस क्षेत्र में जाट और लुबानों की बोली में स्पष्ट अन्तर प्रतीत होता है परन्तु राजपूत तथा ब्राह्मण आदि लोग डोगरी का ही प्रयोग करते हैं। यहां भाषा रेखा मनावर की तवी जो नौशहरा से आती है, को माना जा सकता हैं। इस तवी के पूर्वी तट की ओर तहसील का कंडी क्षेत्र जो कालीधार से सटा हुआ है इसमें देवा, कलीठ आदि स्थान आते हैं प्राय: ठेठ डोगरी का ही प्रयोग करते हैं। छम्ब क्षेत्र में जाट आदि लोगों में बोली जाने वाली बोली का उदाहरण इस प्रकार हैं।

"एक आदमी दे दो पुत्तर थे। निक्के पुत्तर ने अपने प्यो गी आखेआ कि जिन्ना हिस्सा घर दा मैंनू औंदा ए दे देओ। प्यो ने जिन्नी जादाद है सी घर दी दौआं पुत्तां नूं दे दित्ती। जिल्लें जादाद दा निक्के पुत्तरे ने अपना हिस्सा लै लेआ तां ओ दूर किते मुल्क च टुर गेआ।"

तहसील अखनूर के उत्तर में कालीधार नामक एक छोटी सी पर्वत शृंखला आती है। उसे पार करने पर रियासी और उसके साथ लगने वाले तहसील नौशहरा तथा राजौरी के क्षेत्र आते हैं अखनूर से पुंछ वाली सड़क पर अखनूर से चौकीचौरा और वहां से कालीधार पार कर के भामला तथा सुन्दरबनी स्थान आता है जो आजकल तहसील नौशहरा की न्याबत सुन्दरबनी का हेड-क्वार्टर है। भांमला में रिआसी से पौनी हो कर आने वाली सड़क आ मिलती है। सुन्दरबनी से नौशहरा जाने के लिये दो मार्ग हैं। एक पुराना मार्ग जो सुन्दरबनी से कांगड़ी भजवाल होता हुआ बेरीपत्तन

पहुंचता है तथा वहां से नौशहरा । और दूसरा मार्ग सुन्दरबनी से ठंडा पानी, बल्ल तथा सेयोट से होता हुआ नौशहरा जाता है। वास्तव में इधर भाषा की विभाजन रेखा हम नाला सेयोट को मान सकते हैं जो कालाकोट की ओर से सोलकी धरमसाल स्योट तथा कांगड़ी भजवाल के पास से होता हुआ वैरी पत्तन के पास नौशहरा की तवी नदी से मिलता है । वास्तव में पौनी से पश्चिम की ओर बढते हुए लेतर, भावला, सुन्दरबनी, ठंडा पानी और सेयोट तथा कांगड़ी से उत्तर की ओर बढ़ते हुए नाला सेयोट के किनारे किनारे कालाकोट तक का क्षेत्र सारा डोगरी भाषी क्षेत्र ही है परन्तु यहां की भाषा पर नौशहरा और राजौरी की भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। कालीधार के साथ-साथ लगने वाला कांगड़ी भजवाल तक का क्षेत्र डोगरी के अधिक ठेठ पन को लिये हुए है, उसके कुछ उत्तर की ओर का लेतर, सुन्दरबनी, ढंडा पानी और सेयोट तक का क्षेत्र नौशहरा की बोली से कुछ प्रभावित हुआ प्रतीत होता है तथा सेयोट से उत्तर की ओर बढ़ते हुए धरमसाल, सोलकी कुलवाई, सैहर और कालाकोट तक का क्षेत्र कुछ कुछ राजौरी की भाषा से प्रभावित प्रतीत होता है । सुन्दरबनी से दो मील के अन्तर पर स्थित स्थान ढंठा पानी की बोली का उदाहरण इस प्रकार है ।

"एक्क आदमी दे दो जागत ऐ हैं । इक्क दिन निक्के जागते ने अपने बब्बे गी आखेआ पई "ए बापू जी घर दी जादात दा जेड़ा किश माड़ा वनदा ए ओ मी दइ उड़ो ।" बब्बे ने जो बी जादाद है सी दौनें पुत्रें च अद्दी-अद्दी बण्डी देइ डड़ी । जेलै निक्के लौड़े अपना हेस्सा लइ लेआ ते ओ दूर कुहे मुल्खेई गेआ उठी । उत्थे जाइए थोड़े गे दिने बेच्च ओन्ने सारी जादाद पैड़े कम्मे बिच्च रोड़ी दित्ती ।"

स्योट से कालाकोट तक के क्षेत्र का उदाहरण कथा रूप में तो नहीं मिल सका परन्तु कालाकोट के कुछ व्यक्तियों की आपस में बातचीत के कुछ वाक्य इस प्रकार हैं ।

"अगर में कोई बुराई करां तां तुस जुत्तियां मिगी मारेओ पई । पर म्हाड़े पर झूठा अलजाम लाया ऐ । ओ अपने घर बड्डे होड्न ते मे के उस्सी समजनां । में बी उस्सी अलजाम लाइए छोड़सां ।"

"तुस कुत्थे गे सो ।"

"तुस कुत्थे रौन्देश्रो ? श्रस इत्थैं गे रौनेश्रां ।"

"इस की के श्राखदे न ।"

"श्रपनी गौ पकड़ लै ।"

"मैं बी इस कम्म गी करी सकनां ऐं, ते श्रो बो इस्सी करी सकना ऐं ।"

सन् १९४७ ई० की उथल-पुथल के कारण बहुत से लोगों को अपने घरों को छोड़ कर दूसरे स्थानों पर बसना पड़ा । इस सारे क्षेत्र में सुन्दरवनी, भामला, लेहतर, भारख, बाजाबाई, कांगड़ी, ठंडापानी, सेयोट, घरनसाल, सोलकी, कालाकोट इत्यादि स्थानों पर पुंछ, मीरपुर, भिम्बर इत्यादि के लोगों को बसाया गया इस लिये बाहर व्यवहारिक रूप से आपस में पंजाबी का रूप बोला जाता है, परन्तु घरों पर तो लोग अपनी भाषाए ही बोला करते हैं जिन में डोगरी ही प्रधान रूप से बोली जाती है ।

इस ओर रेयासी तहसील का अन्तिम स्थान पौरा कोटला है । पौराकोटला उसी पर्वतमाला में स्थित है जिस में कालाकोट । इन क्षेत्रों से उत्तर दिशा और पीर पंचाल के पैरों में स्थित बुद्धल तथा हुब्बी कण्डी आदि क्षेत्रों के दक्षिण में जो बीच का क्षेत्र रेयासी तहसील के पहाड़ी क्षेत्र ठाकराकोट के साथ लगता हुआ उसके पश्चिम में स्थित है यह भी डोगरी भाषा भाषी प्रदेश है । यहाँ की डोगरी पहाड़ी प्रकार की है तथा ठाकराकोट क्षेत्र की भाषा जैसी मिलती-जुलती सी है । इसी क्षेत्र को बुद्धल में मालों बुन्न कहा जाता है तथा इसमें नरला, ख्वास और त्रेडू आदि स्थान आते हैं । इसी के पूर्व में तहसील रेयासी का ठाकरा कोट क्षेत्र स्थित हैं ।

ठाकराकोट क्षेत्र के उत्तर में अन्स नदी को पार करके पीर-पंचाल पर्वतमाला वाला क्षेत्र आता है । वहां बुद्धल से लेकर गूल, रामबन, डोडा आदि से होते हुए किश्तवाड़ तहसील के आरम्भ होने तक के क्षेत्र में खसी बोली की कुछ उपभाषाएं बोली जाती हैं । ठाकराकोट की बोली उत्तर में इन्हीं पहाड़ी बोलियों से घिरी हुई है । यहां के कुछ गांवों के नाम तुलीवन्ना, चाना, शिकारी, डण्डावागत आदि है । पश्चिम में राजौरी तहसील की पोठवारी बोली का क्षेत्र है । ठाकराकोट के एक गांव पनासा की बोली का उदाहरण इस प्रकार है ।

"इक्की आदमिएं दे दउं लौड़े ने। निक्के लौड़े बाप्पूएई आखेआ पई" "बाप्पू जेका मिआं हेस्सा औंदा ए मिगी देई ओड़।" बाप्पूऐ जेड़ी जादाद ही दौनिएं लौड़ेंगी बंडी देई ओड़ी। जिसले उने अपना हिस्सा लेई लेआ ओ परदेस गेआ उठी। उथें ओ कुबुद्धिएंच पइऐ अपना मालमत्ता गोआई ऐठा।"

ठाकराकोट से पूर्व की ओर चनाब नदी को पार करके रेयासी के उत्तरी भाग में सलाल से लेकर ऊधमपुर तहसील के लांदर क्षेत्र तक फैला हुआ प्रदेश कसाली तथा बम्हाग क्षेत्र कहलाता है। वहां की भाषा भी डोगरी ही है तथा डोगरी के सीमावर्ती रूप का अच्छा उदाहरण है। बम्हाग क्षेत्र के बिलकुल सामने चन्द्रभागा नदी को पार करके पीर पंचाल के आंचल में भटल गूल तथा रामबन का क्षेत्र आता है। भाषा निरीक्षण के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि बम्हाग क्षेत्र का भाषागत सम्बन्ध गूल क्षेत्र के धर्मकुण्ड, महां कुण्ड, भजभस्ता, कलीमस्ता, ढेडा, नरसिंहा आदि गांवों की बोली से अधिक है जो खसी बोली है तथा रामबन की बोली से मिलती है। इन स्थानों की भाषाओं का क्रमानुसार निरीक्षण करने से डोगरी पर दर्दीय प्रभाव का स्पष्ट ज्ञान हो सकता है क्योंकि कश्मीरी और डोगरी के मध्य की कड़ी रूप में यही खसी भाषाएं स्थित हैं।

इस अवसर पर एक बात और भी बता देना चाहता हूं कि बम्हाग क्षेत्र का चन्द्रभागा पार वाले क्षेत्रों के साथ बहुत निकट का सांस्कृतिक सम्बन्ध भी है। वहां के "Folk lore" तथा पुराने अवशेषों के द्वारा डोगरा सभ्यता और इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ सकता है। धर्म कुण्ड महा कुण्ड आदि स्थानों पर पुराने अवशेष आज भी बाकी है जो दिन प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं? बम्हाग के कल्हूरा, नेलना, संगपाल आदि क्षेत्र-देवता और उनके कथा गीत आज भी हैं परन्तु उनका अब ह्रास होता जा रहा है। इन क्षेत्रों में शिक्षा का प्रचार जैसे जैसे बढ़ रहा है ठेठ डोगरी का प्रयोग भी बढ़ता चला जा रहा है तथा खसी बोलियां दरया के पार ही सीमित होती जा रही हैं। इन सब की खोज से विगत डोगरा सभ्यता व इतिहास पर प्रकाश पड़ सकता है। अब इन क्षेत्रों की भाषा के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। बम्हाग मे साड़ी नामक स्थान का उदाहरण इस प्रकार है।

"इक्क आदमियां दे दौं पुत्तर हे। इक्क देन निक्के पुत्तरा ने बब्बागी गलाया जे जादास्तु दा जेका हिस्सा म्हाड़ा बनदाऐ वा मियो दई शोड़। बब्बा ने घरा दी जादास्त दौनैं पुत्तरें गी बंडी के दई शोड़ी। निक्के पुत्तरा ने अपना हेस्सा लेई लेआ ते वा परदेसागी चली गा।"

दूसरा उदाहरण चन्द्रभागा के पार ढेडा नामक स्थान की बोली का है जों गूल क्षेत्र में पड़ता हु।

"इक्क आदमी दे दो पुत्तर थिए। इक्क त्याड़े लौके पुत्रै ने वाप्पू जो आक्खा के जादादी दा हिस्सा जेड़ा मीं इन्ना, वा मीं जोगा देई छोड़। बब्बा ने घरा दी सारी जायदाद दोनों पुत्तरों जो बंड़ी दी। जिस वेले निक्के पुत्रै नै अपरणा हिस्सा लेई लेआ वा परदेस चलेगा।"

तीसरा उदाहरण रामबन के पास कास्ती गढ़ नामक स्थान का है जो रामबन क्षेत्र की ठेठ भाषा समझी जाती है।

"एक्की बब्वो दे दूई पुत्तर भुते। एक्की दी निकड़े पुत्रे बब्वों जौए, के मिए हिस्सो खंडाई दे। बब्वो दुइए पुत्रां ने घराती जादात वंडी दितियान। ज्न दी निकड़े पुत्रे जादात बंडी दा परदेस चली गेओ।"

बम्हाग क्षेत्र से और पूर्व की ओर चलें तो नाला पिंथल जो बसनोत और लांदर क्षेत्रों के मध्य से बहता हुआ चन्द्रभागा में जा मिलता है उसको पार करके डोगरी भाषा का क्षेत्र उपर की ओर बढ़ने लगता है। यहां भाषा की विभाजन रेखा लांदर, सन्नासर बटोत आदि क्षेत्रों को घेरते हुए पतनीटाप तक आ पहुंचती है और फिर ऊंची पर्वत शृंखला जो भद्रवाह और रामनगर तहसीलो की विभाजन रेखा है वही बन जाती है। लांदर, सन्नासर, लद्दा और बटोत पतनीटाप आदि क्षेत्रों में बहुत से लोग जिन्हें गद्दी कहा जाता है रहते हैं, उनकी भाषा भद्रवाही आदि से मिलती-जुलती है। धार लद्धा पर गुजरों की भी काफी संख्या है जो सर्दियों में जम्मू, उधमपुर आदि क्षेत्रों में आ जाते हैं। मेरे मतानुसार उनकी भाषा भी डोगरी का ही एक रूप है जो पहाड़ी भाषाओं की इनी गिनी कुछ विशेषताओं को लिये हुए है। उसका उदाहरण इस प्रकार है।

एक्क आदमी का दो मुंडा हा। एक्क दिन लौका मुंडा नै बब्बै गी केओ के जेदात दा जेड़ा हिस्सो मन्नों आवे देओ। [illegible] जयदात

दोनां मुण्डा नूं दे ओड़ी। जिस बेलै निक्का मुण्डा नै आपना हेस्सा ले लेआ ते ओ परदेस उठ गेओ।"

लद्धा, कुद्द, सन्नासर, बटोत, चनैहनी, सुद्धमहादेव तथा उसके और पूर्व की ओर उधमपुर और रामनगर में बोली जाने वाली ठेठ डोगरी बोली ही कुछ पहाड़ी सुर (Tone) को लिये हुए बोली जाती है। परन्तु बटोत से बानिहाल की ओर जाते हुए रामबन तथा रामसूह और किश्तवाड़ की ओर जाते हुए अस्सर, बग्गर, पुल डोडा, ठाठरी आदि स्थानों पर प्राय: डोगरी ही सुनने को मिलेगी। इसका कारण यह है कि यह सारे स्थान सड़कों के किनारे पर स्थित हैं और यहां पर दुकानें करने वाले लोग डोगरी भाषी प्रदेश से आये हुए हैं। वास्तव में यहां की बोली अलग है जो वहां के ग्रामीण लोग प्रयोग में लाते हैं। बटोत से भद्रवाह की ओर जाते हुए मल्होरी के आगे नाला रग्गी के पार भद्रवाही भाषा बोली जाती है, परन्तु इस ओर अस्सर बग्गर के उपर के क्षेत्रों के नाम मरमत, गल्हान, रुधार आदि हैं। भद्रवाही लोग इन लोगों को खस और इनकी बोली को खसी बोली कहते हैं। वैसे तो चन्द्रभागा के पार के क्षेत्र सुराज से लेकर बुद्धल तक की बोलियों को खसी और लोगों को खस कहा जाता है परन्तु रामबन के पास का क्षेत्र सुराज और बोली सुराजी नाम से बुलाई जाती है। वैसे भी इस खसी बोली का कुछ हद्द तक प्रभाव लांदर, बम्हाग तथा वहां से चन्द्रभागा के पार के क्षेत्रों में भी कुछ कुछ प्रतीत होता है। बम्हाग के कुछ गांवों में जो दमनोत के नीचे चन्द्रभागा नदी के पास हैं इसका प्रयोग करते हैं। भद्रवाही, सुराजी तथा खसी का तुलनात्मक उदाहरण इस प्रकार है।

हिन्दी	भद्रवाही	सुराजी	खसी
१. कहां जना हैं।	१. कुर गानुअएं	१. कोले गानो शु।	१. कद्दे गन्ना वा।
२. कब वापस आना हैं।	२. केरा एजनूएं	२. कने नानो शु।	२. कने इच्छा वा।
३. आप का क्या नाम है।	३. तुश नाओं कोनें।	३. तुणों नाम कु शो।	३. थ्वाड़ा के ना।
४. नीचे जाना है।	४. उंडू गानु अए।	४. उंडो गानो शु।	४. उंडा गाना वा।
५. तुम्हारा घर कहां है।	५. तुशु घर (हिं) कोड़ी अए।	५. तुसाउं घर कोले शु	५. त्वारा घर (हिं) कड़ी उसे।

कुद्द तथा शुद्द महादेव क्षेत्र से पूर्व की ओर तवी नदी दोनों किनारों की पर्वत माला के प्रदेश में मरोठी से डुड्डू तक तथा वहां से तवी नदी की घाटी को छोड़ कर उज्ज नदी की घाटी वसंत गढ़ तक दो प्रकार की बोलियां एक साथ बोली जाती हैं । एक तो डोगरी ही सुर में कुछ पहाड़ी पन लिये हुए और दूसरी गद्दी बोली है जो भद्रवाही से कुछ मेल खाती है बोली जाती । इस क्षेत्र के लोग प्रायः दुभाषिये से हैं । गद्दी लोग घर पर गद्दी बोली का प्रयोग करते हैं और ठक्कर डोगरी का । दोनों बोलियों केउदाहरण इस प्रकार है ।

डोगरी :- "इक आदमी दे दो पुत्तर थे । निक्के जागते अपने बब्बे गी आखेआ कि मेरा घरा दा हिस्सा मिक्की दइउड़ । बब्बे जिन्नी जादात थी दौनें पुत्रैं बिच्च बंडी दित्ती । जिस वेलै निक्के पुत्रै अपना हिस्सा लइ लैता ते ओ दूर देसैं गी गेआ उठी ।"

गद्दी :—"असेरै दो पुत्तर हैन । एक्क दिन लौके पुत्रे बब्बैयो बल्लू जे मेरा हिस्सा दे रक्ख मुक्कना रहवेना । बब्बे जदाद अपनी जगा जमीन बंड्डी दित्ती । जेखने अपना हेस्सा लेउ जो परदेस चले गो । तिने सारे जादाद बदमाशी करेरीं खुर्द-बुर्द करी रक्खी ।"

इस प्रकार जम्मू की डोगरी के क्षेत्र का परिचय समाप्त होता है तथा डोगरी की बसोहली चम्बा उपभाषा के क्षेत्र का विवरण आरम्भ होता है । इस उपभाषा की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं ।

हिन्दी	जम्मू की डोगरी	बसोहली चम्बा की डोगरी
हम को	असें गी ।	साकी या असां की ।
आप को ।	तुसें गी ।	त्वाकी या तुसें की ।
कर दिया ।	करी ओड़ेया ।	करी रक्खेया ।
जाकर, खाकर ।	जाइऐ, खाइऐ ।	जाई करी, खाई करी ।
कह दिया ।	आक्खी ओड़ेया ।	आक्खी रक्खेया ।
मैं कर लूंगा ।	अउं करी लैङ ।	अउं करी लैंगा ।
हम खा लेंगे ।	अस खाई लैंगे ।	अस खाई लैंगे ।
मैं चल पड़ूंगा ।	अउं चली पौंङ ।	अउं चली पौंगा ।
तुम कर लोगे ।	तुस करी लैंगे ।	तुस करी लैंगे ।

इस उपभाषा का क्षेत्र पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते हुए उज्ज नदी से लेकर रावी को पार करके नूरपुर नगर तक का है, तथा दक्षिण से उत्तर की ओर चलते हुए इधर बसोहली तहसील की सीमा आरम्भ से लेकर तथा रावी के पार पठानकोट उत्तरी क्षेत्र तथा शाहपुर कंडी से लेकर रावी नदी के दोनों किनारों के साथ साथ चम्बा नगर तक विस्तृत है।

डा० ग्रीर्यसन ने डोगरी का वर्गीकरण करते हुए शाहपुर कण्डी तथा उससे उपर की तहसील पठानकोट का पहाड़ी क्षेत्र कण्डेयाली (dialect) का क्षेत्र बतलाया है और बसोहली के उत्तर पूर्व की ओर रावी के किनारे पर स्थित चम्बा स्टेट के भटेयालता क्षेत्र की भाषा को भटेयाली (dialect) का नाम दिया है परन्तु मेरे मतानुसार यह दोनों एक ही (dialect) हैं अलग अलग नहीं।

डा० ग्रीर्यसन महोदय ने बसोहली का कहीं नाम तक भी नहीं लिया है। वह बसोहली क्षेत्र की बोली को जम्मू के साथ, कांगड़ा के साथ, भटेयाली के साथ या कि कण्डेयाली के साथ मानते हैं इसका कहीं भी कोई विवरण नहीं मिलता। वास्तव में रावी के किनारे २ पठानकोट से चम्बा तक भ्रमण करने के उपरान्त बात यह प्रतीत होती है कि यह एक ही उपभाषा है जो पंठानकोट के पास पंजाबी के मेल से एक प्रकार की भासित होती है तथा चम्बा के पास पहुंच कर पहाड़ी भाषाओं के सम्पर्क से दूसरे प्रकार की भासित होती है। परन्तु यह विकार जिस उपभाषा में आया है वह बसोहली तथा रावी के पार भटवां, दुनेरा आदि क्षेत्रों की भाषा है जो इस सारे क्षेत्र का मध्य स्थान है। यह तथ्य शाहपुर कण्डी, बसोहली तथा भटयालता की बोली के उदाहरणों से स्पष्ट हो जावेगा।

(i) कण्डेआली का उदाहरण जो डा० ग्रीर्यसन से लिया गया है इस प्रकार है।

(i) "कुसे मनुक्खे दे दौं पुत्तर थे। उनां बिच्चों लौकड़े ने बब्बे की आखेआ" "बापू जी मिकी मेरा घरै दा हिस्सा देई देओ।" उनी उना की रसोटी बण्डी दित्ती। थोड़ेआं दिना पिच्छों लौकड़े पुत्रै ने सारी रसोटी किट्ठी कीती ते कुसे दूर मुल्के की चली गेआ।"

बसोहली का उदाहरण :—

(ii) "इक्क ग्रादमिए दे दो पुत्तर थे। इक्क दिन निक्के पुत्रै ग्रपने बव्वे की ग्राखेग्रा जे जादाती दा जेड़ा हेस्सा मेरे हिस्से ग्रौंदायै ग्रो मिकी देई देग्रो। बव्वे जादाद ग्रापने दौंनैं पुत्रैं की बण्डी दित्ती। जिस वेलै निकड़े पुत्रे ग्रपनी जादाती दा हिस्सा लेई लेआ ते ग्रो परदेस चली गेग्रा।"

(iii) भटेआली का उदाहरण जो डा० ग्रीयर्सन से लिया गया है इस प्रकार है।

"इक्क ग्रादमिऐं दे दो जागत थे। उनें बिच्चा निक्के, वव्वे कन्ने गलाया" "ए वापू घरवारी दा हेस्सा जे मिक्की मिलदा ऐं मिक्की दे।" "उसी घरवारी बण्डी दित्ती। थोड़ेग्रां रोजैं उप्रेन्त निक्के जागते सब किश किट्ठा करी दूर मुल्खेग्रा की गेग्रा।"

(iv) कुछ वाक्य जो इस कथा खण्ड से भिन्न है चम्वे की बोली के उदाहरण रूप में दिये जाते हैं।

"मेरे घर चम्बे न। कल्ल मेरे भाई दा व्याऐ। में उत्थें जरूर जाणा। तम्हारी क्या मर्जीऐ में जां या नईं जां। व्या बड़ा खरा होग्रा उत्थे मते मानू थिये। में मनिमेशै दे मेले जांणाऐं, तैं बी जाना की नईं जाणा। तैं चलना मेले जो ग्रगले साल में वी किट्टे तेरे कन्ने चली पौंगा।"

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि चम्बे पहुंच कर इसी बोली में पहाड़ी ग्रसर ग्रधिक प्रतीत होने लग जाता है। कठूग्रा से करीब दस मील उत्तर की ग्रोर रेतीली छोटी-छोटी पहाड़ियों की श्रृंखला ग्रारम्भ हो जाती है वही कठूग्रा और बसोहली की बोलियों की विभाजन रेखा भी मानी जा सकती है तथा बसोहली चम्बा उपभाषा का आरम्भ यहां से ही माना जा सकता है। बसोहली तहसील के पश्चिमी भाग में उज्ज नदी के पश्चिमी तट पर भड्डू ग्रौर बिलावर क्षेत्रों से बसोहली चम्बा उपभाषा की सुर (Tone) ग्रारम्भ हो जाती है तथा नाज़ ग्रौर भीनी नदियों के पार पहुंचते ही पूर्ण रूप से यह उपभाषा ग्रारम्भ हो जाती है। उस क्षेत्र से और उपर की ग्रोर चलें तो ढग्गर-तम्हान तथा बनी ग्रादि बसोहली तहसील के पहाड़ी स्थान ग्राते हैं जो

भद्रवाह तहसील से जा मिलते हैं। इस क्षेत्र के अधिकतर लोगों की भाषा बसोहली, चम्बा उपभाषा ही है। इस क्षेत्र की भाषा की सुर निचले क्षेत्रों की उपेक्षा अधिक पहाड़ी सुर को लिये हुए है तथा "करीं लैंगा, गलाई लैंगा, चली पौंगा, जाई करी, खाई करी" आदि शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाता है। इस क्षेत्र में रहने वाले गद्दी लोगों की बोली अपनी ही है जिसका उदाहरण डुड्डू क्षेत्र की बोली में दिया जा चुका है। इस क्षेत्र में भण्डार कोट क्षेत्र के कुछ उत्तरी गांव जो चम्बा की सीमा से जा मिलते हैं उनकी बोली अलग ही है जो भद्रवाही से मेल खाती हैं। इस क्षेत्र में मछेड़ी, कोटी चंडेयार, लोहाई और लोआंग यह चार गांव ऐसे हैं जहां कश्मीरी मुसलमान भी रहते हैं जो कश्मीरी बोली का प्रयोग करते हैं।

बनी क्षेत्र के पूर्व की ओर पर्वतों की कठिन उंचाई पार करके चम्बा स्टेट का भटेयालता क्षेत्र आता है जो रावी नदी का तटवर्ती प्रदेश है तथा बसोली नगर से रावी नदी के किनारे-किनारे चलते-चलते उसकी पूर्वोत्तर दिशा में स्थित है। बनी क्षेत्र से आकर रावी में मिलने वाली सेवा नदी को पार करके इसकी सीमा आरम्भ हो जाती है। इस क्षेत्र के पश्चिम में बहुत उची पर्वत माला है जो चम्बा स्टेट को भद्रवाह से अलग करती है इसके उत्तर में चम्बा का चौराहा क्षेत्र स्थित है और उत्तर पूर्वी कोण में रावी नदी के किनारे चम्बा नगर स्थित है। चौराहा क्षेत्र की भाषा अपनी ही है जो भद्रवाही से कुछ अधिक मेल खाती है। खास चम्बा में डोगरी ही बोली जाती है। चम्बा नगर से तीन चार मील उत्तर की ओर चौराहा क्षेत्र की भाषा आरम्भ हो जाती है चम्बा नगर के पूर्व की ओर रावी नदी के किनारे-किनारे जाते हुए करीब चार पांच मील के अन्तर से भरमौरी क्षेत्र की भाषा आरम्भ हो जाती है यह भाषा भी भद्रवाही से मेल खाती हैं तथा गद्दियों की भाषा ही है इस क्षेत्र में प्रायः गद्दी ही अधिक रहते हैं उनकी बोली का उदाहरण इस प्रकार है।

हिन्दी	भरमौरी गद्दी
१. कहां जाना है।	कठि गानुए।
२. मुझ को कपड़ा दो।	मुंजो बी दे ओड्डन।
३. वह मेरा भाई हैं।	ओ मेर भाई भुन्दा।

४.	वह किस का लड़का है।	ओ किसेरा गोबरू ।
५	वह किस की लड़की है।	ओ किसेरी कुड़िया ।
६.	हम भी वहां ही बैंठे थे।	असा बी तिट्ठिए बेठुरे थिए।

चम्बा से रावी पार कर पठानकोट की ओर आते समय डलहौजी से निचले क्षेत्रों में डोगरी का ही प्रयोग किया जाता है। बकलोह से नीचे की ओर बढ़ते हुए उंचा पहाड़ी क्षेत्र समाप्त होकर कण्डी प्रदेश आरम्भ हो जाता है। यहां की बोली तथा बसोहली नगर की बोली में कोई भी अन्तर नहीं। यहां पहुंच कर डोगरी का क्षेत्र काफी चौड़ा हो जाता है जो कांगड़ा की तहसील नूरपुर के नगर नूरपुर और शाहपुर द्रम्मण तक विस्तृत है। पठानकोट के उत्तर में चक्की नदी को पार करके तहसील नूरपुर का क्षेत्र आरम्भ हो जाता है। पठानकोट से कांगड़ा जाने वाली सड़क पर नूरपुर नगर स्थित है। नूरपुर से १५ मील उत्तर में शाहपुर द्रम्मण तक इसी उपभाषा का प्रयोग सुनने को मिलेगा। कुछ-कुछ शब्दों में फेर बदल आना आरम्भ हो जाता है जिस से कुछ-कुछ कभी-कभी भिन्नता सी प्रतीत होने लगती है, जैसे "बैठ जाइए" को जम्मू की डोगरी में "बई जाओ जी" तथा इसका छोटा रूप "ववो जी" कहा जाता है। बसोहली में भी तकरीबन इसी प्रकार से ही कहा जाता है हां कुछ "उ" की झलक "ब" औ "बो" के मध्य में आना आरम्भ हो जाती है। परन्तु नूरपुर पहुंच कर तो यही सुर (Tone) इतनी प्रधान हो जाती है कि इसका उच्चारण स्पष्ट रूप से "बउओ जी" बन जाता है। खैर यह स्पष्ट ही है कि नूरपुर और शाहपुर द्रम्मण से लेकर रावी नदी तक तो बसोहली चम्बा उपभाषा का क्षेत्र हैं तथा इनके पूर्व की ओर कांगड़ा उपभाषा का क्षेत्र आरम्भ हो जाता है। पठानकोट नगर के पश्चिम में स्थित शाहपुर कण्डी की भाषा भी इसी उपभाषा के ही अन्तर्गत आती है। पंजाबी क्षेत्र साथ लगने के कुछ पंजाबी शब्दों का भी प्रभाव पड़ा है।

बसोहली चम्बा उपभाषा के बाद इस क्षेत्र के पूर्व दक्षिण की ओर बढ़ते हुए डोगरी की कांगड़ा उपभाषा की बारी आती है। इस उपभाषा में कुछ सर्वनामों में कुछ अपनी ही विशेषताएं है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं। जम्मू की डोगरी में कर्म कारक का प्रत्यय साधारणतया जहां "गी"

प्रयुक्त होता है वहां कांगड़ा में "जो" का प्रयोग होता है। जैसे :—

जम्मू की बोली में	कांगड़ा की बोली में
असेंगी	असां जो
तुसें गी	तुसां जो
मिगी	मिजो
उसगी	तिस जो

कुछ अन्य सर्वनाम इस प्रकार हैं।

उन्दे	तिनें
उस	तिस
उनेंगी	तिनां की
उस थवां	तै थूं
उत्थे	तित्थूं
उत्थवां	ओथूं

शाहपुर द्रम्मण तथा नूरपुर नगर से पूर्व की ओर सारा क्षेत्र कांगड़ा (dialect) का प्रयोग करता है। इसके अन्तर्गत जिला कांगड़ा की तहसील नूरपुर का नूरपुर नगर तथा शाहपुर द्रम्मण से पूर्व की ओर के क्षेत्र, तहसील डेरा गोपीपुर, तहसील कांगड़ा, तहसील पालमपुर, तहसील हमीरपुर और जिला होशियार पुर की तहसील होशियार पुर तथा तहसील ऊना के पहाड़ी प्रदेश जो जिला कांगड़ा के साथ लगते हैं सम्मिलित हैं।

कांगड़ा और पालमपुर तहसीलों के उत्तरी भाग में चम्बा के भरमौर आदि पहाड़ी क्षेत्र है और उत्तर पूर्व की ओर कुल्लू मनाली आदि पहाड़ी प्रदेश हैं। इन प्रदेशों की अपनी ही बोलियां हैं जो ध्वनि की दृष्टि से गद्दी बोली से मेल खाती हैं। पालमपुर तथा हमीरपुर तहसीलों के पूर्व में मण्डी-सुकेत आदि प्रदेश आते हैं जहां की बोली भी भिन्न है परन्तु डोगरी से अधिक मिलती-जुलती है।

तहसील नूरपुर और डेरा गोपीपुर का प्रदेश एक कण्डी प्रदेश है

तथा पंजाबी के प्रदेश के साथ लगता है इनके उपर की ओर कांगड़ा, पालमपुर और हमीरपुर तहसीलों के क्षेत्र एक आंचलिक क्षेत्र है तथा ठेठ बोली के प्रदेश है। पालमपुर और हमीरपुर के उत्तर और पूर्वीय प्रदेश पहाड़ी बोलियों के क्षेत्र के साथ लगने वाले प्रदेश हैं। इन तीनों प्रकार की बोलियों के उदाहरण नीचे दिये जाते है। नूरपुर से पूर्व तहसील डेरा गोपीपुर में स्थित गुलेर नामक क्षेत्र की भाषा का उदाहरण इस प्रकार है।

"इक्क आदमिऐं दे दौं पुत्तर हे। इक्क दिन लौकैं पुत्रैं बब्बे जो गलाया, जे जायदाता दा जिन्ना वी हेस्सा मे की औंदा ऐ सो मिंजो देई देआ। बब्बे घरै दी जायदात दौनी जागतां च बण्डी दित्ती। ओ भिरी परदेस चली गेआ। जित्थू जाई करी तिन्नी सारी जायदात बुरियां आदता च पई करी गोआई दित्ती।"

दूसरा कांगड़ा का उदाहरण इस प्रकार है :

"कुसे मानूएं दे दो पुत्तर हे। तिनें बिच्चा लौके पुत्रे बब्बे कन्ने बोल्या जे, "ए बापू जी जे किश घरै दे लटे-फटे बिच्चा मेरा हिस्सा होए सो मिञ्जो देओ।" बब्बे तिनां की अपना लटाफटा बण्डी दित्ता। छोटा पुत्तर लटाफटा लेइए दूर देसै की चली गेआ। फिरी तित्थू लुच्चपुने विच्च पइए अपना सारा लटाफटा उड़ाई दित्ता।"

तीसरा उदाहरण पालमपुर में स्थित बैजनाथ स्थान की भाषा का है :

"इक्की बुड़े दे दो पुत्तर थे। इक्क रोज लौके पुत्रै नैं बुड़े जो गलाया कि जायदाद दा जेड़ा हेस्सा मेरे नाएं औंदाए जिस जो मुञ्जो देई देआ। बुड़े अपणी जादाद जितनी वी थी दूईं लड़केआं जो वंड्डी दित्ती। लौका पुत्तर आपणा हिस्सा लइए सै बारें चला गेआ। उत्थू जाई करी उन्नी सारी जाइदात लुचपुणे च गोआई दित्ती।"

इस प्रकार कांगड़ी उपभाषा का विवरण समाप्त होता है और कल्हूरी का विवरण आरम्भ होता है। डा० ग्रीर्यसन ने जालन्धर और होशियार पुर क्षेत्रों में बोली जाने वाली पंजाबी द्वाबी dialect का विवरण लिखते हुए कल्हूरी को द्वाबी पंजाबी की dialect बताया है। परन्तु मेरे

मतानुसार कल्हूरी द्वाबी पंजाबी की नहीं डोगरी की एक dialect है। जो कांगड़ा dialect में पंजाबी के थोड़े शब्दों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई है। इसकी सुर (Tone) पूर्णतया डोगरी ही हैं। जिस प्रकार डोगरी, पंजाबी, गद्दी आदि बोलियों के सम्मिश्रण से मण्डी तथा कुल्लू की बोलियों का स्वरूप बना हुआ प्रतीत होता है। वह सुनने में डोगरी सुर से भिन्न सुर वाली प्रतीत होता हैं लेकिन शब्द भंडार को देखने से डोगरी का अंश अधिक प्रतीत होती है। मण्डी की बोली में 'कहां जाना है ?' को "कितने ती जाणा" मैंने मण्डी तक है" को "में जी कण्डी ती जाणा" तथा 'जाना तो मैंने भी सवेरे ही था पर इस समय जाने लगा हूं' को "जानो तो में सवेरे ही था पर फिरी उन चलेआं" आदि कहा जाता है। इस बोली में गद्दी बोली का "रे" भी मौजूद है तथा भद्रवाही, भरमौरी तथा अन्य पहाड़ी बोलियों की तरह हिन्दी के वर्ण "घ" और "भ" को हिन्दी के वर्ण "ग" और "ब" को low rising tone के साथ बोला जाता है। परन्तु कल्हूरी की इस प्रकार स्थिति नहीं हैं। वह सुर (Tone) तथा शब्द भण्डार की दृष्टि से डोगरी ही है। इसका क्षेत्र बिलासपुर स्टेट है जिसको कल्हूर भी कहा जाता है। इसमें होशियारपुर जिला की तहसील ऊना का कुछ भाग भी सम्मिलित है। कल्हूरी बोली का क्षेत्र जिला कांगड़ा की तहसील हमीरपुर के दक्षिण पूर्वी हिस्से के साथ लगता है। इसके उत्तर में मण्डी सुकेत के प्रदेश हैं। पूर्व में शिमला और दक्षिण में पंजाब के चण्डीगढ़ से लेकर नन्दपुर साहिब से होते हुए नंगल तक के क्षेत्र हैं तथा पश्चिम में तहसील ऊना का क्षेत्र साथ लगता है। इस उपभाषा का उदाहरण डा० ग्रीर्यसन ने के अनुसार निम्नलिखित है।

"इक्की मानू दे दो पुत्तर थे। लौके पुत्रे अपने बुड़े नूं गलाया, जो जादाद मेंरे वण्डे औंदीऐ सो मानू देई दे। तिने सो जादाद आपने दुई पुत्रां नूं वण्डी दित्ती। जदे लौंके पुत्रे अपना वण्डा लई लिया तां दूर परदेसां नूं चली गेआ। उत्थी जाई के तिने आपनी जादाद हे अर्थ गवाई बैठा।

उक्त उदाहरण को पढ़ कर कोई कारण नज़र नहीं आता कि इसे डोगरी की ही एक उपभाषा न माना जाय जबकि यह द्वाबी पंजाबी से नहीं बल्कि कांगड़ा की हम्मीरपुर तहसील की बोली में ही कुछ पंजाबी के इने-गिने शब्द मिलने पर बनी प्रतीत होती है।

इस प्रकार डोगरी का अपनी उपभाषाओं सहित विवरण समाप्त होता है। जहां तक डोगरी भाषा बोलने वालों की जन-संख्या का सम्बन्ध है वह अभी ठीक-ठीक प्राप्त न हो सकने के कारण नहीं दिया जा सका है। फिर भी डा० ग्रीर्यसन के अनुसार जो उन्होंने १८९१ ई० की जन-संख्या गणना के आधार पर दी हुई है यहां दी जा रही है। इससे आज की स्थिति का कुछ हद तक अनुमान लगाया जा सकता है जब कि अब जन-संख्या उन दिनों के ३० करोड़ से बढ़ कर ५५ करोड़ हो चुकी है।

आंकड़े इस प्रकार हैं :

(i) जम्मू की डोगरी	४,३४,०००
(ii) कंडेआली	१०,०००
(iii) भटेआली	१४,०००
(iv) कांगड़ी	६,३६,०००
(v) कल्हूरी	२,०७,३२१
(vi) गुजरी	६०,०००
योग	१३,६१,३२१

इसके अतिरिक्त गुरदासपुर जिला में	६१,०००
स्यालकोट जिला में	७४,७२७
योग	१,३४,७२७

यह १,३४,७२७ जन-संख्या सन् १९४७ ई० से पूर्व तो डोगरी क्षेत्र में थी ही परन्तु अब यह क्षेत्र पाकिस्तान में आ चुके हैं। वहां के हिन्दू ही डोगरी का प्रयोग किया करते थे तथा अब वहां कोई भी डोगरी बोलने वाला नहीं है।

इस लेख के लिखने लिखने में डा० ग्रीयर्सन के अध्ययन से काफी सहायता मिली है। इससे पूर्व डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी, प्रो० गौरीशंकर जी, श्री श्यामलाल जी शर्मा तथा प्रो० रामनाथ जी शास्त्री के डोगरी भाषा पर लिखे लेखों ने भी उचित मार्ग दर्शन किया है। आर्य भाषाओं के इतिहास तथा क्षेत्र सम्बन्धी विचारों का अध्ययन आवश्यक जान का डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० भोलानाथ तिवारी तथा डा० सुनीति कुमार चेटर्जी के विचारों का अध्ययन भी किया। विषय अति विस्तृत था अतः अपनी और से जितना भी संक्षिप्त हो सकता था किया गया है।

इस लेख में दिये गये उदाहरणों के संग्रह में रणवीरसिंह पुरा के पीताम्बर दत्त शास्त्री, रियासी के श्री रामदास जी लखनपाल, श्री बंसीलाल कोहस्तानी M. L. A कास्तीगढ के भगतराम जी, भद्रवाह के श्री अबदुलरहमान जी, डुड्डू के श्रौ जोगी दित्ता जी, राम नगर के श्री तारा चन्द जी ठाकरा कोट पनासर की श्री मती रेशमो ब्राह्मणी, बनी के श्री सुन्दर दास बसोहली के श्री योगराज, गुलेर के श्री ओंकार सिंह जी तथा बैजनाथ के हवलदार धर्मचन्द जी आदि महानुभावों ने सहयोग दिया है। कुछ अन्य महानुभावों का सहयोग भी सराहनीय है जिन से उदाहरण मिले परन्तु उन के नाम नहीं प्राप्त हुए।

डोगरी भाषा को लिखने के लिये देवनागरी लिपि को ही अपना लिया गया है। परन्तु कुछ ध्वनियां हिन्दी से मेल नहीं खाती अतः पढते समय कुछ निम्न बातों का ध्यान रखना अपेक्षित है। डोगरी में हिन्दी की तरह 'घ, झ, ढ, ध, भ' और 'ह' आदि वर्णों की ध्वानियां नहीं हैं और इन के स्थान पर 'क, च, ट, त, प' और 'अ' आदि वर्णों को इनकी low rising tone में उच्चरित किया जाता। चूंकि low rising tone वाली ध्वनियों के लिये हिन्दी लिपि में कोई आकार नहीं है अतः इन्हें "घ, झ, ढ, ध, भ" और "ह" आदि वर्णों से ही व्यक्त किया गया है। "म" वर्ण डोगरी में मौजूद है तथा 'म' की low rising tone भी मौजूद है अतः low rising tone को "म्ह" रूप में लिखा गया है। डोगरी का 'ऐ' स्वर और हिन्दी के "ऐ" स्वर में भी थोड़ा सा अन्दर है। हिन्दी के 'ऐ' का उच्चारण कुछ (अ+ए) साथ साथ बोलने का है।

जब कि डोगरी का "ऐ" ए और आ के मध्य में बोला जाने वाला है जिसे I. P. A. में (ɛ) चिन्ह से लिखा जाता है । डोगरी उदाहरणों को पढ़ने के लिये लिखने में जिन बातों का सहारा लिया है इन का ध्यान रखने से कुछ हद तथा स्पष्ट उच्चारण कर लेने में सहायता मिल सकती है ।

*

प्रो. सत्यपाल शास्त्री

कृषक जीवन सम्बन्धी डोगरी शब्दावली

लगभग तीन वर्ष हुए में गर्मियों की छुट्टिओं में पुन्छ से अपने गांव जाता हुआ जम्मू में कुछ दिन रुका था । एक दिन सायंकाल सड़क पर घूमते-घूमते मुझे श्रद्धेय प्रो० रामनाथ जी शास्त्री से डोगरी कृषि शब्दाबली का संग्रह करने की प्रेरणा मिली थी !

अब जब कि मैंने कृषि शब्दावली का संग्रह करते-करते इस प्रकार के कार्य के साथ सम्बन्ध रखने वाले साहित्य का अध्ययन और मनन किया तो कई स्थल ऐसे आए जहां शास्त्री जी की उस प्रेरणा के पीछे छिपी भावना एवं उद्देश्य के साथ अद्भुत साम्य देखने को मिला। इस सन्दर्भ में उनमें से कुछ विद्वानों के वाक्यों को मैं उद्धृत करना उचित समझता हुं । आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी अपने 'विषय निर्वाचन' नामक लेख में लिखते हैं :— "वर्तमान समय में हमारे देश की एक बड़ी आवश्यकता ऐसे शब्दों के संग्रह की है जो हमारे राष्ट्रीय-जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों में प्रयुक्त हो रहे हैं, परन्तु साहित्यकों की जानकारी से बाहर हैं । प्राचीन-काल से अब तक अपने देश में इतने विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे, कला, व्यापार, पेशे आदि विकसित हुऐ हैं कि सब में प्रचलित शब्दों का संग्रह आज की एक बड़ी आवश्यकता है।

श्रद्धेय डा० वासुदेव शरण अग्रवाल अपने जनपदीय-अध्ययन की एक आंख "शीर्षक-लेख में इस प्रकार लिखते हैं"—"जब हमारी भाषा का सम्बन्व जनपदों से जोड़ा जाएगा तभी उसे नया प्राण और नयी शक्ति प्राप्त

होगी ! गांवों की बोलियां हिन्दी-भाषा का वह सुरक्षित कोष हैं जिसके धन से वह अपने समस्त अभाव और दालिद्द्र को मिटा सकती हैं।"

डा० अम्बा प्रसाद सुमन द्वारा सम्पादित "कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रज-भाषा शब्दावली की भूमिका में डा० अग्रवाल इस प्रकार कहते हैं" "जनपदों में अनेक प्रकार के शिल्पी अपने-अपने ठीहों पर बैठे हुए सहस्रों वर्षों से शिल्प साधना में संलग्न हैं ! जिन शब्दों का जन्म वैदिक युग, महा जनपद युग, गुप्तयुग और मध्ययुग में हुआ, उनमें से कितने ही अपने मूल या कुछ परिवर्तित रूप में आज भी बचे रह गये हैं ! अर्थ और व्युत्पत्ति की दृष्टि से उन शब्दों का संग्रह आवश्यक है !"

डा० बाबूराम सकसेना अपनी पुस्तक सामान्य भाषा-विज्ञान में इसी प्रकार के भाव व्यक्त करते हैं :—भाषा विज्ञान के अनुसार किसी भाषा के शब्दों, पुरों, ग्रामों और व्यक्तिओं के नामों का अध्ययन उस प्रदेश की जाति की संस्कृति आदि के बारे में बड़ी रोचक सामग्री उपस्थित करता है।"

बिहार राष्ट्रीय-भाषा परिषद्द के संचालक श्री शिव पूजन सहाय श्री विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित 'कृषिकोश' के वक्तव्य में भारत भर में कृषि शब्दावली के संग्रह की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहते हैं :- यदि कृषि प्रधान भारतवर्ष की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी कृषि-विषयक शब्दों के ऐसे कोश प्रकाशित हो जायं, तो साहित्य की शब्द-सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जाएगी"।

वास्तव में है भी ठीक और युग की मांग भी यही है। हमारे गांवों में बिखरी मूल्यवान् थाती के प्रति यदि हमारा उचित ध्यान नहीं गया तो मैं समझता हूं कि वह दिन दूर नहीं जब भौतिकवाद एवं मशीन-युग की बढ़ती हुई चकाचौंध और प्रभाव गांवों की इस थाती को बहुत अंशों में बदल देगा ! प्ररम्परागत हल का उदाहरण ही लीजिए जिसका स्थान कारखाने की बनी हुई हल तेजी से ले रही हैं ! और उसका भी ट्रेक्टर आदि मशीनें !

इस प्रकार शास्त्री जी की प्रेरणा के अनुरूप ही मैं अपने गांव में जाकर शब्द संग्रह-कार्य में जुट गया पर यद्यपि लोक साहित्य के प्रति अपनी गहरी 'अभिरूचि ग्रामीण' वातावरण में ही अपना जन्म एवं पालन-पोषण होने से ग्रामीण जन-मानस के साथ निकट का सम्पर्क होने पर भी मेरी न जाने शुरू-शुरू में क्यों इतनी प्रवृत्ति नहीं हुई जितनी कि होनी अनिवार्य थी

सम्भवतः इस विषय का कोई आदर्श सामने न होने से एवं इस विषय में मेरी अनुभव हीनता के कारण ही ऐसा हुआ। किन्तु फिर भी मैं इस काम में लगा ही रहा। अकारादि क्रम से कुछ सूचिएं भी तैयार करलीं किन्तु यदि आज उन पर दृष्टि डालूं तो वे सर्वथा अपूर्ण हैं। इस के बाद मैं पुञ्छ चला गया! पुञ्छ डोगरी का क्षेत्र न होने के कारण मेरा शब्द-संग्रह का काम वहां का वहां ही रह गया!

फिर वहां से जम्मू प्रान्त में डोगरी क्षेत्र के विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले एवं काम करने वाले मित्रों एवं सम्बन्धियों को पत्र लिख कर उन-उन स्थानों की शब्दावली भेजने का अनुरोध किया! उत्तर में कई सज्जनों ने वायदे कर के आज तक भी पूरे नहीं किए, कईयों ने पत्रों के उत्तर ही नहीं दिये, कईओं ने पत्रोत्तर में कई प्रकार के प्रश्न एवं तर्क-वितर्क किए! केवल दो सज्जनों ने कुछ सूचीयां भेजीं! इससे मुझे यह अनुभव हुआ कि यथा समय स्वयं जाकर शब्द संग्रह किया जाए! इसके साथ-साथ मैंने पुञ्छ प्रदेश की शब्दावली का संग्रह करना भी आरम्भ कर दिया, हालांकि इसका मेरे कार्य के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं था! मैंने सोचा तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से इससे भी लाभ ही होगा! इससे मेरी प्रवृत्ति संग्रहीत शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन करने की ओर और बढ़ गई! वर्तमान युग में कोशों का तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर सम्पादन ही उत्तम माना जाता है! भारत में वर्तमान समय में कृषि शब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन करने वालों में डा० विश्वनाथ प्रसाद जी का नाम अग्रगण्य है! उनका विहारी शब्दावलियों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित कृषिकोश एक स्तुत्य प्रयत्न है। अपने कोशकी भूमिका में शब्दावलियों के तुलनात्मक अध्ययन पर बल देते हुए वे कहते है—"तुलनात्मक अध्ययन करकें हम इन कोशों से इस बात का पता पा सकते हैं कि हमारी जनपदीय शब्दावली में कहां तक समानता है और कहां तक अपनी-अपनी विशेषताएं हैं।"

अतः स्पष्ट है कि आधुनिक युग में कोश रचना के लिए शब्दावलियों का तुलनात्मक अध्ययन कितना आवश्यक है। तुलनात्मक अध्ययन से ही हमें भाषाओं के मध्य शब्दों के आदान-प्रदान, एक भाषा का दूसरी पर प्रभाव और एक भाषा की दूसरी भाषा की सहायता से उन्नति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है!

५ सितम्बर १९६४ को मुझे इस विषय में चण्डीगढ़ में डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी से मिलने का सुअवसर मिला। कोश सम्बन्धी शब्दावली के संग्रह और कोश-रचना के विषय में डा० वर्मा के सुझावों में सबके महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि कोश में शब्दों का विन्यास वर्गानुसार होना चाहिए। तब से मैंने उनके आदेशानुसार ही कार्य करना आरम्भ किया। बीच-बीच में उनसे एवं शास्त्री जी से पत्र व्यवहार करके पथ-निर्देश भी प्राप्त करता रहा।

गत वर्ष जुलाई मास में मैंने ऊधमपुर प्रदेश के रठैण नामक स्थान में जाकर शब्द संग्रह किया! उसके बाद पाकिस्तान के आक्रमण से देश के शेष स्थानों के समान पुन्छ में भी संकटापन्न स्थिति आ जाने के कारण अपने दो वर्षों के परिश्रम से संग्रह की हुई इस अमूल्य संपत्ति के नष्ट हो जाने के भय से दिल कांप उठता था, परन्तु भगवान् की दया से कुछ नहीं विगड़ा, यद्यपि दो महीने तक शब्दावली के लिफाफों की धूल भी नहीं झाड़ सका।

इस प्रकार यह कार्य कभी तीव्र और कभी मन्द गति से चलता रहा। शब्दावली का संग्रह करते-करते नित-नये अनुभव होने स्वाभाविक हैं। वास्तव में मनुष्य का कार्य ही उसे अनुभवी बनाता है। मेरे कार्य के स्रोत किसान भाईयों के मन में भी कभी-कभी इस कार्य के विषय में भ्रान्त धारणाएं हो जाती रही हैं। जब मैं शब्द संग्रह के लिए उनके पास जाता तो टेक्सों से भयभीत कोई ग्रामीण भाई कहता। क्या अब हमारे औजारों आदि पर भी टेक्स लगाने की खातर ही तो ये लिस्टें नहीं बन रही हैं? कोई कहता' यदि हमारी खेती के औजार आदि के नाम भी लिखें जाने लगे तो वेड़ागर्क निश्चित है, कोई कहता हमारे साथ धोखा न करना और कोई बुजुर्ग मुझे ही अपनी निश्छल भावना से डराते हुए कहता—बस, और अधिक नाम न लिखो कहीं इससे पकड़े ही न जाओ।" इत्यादि। उनकी इस प्रकार की बातों एवं आशंकाओं से मुझे मन ही मन हंसी तो आती ही पर साथ ही उनके भोलेपन पर तरस भी आता! उनकी इस प्रकार की धारणाओं का निराकरण करने के लिए मुझे कई ढंग अपनाने पड़े। डा० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा अपने कृषिकोश की भूमिका में जनपदीय शब्दावली के संग्रह के विषय में बतलाई हुई विधियां भी अपना रहा हूं किसान भाईयों के

बीच घुल-मिल जाने का प्रयत्न भी करता हूं, कभी-कभी उनकी खुशामदें भी करता हूं। जहां तक कि जब उनके बीच जाता हूं तो अपनी भाषा और व्यवहार को भी उनके अनुकूल ढालते हुए अपना पहनावा भी सादा रखने का प्रयत्न करता हूं। यह एक वास्तविकता है कि शब्द-संग्रह का काम अति कठिन है। डा० विश्वनाथ प्रसाद इस विषय में अपने अनुभव बतलाते हुए लिखते हैं—"कोश-कार्य व्यावहारिक भाषा विज्ञान का एक जटिल विषय है, बहुत ही श्रमसाध्य, समय-साध्य और व्यय-साध्य है।....... यह कार्य कितना कठिन है, यह वे ही जान सकते हैं, जो इस दिशा में कुछ काम करके मुक्त भोगी बन चुके हैं। पहले तो उपयुक्त व्यक्ति बिरले मिलते हैं, जो प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर दे सकें। पेशे के काम-धाम में लगे हुए श्रमजीवी व्यक्ति की इतनी फुरसत भी कहां कि वह सब कुछ छोड़ कर घंटों बैठे, हमारे साथ प्रश्नोत्तर करता रहे।"

अपने शोध प्रबन्ध ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली की भूमिका में डा० हरिहर प्रसाद गुप्त इस विषय में अपना अनुभव इस प्रकार लिखते हैं—"ग्रामीण बोलियों एवं शब्द-समूहों का संग्रह जब तक ग्रामीण जनता में कोई घुल न जाए, नहीं कर सकता। ग्रामीण जनता की यह सम्पत्ति ऐसी नहीं है, जिसे आप पहुंचते ही प्राप्त कर सकें, वरन् इसके लिए उनका सत्संग अपेक्षित है। क्योंकि यह संभव नहीं है कि वे आप के पूछने पर किसी विषय पर अपना व्याख्यान दे सकें अथवा किसी विषय की आपको पूरी जानकारी करा सकें अथवा विषय से सम्बन्धित शब्द समूहों को वे आपको लिखा सकें वे तो प्रसंग छिड़ने पर ही अपना ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। यह भी स्वाभाविक नहीं है कि वे जितना जानते हैं वह सब आपको एक ही बार में बतला दें। आपको उनसे प्रश्न करके ही सारी बातें ज्ञात हो जाएँ, यह भी संभव नहीं है।"

डा० हरिहर प्रसाद गुप्त जी के समान मुझे भी कुछ-कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ। शब्द संग्रह के लिए एक ही व्यक्ति के पास भी कई बार जाना पड़ जाता है। क्योंकि एक ही समय में एक व्यक्ति को सभी विषयों के शब्द बतलाने कठिन हो जाते हैं! इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यवसायों एवं उद्योग-धन्धे वाले व्यक्तियों के पास उसी समय जाना लाभप्रद रहता है, जब वे उसी काम में लगे हों क्योंकि उस समय उनके चिन्तन और कार्य में

अपने व्यवसाय के प्रति पूर्ण जागरूकता होती है । प्राय: अपने परम्परागत व्यवसाय के साथ २ ये लोग खेती का काम भी करते हैं । इसलिए भी उनके अपने व्यवसाय-विशेष का काम करने पर जाना ही आवश्यक हैं ।

इस विषय में मेरा सबसे बड़ा एवं यदि यूं कहूं कि अद्भुत अनुभव यह है कि अपने अनुसन्धेय क्षेत्र एवं ग्रामीण बातावरण से दूर हो जाने पर कई बार स्वयं व्यवहृत कुछ शब्द भी स्मरण नहीं आते हैं । मैं जब अपने गांव में अपने ग्रामीण भाईयों से ठेठ ग्रामीण बोली में कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित अन्य व्यवसायों के विषयों में बातचीत करता हूं तो कई ऐसे शब्द स्वत: ही मुंह से निकल पड़ते हैं जिससे बड़ा विस्मय हो जाता है । ऐसी स्थिति में अपने पास कागज़-कलम न होने पर इन शब्दों को मन ही मन रट सा लेता हूं, और फिर घर आकर लिख लेता हूं ।

कोश-रचना शास्त्र के विशेज्ञों एवं मेरे व्यक्तिगत अनुभवों में से उपर्युक्त इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि सचमुच यह कार्य कितना जटिल एवं असम्य है । भाषा-विज्ञान के क्षेत्र के बड़ते हुए विस्तार से तो यह काम और भी जटिल होता जा रहा है । आधुनिक भाषा-शास्त्री कोश-रचना की व्यावहारिक भाषा शास्त्र का प्रमुख अंग मानते हुए इसका स्वरूप तदनुरूप ही देखना चाहते हैं । डा० उदय नारायण तिवारी अपनी पुस्तक 'भाषा-शास्त्र की रूप रेखा' में इस विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं :—
कोश रचना भी भाषा शास्त्र का अंग है । इस शाखा के अन्तर्गत आजकल परम्परागत कोशों की तरह केवल शब्दों को ही नहीं पदग्रामों को भी सूची वद्ध किया जाता है । इसके अन्तर्गत किसी भाषा के वलाघात एवं सुरलहर के ढांचे का भी अध्ययन करना चाहिए चाहे वह अर्थ तत्व के साथ अथवा उसके प्रतिवन्धित अर्थ रहित" ।

पिछले वर्ष मैंने डा० वासुदेव शरण अग्रवाल जी को भी इस विषय में एक पत्र लिख कर उनसे अपने परामर्श एवं सुझाव भेजने की प्रार्थना की थी, किन्तु उनकी ओर से कोई भी उत्तर न आने से कुछ निराशा हुई ! हो सकता है उन्हें मेरा पत्र न मिला हो, यह सोच कर इस वर्ष मैंने उन्हें फिर एक पत्र लिखा तो उन्होंने अपनी जिस साधत्तामय सहृदयता, एक साहित्याकार की निश्छलता एवं ममत्व की भावना से उत्तर दिया उससे मेरे मानस-पटल पर एक विशेष प्रकार का प्रेरक प्रभाव पड़ा । उससे मुझे एक निश्चित मार्ग मिला, मानसिक बोध और बौद्धिक [illegible] प्राप्त हुई ! उनके

पत्र की कुछ महत्वपूर्ण पंक्तियों की यहां उद्धत किए विना मैं इस लेख को अधूरा समझता हूं। वे लिखते हैं :—उस प्रदेश में पर्वत, घाटी, नदी, नालों; के जीवन से सम्बन्धित अनेक पारिभाषिक शब्दों का संग्रह आपके निबन्ध में होना चाहिए। स्थानीय रहन-सहन और जीवन के शब्द भी उन्मुक्त भाव से आने चाहिए। मुझे आशा है कि आपका निबन्ध मूल्यवान् कृति होगी। मैं आपकी सफलता के लिए अपनी शुभकामनाऐं भेजता हूं पुनश्च ......मुझे आपसे भौतिक सामग्री की आशा हैं। डोगरी की मूल्यवान थाती में वैदिक शब्द भी मिलने चाहिए विशेष मरुद्‌वृधा नदी की लम्बी घाटी के लोगों की बोली में।"

कितनी मूल्यवान् एवं प्रेरणा दायक पंक्तिया हैं ये। हिन्दी तथा विश्व की अन्य मुख्य भाषाओं के कोशों के सम्पादन के इतिहास से यह बात स्पष्ट है कि कोश-रचना कार्य कें लिए पर्याप्त समय, साधन एवं व्यय की आवश्यकता होती है। अंग्रेज़ी की वैब्स्टर न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी का प्रथम संस्करण प्रकाशित होने में १०२ वर्षों का लम्बा समय लगा था। इस कार्य क आरम्भ १८०७ ई० में नोआ वैब्स्टर ने किया था। २१ वर्षो के कठिन परिश्रम के बाद इन्होने श्री जानसन द्वारा सम्पादित कोश से १२००० शब्द और बढ़ा कर १८२८ ई० में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित किया था। इसके बाद समय समय पर इसके परिवर्धित संस्करण भी निकलते रहे। १८५७ ई० में फिलॉलोजीकल सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन ने आक्सफोर्ड डिक्शनरी के सम्पादन का कार्य भार सम्भाला जो १९३३ ई० में पूरे ७६ वर्षों के बाद सम्पन्न हो सका। इस लम्बी अवधि में क्रमशः पहले और दूसरे सम्पादक की मृत्यु हो गई। फिर तीसरे के साथ चौथे सम्पादक ने मिल कर इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। इसके बाद इस कार्य का उत्तरदायित्व चार सम्पादकों ने भी कई सह सम्पादकों, १०० संग्रह कर्ताओं की सहायता से सम्भाला। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ी साहित्य के ८०० योग्य और देश प्रेमी पाठकों ने भी अपनी निःशुल्क सेवाएं अर्पित कीं। पाठकों का काम था अंग्रेज़ी साहित्य के विभिन्न अंगों का अध्ययन करते करते प्राप्त होने वाले नये नये मुहावरां एवं लोकोक्तिओं की सूचियां बना कर भेजना। यह सब कुछ होने पर भी उक्त कोश का परिवर्द्धित संस्करण प्रकाशित होने में ... वर्षों से भी अधिक समय लग गया तभी

जाकर अंग्रेज़ी भाषा का इतना प्रमाणिक कोश तैयार हो सका।

यहां भारत में काशीनागरी प्राचारिणी सभा ने भी १९१० ई० में 'हिन्दी शब्द सागर' के सम्पादन का आरम्भ किया जो १९२९ में पूरा हुआ था। उधर पूना में १९४८ ई० मे पचास सुयोग्य कार्यकर्ता एक प्रामाणिक 'संस्कृत-शब्द-कोश' के कार्य में जुटे हुए हैं। लगभग एक लाख रुपया भी प्रति वर्ष खर्च किया जा रहा है, किन्तु अभी तक इस कोश का एक भी खण्ड प्रकाशित नहीं हो सका है। अतः स्पष्ट है कि कोश-रचना-कार्य कितना दुःसाध्य है।

ऊपर जिन कोशों की रचना और सम्पादन के विषय में चर्चा की गई है, उनका आधार तो लिखित एवं बहुत अंशों में उपलब्ध सामग्री एवं शब्दावली के साथ-साथ पर्याप्त साधन भी थे, फिर रचना-परिपाटी सर्वथा पुरानी और घिसी-पिटी थी। इस पद्धति के अनुसार सम्पादक मण्डल एक स्थान पर बैठ कर अंग्रेज़ी, हिन्दी भाषाओं के कोशों और लिखित साहित्य के आधार पर शब्दों की तालिकाएं तैयार करके और उनका अनुवाद करके उनमें थोड़ा सा परिवर्तन करके अपने कार्य की इतिश्री समझ लेता है, परन्तु कृषि एवं ग्रामोद्योग सम्बन्धी कोशों का निर्माण करने के लिए इस विधि से सर्वथा काम नहीं चलेगा। उसके लिए तो झोली लेकर घर-घर ही नहीं जन-जन के पास जाना पड़ेगा। अन्यथा अपने देश की उस अमूल्य धरोहर के प्रति भारी अन्याय होगा, जिस में असंख्य ऐसे मौलिक एवं जीवन्त पारिभाषिक शब्द सुरक्षित हैं जिनका अपने देश, काल, परिस्थितियों एवं परिवेश के अनुसार अपना इतिहास होता है। ऐसे शब्दों के विषय में 'ल' इंदो एरियां (अर्थात् भारतीय आर्य भाषा) नामक पुस्तक में प्रसिद्ध भारतीय भाषा विद ज्यूल ब्लॉख ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है :—प्रत्येक शब्द का अपना इतिहास है; इतिहास जिस पर प्रकाश नहीं।"

अतः ऐसे मौलिक शब्दों का जब तक विस्तृत सर्वेक्षण, संग्रह एवं अध्ययन सर्वथा वैज्ञानिक ढंग से न किया जाए तब तक हम न ही अपने उद्देश्य में वास्तविक रूप मे सफल हो सकते हैं और न ही अपनी भाषा के प्रति न्याय ही कर सकते हैं। और फिर ऐसी स्थिति में 'चोंगा, [illegible]' जैसे [illegible] जो किसानों के घरों में दैनिक व्यवहार

में प्रयुक्त होते हैं—कोश में स्थान पाने से वञ्चित रह जाएँगे क्योंकि इस प्रकार के मौलिक पारिभाषिक शब्दों की प्रत्येक भाषा में अपनी निजी परम्परा होती हैं।

यह एक विचित्र बात है कि हमारे देश में जनपदीय शब्दावली के संग्रह के काम का आरम्भ सर्व प्रथम योरोपीय विद्वानों ने ही किया, यद्यपि प्रारम्भ में उनका उद्देश्य ग्रामीण शब्दावली का शास्त्रीय अनुशीलन नहीं वरन् मात्र मुकदमें एवं कचहरी के कामों में सुगमता लाने के लिए शब्दावली का संग्रह करना था।

१८७० से ७५ ई० तक पैट्रिक कार्नेगी ने कचहरी टेकिनकैलिटिज नाम से शब्द संग्रह प्रकाशित किया। इस विषय में उनका कार्य बड़ा आदर्श एवं प्रामाणिक माना जाता है। इसका द्वितीय संस्करण १८७७ ई० इलाहाबाद मिशन प्रेस से प्रकाशित हुआ था। १८७८ ई० में विलियम कुक द्वारा सम्पादित 'मैटिरियलस फॉर ए रूरल एण्ड एग्रिकलचरल ग्लासरी आफ दी नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवध' (Materials for a rural and Agricultural glossary of the North Western Provinces and Avadh) शीर्षक से एक शब्द संग्रह का प्रकाशन हुआ। यह शब्दावली इन्होंने प्रो० एच० एच० विल्सन, श्री एच० एम० इलियट और श्री जे० आर० रीड द्वारा संग्रहीत शब्दावलियों को आधार मान कर तैयार की थी। उन्होंने इसमें बन्दोबस्त के अधिकारियों द्वारा अपनी रिपोर्टों में प्रयुक्त शब्दों को भी सम्मिलित कर लिया था।

जार्ज ग्रियसर्न ने अपनी पुस्तक 'बिहार पेज़ेंट लाईफ, का आधार कुक महोदय की उपयुक्त शब्दावली को ही बनाया था। बिहार पेज़ेंट लाईफ के प्रथम संस्करण का प्रकाशन १८८५ ई० में हुआ था। अपनी पुस्तक की भूमिका में ग्रियर्सन महोदय लिखते हैं कि यदि उन्हें कुक महोदय की यह पुस्तक न मिलती तो बिहार पेज़ेंट लाईफ का लिखना असम्भव था। बस इसी से कुक महोदय के काम की प्रामाणिकता का अनुमान किया जा सकता है। ग्रियर्सन का यह ग्रन्थ पहली दोनों पुस्तकों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी समझा जाता है। इसका कारण यह है कि सम्पादक ने शब्दावली तैयार करने के लिए लिखित सामग्री का सहारा लेकर विभिन्न उद्योग, धन्धों में लगे हुए ग्रामीण लोगों से प्राप्त

किया है। उनका यह कार्य मनों परवर्ती कृषि कोश के सम्पादको केलिए एक सही पथ निर्देशक बन गया।

क्रुक ने अपनी शब्दावली का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण निकालने से पहले इसकी सूचियां तत्कालीन माल एवं शिक्षा अधिकारियों के पास भेजीं। उनसे जो सुझाव एवं अतिरिक्त, सामग्री प्राप्त हुई उसी के आधार पर उन्होंने अपना दूसरा संस्करण निकाला। इसका प्रकाशन १८८८ ई० में हुआ। उनका यह संस्करण एक स्तुत्य प्रयास माना जाता है। इस ग्रन्थ को देख कर इनके परिश्रम औंर मौलिक सूझ-बूझ का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। जार्ज ग्रियर्सन के उत्तम ग्रन्थ का दूसरा संशोधित संस्करण १९२६ ई० में विहार और उड़ीसा में प्रकाशित हुआ। इन्होंने अपना अनुसन्धेय क्षेत्र विहार, भोजपुर, मैथिली ओर मगही बोलियों तक सीमित रख कर शब्दावलियों के तुलनात्मक अध्ययन का एक आदंश प्रस्तत किया। खेद है कि अब उनके ग्रन्थ के प्रथम संस्करण का प्रात ता दूर दूसर को भी मिलना असम्भव हो गई है। आज उनके कार्य को आदर्श मान कर विहार राट्र भाषा परिषद पटना जैसी संस्थाएं सामूहिक रूप से और कुछ अनुसंधित्सु व्यक्तिगत रूप से कार्य कर रहे हैं। विहारराष्ट्र भाषा परिषद ने डा० विश्वनाथ प्रसाद के सम्पादन में जिस कृषिकोश के कुछ भाग प्रकाशित किए हैं बस अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयास है। क्रुक कार्नेगी और ग्रियर्सन के समकालीन दो विद्वानों फैलन औंर प्लाट ने भी अपने-अपने विशाल कोशों की रचना की थी। इनमें हिन्दी की बोलियों और गावों की शब्दावली का अतिसमृद्ध रूप मिलता है। श्री आर० एल० टर्नर की नैपाली डिक्शनरी भी इस विषय में एक महत्वपूर्ण कांम है। इनके कोश में ४५० भारतीय आर्य भाषाओं के पुनर्गठित शब्द हैं।

ग्रियर्सन के बाद कई वर्ष इस ओर किसी विद्वान का ध्यान नही गया। १९३१ और १९४४ ई० के मध्य डा० मौलाना अब्दुल हक की प्रेरणा से अंजुमने तरक्किए उर्दू, दिल्ली ने मौलबी जाकर उर-रहमान साहब देहलवी के सम्पादन में 'इस्तलाहाते पेशावरॉं' नामक कोश आठ छोटे-छोटे भागों में प्रकाशित किया! इसमें

लगभग दो सौ पेशों के २००० के लगभग शब्द संगृहीत हैं, किन्तु इसमें शब्द

केवल चुने हुए शहरों जैसे दिल्ली आगरा और जयपुर आदि में रहने वाले पेशेवरों और कुछ नवीन और पुरानी पुस्तकें जैसे गुलजारे काश्मीर आईने अकबरी आदि से संगृहीत किए गए थे। गांवों के पेशेवरों में व्यवहृत शब्दों को इसमें स्थान नहीं मिला है ! इसके अतिरिक्त कोश में उल्लिखित शब्दों के प्राप्ति स्थान और क्षेत्र का भी निर्देश नहीं है । कोश में कुछ मूल्यवान् सामग्री है, तो वह है बादशाही जमाने के पुराने खानदानों से सम्बन्धित शब्दावली ! इसी प्रकार श्री प्यारे लाल ने भी 'कृषि शब्दावली' नामक एक छोटे से कोश का सम्पादन किया था, जिस का प्रकाशन सं० २००० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने किया था ! इस कोश में केवल अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय मात्र होने से कार्य इतना उपयोगी नहीं माना जाता है।

पिछले दो दशकों से भारतीय बोलियों की कृषि-शब्दावली के संग्रह का काम बडी तीव्रगति से होने लगा है ! सर्व प्रथम डा० हरिहर प्रसाद गुप्त ने उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील के परगना आदि बोली के आधार पर ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली नामक कोश का सम्पादन किया है। इसमें २५०० शब्द संगृहीत हैं । यह उनका पी० एच० डी० के लिए शोध प्रबन्ध था जिसे प्रयाग विश्व विद्यालय ने १९५१ में स्वीकृत किया था ! इसी प्रकार डा० अम्बाप्रसाद सुमन ने अलीगढ़ क्षेत्र की शब्दावली पर काम करके कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रज भाषा शब्दावली" शीर्षक शोधप्रबन्ध लिखा जिस पर उन्हें १९५६ ई० में आगरा विश्व-विद्यालय ने डाक्ट्रेट की उपाधि प्रदान की ! डा० सुमन की शब्दावली में १३१५८ शब्दों का संकलन है। उनका यह काम कई दृष्टियों से बड़ा प्रशंसनीय हैं। डा० विश्वनाथ प्रसाद के सम्पादन में बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् जिस कृषि कोश का प्रकाशन विभिन्न खण्डों में कर रही है उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका हैं। इसी प्रकार दक्षिण भारत में भी आंध्र-विश्व-विद्यालय के डा० भ० कृष्ण मूर्ति ने तेलगु क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली का संग्रह करके 'वृत्तिपद कोष' नाम से एक कोश के सम्पादन का कार्य-क्रम बनाया है !

जनपदीय शब्दावलियों पर अब विदेशों में भी तीव्रगति से काम हो रहा है। स्काटलैंड में इस क्षेत्र में प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय कार्य हो रहा

है। १९२६ में वहां एक 'स्काटिश नेशनल डिक्शनरी सोसाइटी' नामक संस्था की स्थापना हुई थी, जिसने ग्राक्सफोर्ड इंग्लिश लोक भाषा कोश के आधार पर ही कार्य करना आरम्भ किया है। इस कोश की ३ स्तम्भों, २० खण्डों और ३२०० पृष्ठों में प्रकाशन करने की योजना है। १९५६ ई० तक २८ वर्षों की लम्बी अवधि के बाद उक्त सोसाइटी इस कोश के केवल ३ खण्डों का ही प्रकाशन कर सकी है। इस अवधि में इसके प्रथम सम्पादक की मृत्यु हो चुकी है। अब इसका दायित्व दूसरे सम्पादक पर है। इसमें स्काटलैंड की जनपदीय शब्दावलियों का संग्रह करके उनका तुलनात्मक अध्ययन, विभिन्न स्थानों, क्षेत्रों के संकेत शब्दावलियों के पर्याप्त उच्चारण और प्रयोगों के साथ यथा स्थान निर्दिष्ट किया गया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके सम्पूर्ण होने पर लोकभाषा सम्बन्धी कोशों में इसका कितना उत्कृष्ट स्थान हो सकता है। इसके सम्पादन कार्य में कई सुयोग्य सम्पादक और संग्रह-कर्ता काम कर रहे हैं! इस सोसाइटी के पास कोश-रचना विज्ञान के सभी आवश्यक एवं आधुनिक साधन विद्यमान हैं। इसकी सहायता से शब्दों के संग्रह उनके शुद्ध उच्चारण आदि का अध्ययन करके उनका प्रामाणिक स्तर निश्चित किया जाता है। कोश-रचना कार्य इतनी जटिल एवं कठिनता की साधना करने के लिए उपर्युक्त विभिन्न संस्थाओं द्वारा बनाई हुई इतनी विशाल योजनाओं के उदाहरणों से मेरे धैर्य एवं उत्साह के सवल मुख्यत: डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' और डा० हरिहर प्रसाद गुप्त के कार्य ही रह जाते हैं, यद्यपि डा० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित कृषिकोश से भी मुझे प्रेरणा प्राप्त हुई है। जब तक ये कृषिकोष मेरे सामने आदर्श के रूप में नहीं थे तब तक मेरी स्थिति मार्ग से भटके हुए पथिक के समान थी! इसीलिए कभी-कभी थोड़ी घबराहट सी भी हो जाती रही है। अब एक ओर से कोश और दूसरी ओर आदरणीय पथ प्रदर्शकों एवं सहयोगियों की शुभकामनाएं मुझे अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ाती चली जा रही हैं। अब मैं अनुभव कर रहा हूं कि मेरे मानसिक और बौद्धिक स्तर में इतना मोड़ आ चुका है कि अब यह कार्य मेरे लिए मात्र बोझ न रह कर मेरी अभिरुचि (hobby) बन चुका है! अब मुझे ज्यों-ज्यों नये शब्द मिलते जाते हैं त्यों-त्यों ऐसा आनन्द एवं हार्दिक उल्लास होता है जैसा कि एक वैज्ञानिक को अपनी नयी-नयी खोज पर!

यह बात भी स्पष्ट है कि मुझको उपर्युक्त तीनों कोशों को आदर्श

मानकर भी किसी की भी प्रतिलिपि नहीं कर रहा हूं ! मेरे कार्य की अपनी मौलिक विशेषताएं होंगी । यह बातें निश्चित है ।

डुग्गर की जनपदीय कृषि सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली में उन सम्पूर्ण शब्दों का संकलन किया जा रहा है, जिनकी किसी भी रूप (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष) में कृषि के साथ सम्बन्ध है । साथ ही तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से यथावश्यक अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द भी संगृहीत किए जा रहे हैं ।

यह एक मानी हुई बात है कि भारत की कृषि सम्बन्धी शब्दावली अपने देश की सभी बोलियों में अति समृद्ध रूप में मिलती है । इससे भारत में परम्परा से कृषि कार्य के व्यापक प्रसार का अनुमान लगाया जा सकता है। भाषाई विविधता के होने पर भी द्राविड़ संस्कृति को छोड़ कर उसका सांस्कृतिक स्रोत भी एक ही हैं ।

वैदिक साहित्य में कृषि शब्द के व्यापक अर्थ में हल जोतने के अतिरिक्त खेती करने वाला किसान खेती में सम्बन्धित पशु औजार कृषि करने की विभिन्न प्रणालियों एवं विविध क्रियाकलाप आदि सब का बोध रखता है । अष्टाध्यायी में पाणिनि द्वारा कृषि के स्थान पर प्रयुक्त "कृषिबल" शब्द भी इसके इसी व्यापक अर्थ की ओर संकेत करता है । इसके साथ-साथ कृषि से सम्बन्ध रखने वाले व्यवसायों जैसे—लुहार तरखान, कुम्हार आदि के शब्दों का भी शब्दावली में संकलन किया जा रहा है ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के कृषि कोशों की कड़ी में यह चौथा प्रयास है । मेरा विचार है कि डोगरी कृषि कोश शिल्प में चौथा जबकि शैली की दृष्टि के प्रथम होगा । डा० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित "कृषि-कोश" में शब्द-योजना अकारादि, क्रम से दी गई है । यद्यपि शब्दावली का वर्गों या प्रकरणों आदि के क्रम से विभाजन नही किया हुआ है । किन्तु विविध शब्दावलियों का भाषाशास्त्रीय आधार पर अध्ययन बड़ा वैज्ञानिक है डा० हरिहर प्रसाद गुप्त ने अपने कोश में शब्दावली का विभाजन दो खण्डों और ६ वर्गों में किया हुआ है । प्रथम खण्ड में ६ वर्ग हैं । शब्दविन्यास अकारादि क्रम से नहीं है, पर कोश के द्वितीय खण्ड के अन्त में सम्पूर्ण शब्दावली की सूची अकारादि क्रम से दे दी

हुई है । साथ-साथ अनुच्छेद नं० भी दिया हुआ हैं । पृष्ठ नं० नहीं दिया हुआ है । डा० सुमन ने अपने कोश के दो भागों १५ प्रकरणों, १० विभागों और १२० अध्यायों में विभक्त किया हुआ है । शब्द-योजना इनकी भी अकारादि क्रम से नहीं है । कहीं-कहीं एक पारिभाषिक शब्द की व्याख्या करते करते सम्पादक ने किसी असम्बद्ध शब्द को लाकर रख दिया हुआ है, जिससे कोश का सौन्दर्य कुछ फीका जान पड़ता है । इन्होंने भी कोश दोनों खण्डों के अन्त में शब्दावली अकारादि क्रम से देकर साथ-साथ अनुच्छेद और पृ० नं० भी दे दिए हुए हैं इनके कार्य की सब से बड़ी बिशेषता यह है कि इन्होंने अपने अनुसन्धेय क्षेत्र का मानचित्र, ८४६ रेखा चित्र और ३८ चित्र (फोटो ग्राफ) भी दिए हुए हैं । डा० हरिहर प्रसाद गुप्त और डा० अम्बा प्रसाद सुमन दोनों ने मुख्यतया अपने अपने अनुसन्धेय क्षेत्रों की शब्दावलियों की ही व्याख्या दी हुई है । कहीं-कहीं अन्य भषाओं का शब्द भी दे दिया हुआ है । व्युत्पत्ति किए हुए शब्दों की संख्या बहुत कम है । मैं चाहता हूं कि डोगरी कृषि-कोश अ ाना अलग-थलग एवं नया रास्ता अपनाए । वह इन सब की विशेषताएं लेकर भी सर्वथा मौलिक हो । इसमें शब्दावली का विभाजन तो डा० हरिहर प्रसाद गुप्त और डा० अम्बा प्रसाद सुमन द्वारा सम्पादित कृषि कोशों के समान ही हो परं शब्दों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए डा० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित कृषि-काश को ही आदर्श माना जाए । साथ ही खण्डों, वर्गों और अध्यायों आदि में मी शब्द याजना अकारादि क्रम से ही आनी चाहिए । इसके अदिरिक्त यथावश्यक एवं यथा संभव रेखा-चित्र एवं चित्र (फोटो ग्राफ) भी दिऐ जाएं । शब्दावली में शब्दों के संग्रह के साथ-साथ ऐसी लोकोक्तिओं और मुहावरों का संकलन भी किया जा रहा है जिनका सम्बन्ध किसी भी रूप से कृषि जीवन के साथ है । इसके अतिरिक्त कृषि जीवन से सम्बन्धित पहेंलियों का भी संग्रह किया जा रहा है । वास्तव में जनपदीय बोलियों में लोकोक्तियों का वही स्थान है जो साहित्य में रसों और अलंकारों आदि का है । लोकोक्ति के एक छोटे से वाक्य के पीछे परम्परागत सामाजिक जीवन का कितना तथ्यपूर्ण अनुभव छिपा रहता है इस बात का प्रमाण किसी भी लोकोक्ति को समझने से स्वयं मिल सकता है । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के लोकोक्तियों के विषय में ये विचार कितने तथ्य पूर्ण हैं :— लोकोक्तियों

मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक धातुओं को तपा कर सूर्य-रश्मियां नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती हैं जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियां मानवी ज्ञान के घनी-भूत रत्न हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक लेख में जनपदीय बोलियों में लोकोक्तियों के अध्यायन की उपयोगिता इस प्रकार सिद्ध की है :—"हजारों मील के विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन तो दूर की बात है, उनके मुहावरों, गीतों शब्द भण्डारों और लोक-कथानकों का वैज्ञानिक अध्ययन भी पड़ा हुआ है।"

अतः लोकोक्तियों और मुहावरों की अनिवार्यता को समझते हुए ही डोगरी-कृषि-शब्दावली में इनका भी संकलन किया जा रहा है। मैंने शब्द संग्रह के लिए मुख्य केन्द्र अपने प्रदेश उज्जघाटी को ही बनाया है। जिसका क्षेत्र प्रधानतया बिलावर के पास बहने वाली भीनी नदी से लेकर रामकोट से लगभग एक मील पश्चिम में वहने वाली वसन्तर नदी तक माना गया है। उज्ज नदी भीनी नदी से साढ़े आठ मील पश्चिम और बसन्तर नदी से १३।। मील पूर्व की ओर है। शब्दों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए मैं जम्मू प्रान्त के विभिन्न स्थानों के शब्दों का भी संग्रह कर रहा हूं। अब तक कुछ शब्दावलियां सुराजी, भद्रवाही, पुन्छी की संगृहीत की गई हैं। जम्मू तहसील और ऊधमपुर की भी संगृहीत कर ली गई हैं। साथ-साथ संगृहीत शब्दावली के कुछ शब्दों की यथा संभव व्युतपत्ति करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है, यद्यपि हस विषय में सुयोग्य विद्वानों से पथ निर्देश प्राप्त करने की नितान्त आवश्यकता है।

वर्तमान युग में कोश-रचना में शब्दों की व्युत्पत्ति का प्रमुख स्थान माना जाता है। शब्दों की व्युत्पत्ति से ही हमें उनके इतिहास क्रमिक विकास अर्थ और रूप परिवर्तन एवं वंश परम्परा आदि के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकती है। प्रो० आर० एल० टर्नर का नेपाली शब्द कोश, श्री के० पी० कुलकर्णी का 'मराठी व्युत्पत्ति कोश' और डा० विश्वनाथ प्रसाद का 'कृषि कोश' व्युत्पत्ति शास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से प्रशंसनीय कृतियां हैं। कृषक शब्दावली की व्युत्पत्ति की अनिवार्यता

सिद्ध करते हुए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल इस प्रकार कहते हैं : —"शब्द व्युत्पत्ति का कार्य अभी अपनी आरम्भिक अवस्था में है। उसके लिए अत्यधिक गम्भीर प्रयत्न अपेक्षित है। विशेशत: कृषक शब्द इतने घिसे-पिटे हो गए हैं कि उनके मूल संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश रूपों तक पहुंचने के लिए कितने ही क्षेत्रों से संगृहीत शब्दावलियां सामने आनी चाहिएं।

वस्तुत: शब्दों की व्युत्पत्ति के द्वारा ही हमारे सामने विचित्र परिणामों के साथ-साथ शब्दों का अद्भुत रूप भी सामने आता है। उदाहरण के लिए डोगरी का 'मौङ्ण' शब्द लीजिए जो व्युत्पत्ति के द्वारा अपने मूल संस्कृत रूप के पास इस प्रकार पहुंचता है :— मौङ्ण—मांगनू—मकूण—मत्कुण। इसी प्रकार 'छेद' का वाचक 'छिंडा' शब्द इस प्रकार विकसित हुआ है :— छिद, (संस्कृत)— छेड्ड— छेड — छिंडा। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत से नहीं की जा सकती। ऐसे शब्दों को डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने देशज शब्द कहा है। उनका कथन है—"नव्य-भारतीय आर्य भाषाओं तथा बोलिओं में ऐसे कई सौ शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति भारतीय आर्य भाषा उद्गमों से नहीं मिलती हो उनके प्राकृत पूर्व रूपों का अवश्य सरलता या पुनर्निर्माण किया जा सकता है। उनका बाहरी रूप साधारण तथा युग्म व्यञ्जनों तथा नासिक्यों एवं तत्सम्बन्धित स्पर्शों एवं महाप्राणों से बना बिल्कुल प्राकृत सा रहता है, तथा उनसे व्यक्त भाव भी न्यूनाधिक अशों में मूलगत या प्राथमिक रहते हैं। ये शब्द बड़े धोखे में डाल देने वाले हैं। जैसे :—अनाड़ी=मूर्ख, अण्णाड़ी (हिन्दी)। कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनका उद्गम अपने क्षेत्रीय वातावरण एवं विशेषताओं से ही हुआ है। भर्तृहरि ने 'वाक्य पदीय' में एसे शब्दों को लौकिक शब्द कहा है—"यस्तु लौकिक: शब्दोऽसावेवाश्रीयते" अर्थात् लौकिक शब्द भी भाषा का ही अंग हैं। उनके अनुसार ऐसे शब्दों को व्युत्पत्ति की युक्तिओं और तर्कों के अनुसार तोड़ने-मरोढ़ने का यत्न कभी नहीं करना चाहिए :—

"नानर्थिकामिमां कश्चिद् व्यवस्थां कर्त्तुमर्हति।
तस्मिन्निबध्यते शिष्टै: साधुत्व विषया स्मृति: ।।

लोक प्रसिद्धि के आधार पर चली आ रही या बनी हुई शब्द-परम्परा जब स्थिर हो जाती है तो उसे न तर्क एवं युक्तिओं से सिद्ध किया जा सकता है और न ही बाधित ही। इस लोकगत रुढ़ि का उल्लंघन

शिष्ट पुरुषों द्वारा भी नहीं किया जा सकता है। शब्द और अर्थ का निर्णय लोक भावना और लोक प्रयोग पर निर्भर करता हैं, और उसका सम्बन्ध संकेतित वस्तु बाह्याकारों या बाह्यवस्तु से होता है।

डोगरी में व्यवहृत मात्राएं :—

(अ) इस मात्रा का प्रयोग सामान्यतया हिन्दी और इसकी सभी भाषाओं में समान रूप से होता है। जैसे—अब्बल, अप्फल आदि।

(अ) का दूसरा रूप वह है जो अतिहृस्व या अर्धहृस्व है और जो शब्दों के मध्य में आता है या अर्धश्रुत जैसा सुनाई पड़ता है। ऐसा शब्दों की रागात्मक प्रवृत्ति के कारण होता है। ग्रियर्सन ने इसे 'अश्रुत' स्वर कहा है। जैसे —'खेतर, पाल, कुरङाह्ल' इत्यादि। कई शब्दों के अन्त में इस "अ" का उचारण हलन्तवत् होता है। जैसे—भैण्, खल, गल—गल्, पल—पल्। लिखने में इसे अजन्त ही लिखा जाता है।

(ए) की मात्रा का एक रूप है जिसका उच्चारण हिन्दी तथा हिन्दी की उपभाषाओं के समान ही होता है। लेत्तर, केरणा। दूसरा वह रूप है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि लेखन पद्धति के अनुसार अर्धसंवृत, हृस्व माना जाता है। जैसे—केट्ट, भेत्त इत्यादि। इसी प्रकार 'ओ' के भी दो रूप हैं। क्रमशः दो-दो उदाहरण इस प्रकार हैं— डोगरा, वोत्ता इत्यादि। कोण, खोण इत्यादि।

हिन्दी की नवीन ध्वनियों के समान डोगरी में भी कुछ ध्वनियां हैं, जिनका उदाहरण इस प्रकार है :—क्हण्ण, ज्हार, न्हार, म्हेरी, ल्हाड़, स्हार इत्यादि। ये क्रमशः क्, ज्, न्, म्, ल्, स् की महाप्राण ध्वनियां हैं।

शब्दावली में रखे गए क्रम :—

१. सर्वप्रथम अकारादि क्रम से मूल पारिभाषिक शब्द। उनके बाद निर्देश चिह्न "—" देकर गोल गोष्ठ में व्याकरण संकेत (सं० वि० क्रि० पुं० सभी) आदि दिए जाते हैं।

२. इसके बाद मूल परिभाषिक शब्द की व्याख्या की जाती है। यदि किसी शब्द के कई पारिभाषिक अर्थ हो तो संख्या क्रम देकर व्याख्या की जाती है।

३. इसके बाद जिस प्रदेश में वह अर्थ प्रचलित है उस प्रदेश का संक्षिप्त नाम कोष्ठ में दे दिया जाता है। यदि वह अर्थ एक ही रूप में अनेक स्थानों में प्रचलित हो तो उन सभी का संक्षिप्त रूप दे दिया जाता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उक्त शब्द उसी क्षेत्र में ही प्रचलित है, अपितु यह कि उस प्रदेश से वह संगृहीत किया गया है। जैसे—उधुमपुर, जम्मू तहसील, उज्ज घाटी, पुन्छ से संगृहीत शब्दों के लिए क्रमशः उदु०, ज० त०, उ० घा०, और पु० आदि।

४- क्षेत्र निर्देश करने के बाद यदि मूल शब्द का कोई पर्याय-वाचक शब्द बतलाना अभीष्ट हो तो पर्याय का संक्षिप्त रूप पर्या० लिख कर जितने भी पर्याय हों क्रमशः दे दिए जाते हैं। उनके आगे कोष्ठ में तत्स-सम्बन्धी क्षेत्र का नाम भी दे दिया जाता है। जैसे—फ्रेड़—(स० सभी) वह जमीन जहां मक्की बोई जाती है। फ्री० कुकड़ैली, इत्यादि।

५. इसके बाद व्युत्पत्ति योग्य शब्द को बड़े कोष्ठकों में रख कर उसका ऐतिहासिक विकास दिखाते हुए उसके पुनर्निर्मित समरूप दिखाए जाते हैं। यथावश्यक संस्कृत के मूलधातु देकर उनके साथ निर्धारित संकेत चिह्न भी लगाया जाता है और धातुओं का अर्थ कोष्ठ में दिया जाता है।

६. व्याख्या के बाद मूल शब्द के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोकोक्ति, मुहावरे आदि भी दे दिए जाते हैं। साथ ही जिस शब्द के संस्कृत या हिन्दी रूप का प्रयोग जिस पुस्तक में हुआ हो, अंक देकर नीचे फुट नोट में उस ग्रन्थ का नाम निर्देश करने का भी यथा सम्भव प्रयत्न किया जाता है। जैसे 'फाल्गुण झुल्लै, म्हेरु टुल्लै।' और जैसे – ग्होड़—(सं० पु०) पशुओं को बांधने योग्य घर। इस शब्द का मूल रूप अथर्व वेद १ और अष्टाध्यायी २ में भी मिलता है। फुटनोट में इनके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं १. "इमं गोष्ठमिद सदो घृतेनास्मान् त्समुक्षत।" अथर्व ६/६५/२ (२) "गोष्ठात् खञ्भूत पूर्वे" अष्टा ५, २/१८ वर्षा के पानी के निकास के लिए घर के छत पर लगे हुए प्रनाले—जिसे डोगरी में नाड़ा कहते हैं—के विषय में फुटनोट में सूर सागर से इस प्रकार उदाहरण दिया गया

हैं :—"कंचुकी-पट सूखत नहिं कबहूं, उर विच वहत पनारे।" सू० सा० २०/३२ ३६।

८. यथा सम्भव कई वस्तुओं के रेखा-चित्र भी बना कर देने का प्रयत्न किया जा रहा है, क्योंकि इनके बिना व्याख्येय वस्तु के विभिन्न अंगों की व्याख्या नहीं की जा सकती है। जैसे—बैल हल आदि शब्द।

९. नये पारिभाषिक शब्द की व्याख्या करते समय यदि एक बार अन्यत्र प्रयुक्त शब्द की पुनरावृत्ति करनी अभीष्ट हो तो उनके आगे प्रकोष्ठ में देखिए शब्द का संक्षिप्त रूप निर्देश चिह्न के साथ दे दिया जाता है। जैसे—जोट्ट—(स० पुं०) उच्छण्ड पशु के खुर (दे०—) में बांधा जाने वाला विशेष विधि से बना रस्सा।

क्रिया का मूल रूप :—

१. डोगरी में क्रिया का मूल रूप "ना" है जिसके स्थान पर "णा" भी प्रयुक्त होता है। जैसे—जैसे जुगड़ना, मुञ्जणा इत्यादि।

२. प्रेरणार्थक क्रिया के रूप बनाने के लिए सामान्यतया 'ना' प्रत्यय लगता है जिसका स्थानापन्न 'णा' भी आता है। जैसे—जुगड़ना = जुगड़ाणा, मुञ्जणा = मुञाणा, पुट्टना = पुटाणा, परन्तु नौह्णा = नुआह्लना, सौणा = सुआलना आदि रूप इसके अपवाद भी हैं।

दोनों क्रियाओं के उपर्युक्त रूपों जैसे रूप ही इस कोश में व्यवहृत किये जा रहे हैं। काल, वचन आदि के अनुसारी रूपों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है।

कोश में प्रयुक्त भाषा विषयक संक्षिप्त रूप :-

हिं० = हिन्दी, वि० = विहारी, उ० = उर्दू, का० = काश्मीरी पं० = पञ्जाबी, फा० = फारसी, गु० = गुजराती, अस० = असमिया, ब्र० = ब्रज, संस्कृ० = संस्कृत इत्यादि।

अर्थ और व्याकरण के विषय में संक्षिप्त रूप :—

क्रि० = क्रिया, सं० = संज्ञा, वि० = विशेषण, पुं० = पुंलिङ्ग, उ० लि० = दोनों लिङ्ग, सम० = समस्त, उदा० = उदाहरण, दे० = देखिए, कहा० = कहावत, सभी = सभी लिङ्ग, प्रे० = प्रेरणार्थक इत्यादि।

अर्थ व्याकरण और व्युत्पत्ति के लिए संकेत चिह्न :—

१. (←) से व्युत्पन्न ! अन्य कोशों में यह '<' इस प्रकार का है। मैंने सुविधा की दृष्टि से इसके बीच सीधी लकीर खींच कर इसे तीर के समान बना लिया है।

२. (→) शब्द का रूप उसका क्रमशः परिवर्तन बतलाने के लिए संकेत --चिह्न।

४. (=) शब्दों का सम--रूप समानार्थ बतलाने के लिए संकेत।

५. (√) संस्कृत की मूल धातु के साथ लगाया जाने वाला संकेत।

६. (?) व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द की सम्भावित और संशयापन्न स्थिति बतलाने के लिए संकेत।

७. (+) यौगिक और समस्त पद के विगृहीत रूप के लिए संकेत।

८. (—) पुस्तक-निर्देश और अर्थ के स्पष्टी-करण के चिह्न।

९. (❋) पुनर्निर्मित शब्द के सम्भावित रूप के लिए चिह्न।

१०. (०) शब्द का संक्षिप्त रूप बदलाने के लिए संकेत।

११. (क) शब्द के आगे व्याकरण सम्बन्धी संकेत शब्द और उसके विवरण के आगे आवश्यकतानुसार स्थान दिर्देश भाषा निर्देश और कहीं-कहीं शब्दार्थ के स्पष्टीकरण के लिऐ 'संकेत'।

(ख) मूल संस्कृत धातु का अर्थ बतलाने के लिए।

(ग) बड़े कोष्ठक के अन्तर्गत भाषानिर्देश और प्रत्यय-निदश के लिए संकेत।

अब तक संगृहीत शब्दों की वर्गानुसार संख्या :—

१	कृषि के योग्य एवं अयोग्य भूमि	२०९
२.	हल, उसके भेद और विभिन्न अंग	४६
३.	सिंचाई और उसके विभिन्न साधन	१०
४.	बादल हवाएं ऋतुएं और उनके परिवर्तन आदि	१४५
५.	घरेलु और अन्य पशु और उनके अंग	१५४
६.	दूध और उसके विभिन्न क्रिया[illegible]	२२

३३.	डोम और रूटाल उसके औजार आदि	१८
३४.	जुलाहा उसके औजार–उपकरण कार्य आदि	३४
३५.	बेलना और उसके अंग	
३६.	घ्राट और उसके अंग	२०
३७.	कोल्हू तथा उसके अंग	४८
	योग	२७१७
	बाद में	५०
		२७६७

शब्दावली के विभिन्न वर्गों में कुछ शब्दों के उदाहरण :—

(१) धरतरी माता (सं० सभी०) भूमि जो सबके लिए माता के समान पूज्य है—प्रायः किसान हल जोतने से पहले धरित्री माता को या ईश्वर को अवश्य स्मरण करता है । [धरित्री संस्कृत] पर्या० पिरथी, जिमीं !

(२) व्हन्दड़ जिमीं—(वि० सभी०) वह भूमि जिसमें हल जोती जा सके !

(३) खेती—(सं० सभी०) १. जमीन में लगी हुई फसल !
२, कृषि कार्य

बच्छू—(सं० पुं०) गाय का बच्चा । जन्म से युवावस्था तक इसे बच्छू ही कहा जाता है ।
(उबु०), बच्छा (पुभू०), बच्छरु बछड़ो (सुरा०), बेछरू और बछड़ू (भ०) [बच्छू—बछक—बच्छस्थ्र—बच्छस्थ्र—वत्स रूप (संस्कृ) ।

रम्हाणा -(क्रि०) गो जातीय पशु की आवाज ! (उबु० पुत्र०) रेभृ शब्दे (शब्द करना) महाभारत में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है :—
ऊर्ध्वं पुच्छान् विधुन्वाना रेभमाणा समन्ततः
गावः प्रति न्यवर्तन्त दिशमास्थायदक्षिणाम् ॥
(म० वि० पा० अ० ५३ श्लो० २५)

हल्दर—(सं० सभी) लगभग पीले रंग की एक कंद जिसे सुखा कर और

कूट कर और चूर्ण बनाकर दाल—सब्जी आदि व्यञ्जनों में डाला जाता है ! इसके बीज (अक्खीं) वर्षाऋतु में जमीन में दबाए जाते हैं और बीच-बीच में गुडाई करके धान् के तूर्स का खाद डाला जाता है। फाल्गुण-चैत्र में उखाड कर बोरी पर रगड़ कर ऊपर के छिलके उतार कर इसकी गुठलिओ को साफ कर दिया जाता है, फिर कूट कर चूर्ण बना लिया जाता हैं। पर्या० बसार,
[हल्दर – हल्दी - हरिद्दा—हरिद्रा (संस्कृ)]

चमैर—(सं० पुं०) चमड़े का व्यवसाय करने वाला व्यक्ति ! चमार जूते भी बनाता है और केवल चमड़े का खरीद-फरोख्त का काम भी करता है।
[चमैर (डो०)—चमार (हि०)—चम्मआर (प्रा०)—चर्मकार (संस्कृ०)]

सूत्तर—(सं० पु०) रूई के धागे। (उपु०) पुं, ज० त०)
[—सूत (हि०) –सुत्त (प्रा०)—सूत्र (संस्कृ०)]

खीर—(सं० सभी०) दूध, चावल और चीनी के मिश्रण से बना हुआ खाद्य पदार्थ। (उपु० ज० त०, पुभ०)।
२. आखिरकार (अ० प०) [—खीर (प्र०)—क्षीर (संस्कृ०) केवल दूध]

लिस्सा – (वि० उ० लि०) कमजोर पशु और मनुष्य।
√लिश् अल्मी भावे (कमजोर होना) पर्या० कसजोर, कम्मोर (वर्ण वि०)।

हौड़ी-हौड़ी—(कि०) भैंस जाति के पशुओं को आगे चलने के लिए या फसल में जाने से रोकने के लिए हांकना ! इसका उच्चारण होड़ी-होड़ी और ओड़ी-ओड़ी भी होता है ! होड्, अनादरे, गतौ (अनादर सूचक आवाज देना, चलाना)।

मुण्णना—(क्रि०) भैंस जाति के पशुओ यर भेडों को मूण्डना प्रायः भैंस जाति के पशु के बाल वर्ष में एक बार और भेडों को प्रति तीन महीने के बादमूना जाता है !
[मुण्ण+ना—मूंडना—मुण्डनम् (संस्कृ) √मुडि मुण्डने (मूंडना)]

पूला—(सं० पुं०) घास का गट्ठा। यह दो प्रकार का होता है !

१. केवल एक ओर से बांधे हुए घास का।

२. इसें क्याड़ा (दे०) कहते हैं ! इसमें घास को उल्टा सीधा करके बांधा जाता है। भरोट्ट (ज० त० प० भाग) गड्डी (पुभु०) [—पुलू मूल: (संस्कृ) पूल संधाने]

मलोदरा—(सं० पु०) एक प्रकार का घास जिस पर छोटे-छोटे बीज होते हैं। जब तक इसपर ये बीज नहीं होते हैं यह घास पशु को कोई हानि नहीं पहुंचाता है। बीज हो जाने पर यदि कोई पशु इसे खाए और इसका एक दाना भी उसकी दाड़ में फंस जाए तो पशु नशे से बेहोश हो जाता है और कभी-कभी मर भी जाता है। [√म्लेट्ट √म्रेड़, उन्मादे (पागलपन)]

जोट्ट—(सं० प्र०) विशेष प्रकार से बना हुआ रस्सा जो चरागाह मे चरने के लिए छोड़े जाने वाले घोड़े को बांधा जाता है। यह दो प्रकार का होता है: —

१. केवल घोड़े के लिए बनाया हुआ।

२. उद्दण्ड पशु को चरागाह में ले जाने से पहले बांधा हुआ साधारण रस्सा ! [√मौट्ट बन्धे (बांधना)] कुछ शब्द डा० चाटर्ज्या के अनुसार ऐसे हैं जिनकी व्युत्पत्ति होनी कठिन है। इन्हें उन्होंने देशज कहा है : —

खिल्ला—(वि० उ० लिं०) ऐसा खेत जिस में खेती नहीं हो ! [खीला (सि०)]

फिक्का—(वि० उ० लि०) ऐसा फल, वस्तु या अन्न जिस में किसी प्रकार का स्वाद न हो। [फीका (हिं०)]

ग्होट्टना (क्रि०) १. किसी एक वस्तु के साथ दूसरी मिलाना ! विशेष कर राव और तम्बाकू का मिश्रण करना।

२. कुशर्ती करते-करते एक पहलवान द्वारा दूसरे को नीचे दबा कर लताड़ना।

ध्यारी—(सं० सभी०) गेहूं गाहने के समय पौधों की बारीक मिट्टी जो किसान के कपड़ों पर जमा हो जाती है।

प्लूह्—(सं० पुं) वृक्ष की टहनिओं की प्रथमावस्था। ग्रीष्म-ऋतु में जब पशु के लिए चारा खत्म हो जाता है तो उन वृक्षों की कोमल टहनियें जिनके पत्ते पशुओं को खिलाए जाते हैं !

लेत्त—(सं० सभी) लकड़ी घास का टुकड़ा जो हाथ-पांव में चुभ जाता है।

कुछ उधु० ज० ता० छिङि (प्रधु) विदेशी शब्द जो वर्ण विपर्यय, प्रयत्न लाघव आदि के कारण अपने बदले हुए रूप में आते हैं :

बकाऊ--(वि० उ० लि०) वह गाय भैंस आदि पशु जो उसके मालक के द्वारा बेचा जा रहा हो। विकाऊ (उ०)।

रेतली (वि० उ० लि०) वह जमीन जिस में रेत की मात्रा अधिक हो। रेतली (उ०)

जिमीदार—(सं० पु०) १. खेती-बाड़ी का काम करने वाला ब्यक्ति।
२. जमीन का मालक जो स्वयं कृषि कर्म नही करता है।

इस प्रकार कोश रचना कार्य के संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय के साथ मैंने अपने कार्य का आरम्भ से लेकर आजतक का व्योरा प्रस्तुत किया है। आशा है कि मुझे अपने उद्देश्य में शीघ्र सफल होने के लिए डोगरी साहित्य प्रेमिओं से पथ प्रदशर्न और सहयोग मिलता रहेगा।

अन्त में मैं अपने उन किसान भाइओं का हार्दिक धन्यवाद करता हूं जो शब्दावली के संग्रह में सहयोग दे रहे हैं और जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस लेख को तैयार करने में भी विशेष सहयोग दिया है। श्री श्यामलाल शर्मा मन्त्री डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट और अपने मित्र डा० सोम प्रकाश 'सोमा' के प्रति भी मैं आभार प्रकट किए बिना नहीं रहूंगा जिन्होंने पुस्तकें देकर यह लेख तैयार करने में मेरा मार्ग सुगम बनाया है।

लेख को तैयार करने के के लिए निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली गई है :

१. भाषातत्व और वाक्यपदीय — डा० सत्यकाम वर्मा।

२. भाषा शास्त्र की रूप रेखा—ले० डा० उदयनारायण, तिवारी।
३. सरल भाषा विज्ञान—ले० डा० मनमोहन गौतम ।
४. भारतीय आर्य-भाषा—मू० ले० ज्यूल ब्लॉख
('ल'आंदॆ एरियों) अनु० डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ।
५. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी—
ले० डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ।
६. अनुसन्धान की प्रकिया -सम्पादक डा० सावित्री सिन्हा और डा० विजयेन्द्र स्नातक ।
७. हिन्दी भाषा (अतीत और वर्तमान)
ले० डा० अम्बा प्रसाद 'सुमन' ।
८. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास—
ले० डा० गुणानन्द जुयाल ।
९. सामान्य भाषा विज्ञान- ले० डा० बाबूराम सक्सेना
१०. कृषक जीवन सम्बन्धी ब्रज भाषा शब्दावली—
सम्पादक डा० अम्बा प्रसाद सुमन,
११. कृषि-कोश—डा० विश्वनाथ प्रसाद
१२. ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली—डा० हरिहर प्रसाद गुप्त
१३. भारतीय व्यवहार कोश—श्री विश्वनाथ दिनकर नरवणे ।
१४, Sanskrit English Dictionary—
By V. S. Apte
१५. Bhargava's standard illustrated Dictionary
—By R. S. Pathak.
१६. English Sanskrit Dictionary—
By V. S. Apte.
१७. धातुपाठ –प्र० चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय ।
१८, हिन्दी शब्द संग्रह—सम्पादक श्री मुकुन्दीलाल
श्री राज वल्लभ सहाय ।

शक्ति शर्मा

ग्रामीण स्त्रियों के उद्योग

अपने दैनिक जीवन में जहां किसान बंधु अपने पुत्रादि सहित प्रातः तीन चार बजे उठ कर धरती के पेट से अपने लिए तथा संसार के लिए अन्न उपजाने के कार्य-क्रमों में व्यस्त हो जाते हैं वहां गांवों की स्त्रियां—क्या वृद्धाएं क्या युवती व बालिकाएं उसी समय से घर के काम काज में जुट जाती हैं।

प्रौढ़ा स्त्रियां तो अनाज पीसने, चरखा कातने, दूध दोहने दही बिलोने आदि में लग जाती हैं और कन्याएं व 'बालड़ी बरेस' (छोटी उमर) की बहुएं प्रातः उठ कर खेतों में पानी के किनारे उग आने बाले घान काई इत्यादि से बड़े कलात्मक ढंग से टोकरियां, बैठने के लिए 'बिन्ने', 'खोखड़े', 'छिक्कू', 'पक्खियां', 'बाल्टियां' आदि बनाने बैठ जाती हैं।

स्त्रियों के ग्रामोद्योग

साधन :—स्त्रियों के उद्योग धंधों में कोई बड़े २ साधनों साज सामान की आवश्यकता नहीं होती 'बिन्ने', छिक्कू', आदि बुनने को निम्नलिखित साधारण सामग्री पर्याप्त है :—

सूआ :—तीन चार इंच लंबी सूई होती है इसका सुराख इतना लंबा होता है कि एरा या गाभा (जिसे पड्ड कहते हैं) धागे की भांति इसमें पिरोया जा सकता हैं।

गाभा या एरा :—यह एक प्रकार का घास होता है जो प्रायः आध पौन इंच चौड़ाई और एक से तीन फुट तक की उंचाई का होता है। यह प्रायः नदी, नाले के किनारे पर उगता है। स्त्रियां जब नहाने, कपड़े धोने या पानी भरने जाती है तो आती बार दरान्ती से उसके नए निकले गाभे को काट लेती हैं और 'मुट्ठियां' बांध कर घर ले आती हैं। फिर धूप में सुखाने पर वह हरा हरा गाभा सुनहरी रंग का हो जाता है और तब आवश्यकतानुसार उसे नीला, पीला, लाल, हरा आदि रंग लिया जाता है।

मुट्ठ :—हाथ में जितना एरा या गाभा भरा जा सके भर कर मुट्ठी बांध ली जाती है और परिमाण के लिए उसे 'मुट्ठ' कह कर ही आंका जाता है। जैसे—'दस मुट्ठां' 'पंदरां मुट्ठां' इत्यादि। इस का नाप या तोल 'मुट्ठ' ही है।

सरुट :—यह बहुत बारीक और तीन या चार फुट उंचा घास होता है। इसे काट कर ले आते है और भिन्नभिन्न प्रकार की वस्तुऐं बनाने के लिए आवश्यकतानुसार सुखा लेते हैं। एक अंगुली प्रमाण सरुट ले कर सुए से पिरोए 'पट्ठे' या 'एरे' की सहायता से उस सरुट को लपेट कर बांध लिया जाता है और आवश्यकता के अनुसार गोल या लंबा या उठाई में ढालते जाते हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित वस्तुऐं बना ली जाती है और कई प्रकार से उपयोग में लाई जाती हैं :—

बिन्ने :—बैठने के लिए गोलाकार आसन जो कभी २ बड़े ही कलात्मक बन जाते हैं और विभिन्न रंगों के संमिश्रण से बनाने की सुरुचि का परिचय देते हैं।

खोखड़े : छोटी छोटी टोकरियां जिन में आधा सेर तीन पाव दाने आ जाएं बच्चे उन में दाने भुनाने के लिए ले जाते हैं उन में दाने डाल कर औरतें चक्की पीसते पास रख लेती हैं या रोटी को पलेथन लगाने के लिए सूखा आटा भी उन्हीं खोखड़ों में रखा जाता है इस आटे को 'धूड़ा' कहा जाता हैं। कातने के समय इन्हीं खोखड़ों में रूई की पूनियां भर कर पास रखी जाती हैं। पूनियों के लिए रंगीन और दाने डालने के लिए सादा खोखड़े बनते हैं।

टोकरे टोकरियां या खारियां

खारियां या टोकरियां :—दाने डालने के लिए, सब्जी व आम खरबूजे आदि फल रखने के लिए या पुरुषवर्ग के लिए खेतों में 'शाह बेला' (सुबह का नाशता) अथवा अन्य ऐसे कई कामों में प्रयुक्त होती हैं। अनाज को साफ करके टोकरों में रखा जाता है और पीसने के लिए 'घराट' (पनचक्की) पर ले जाते हैं। पिसवाने के लिए अनाज को छांटने, ओखली में कूटने, और चुन कर साफ करने आदि की क्रियाओं को 'पीहन करना' कहते हैं। इसी प्रकार टोकरे 'गतावा' (पशुओं के लिए सानी करना) करने के काम भी आते हैं तथा दूर पार कोई चीज भेजनी हो तो भी इन में भरकर भेजी जाती हैं।

छिक्कू—खोखड़े को यदि ढक्कन लगा दिया जाय और तीन चार रंगों की बानगी दे कर बनाया जा तो वह छिक्कू हो जाता है उसे बहुएँ अपने शृंगार प्रसाधन संभालने के काम भी लाती है।

छाबड़ी—रोटियां पका कर छाबड़ी में रखी जाती हैं और बड़ियां सुखाने या थोड़ी चीज़ को (दाने, कपासदि) धूप दिखाने के काम भी लाई जाती हैं। यह प्राय: ऊपर को उठे हुए किनारों बोली थाली के समान होती हैं। पंजाबी में इसे 'चंगेर' कहते हैं।

बालटियां—लोहे और पीतल की बालटियों को देखकर इसी प्रकार की टोकरियां बननी शुरु हो गई हैं जो प्राय: सौगात भेजने के काम आती हैं।

बखार—एक विशेष प्रकार के टोकरे को ही कहते हैं जो आमतौर पर 'पीह्न' डाले डालने के काम आते हैं। गरमी के मौसम में मित्रों सम्बन्धियों से यहां आम खरबूजे भी इन्हीं में भरकर भेजे जाते हैं। मुख्यत: बखार लड़की या लड़के के सुसराल में 'भाजी' (मट्ठियां खमीरे आदिं) भेजने के काम आते हैं।

पटार—वह ढक्कन बन्द टोकरे जो विशेष रूप से सन्दूकों का काम देते हैं। और नये कपड़े रखने दहेज और बरी के कपड़े भेजने के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। ये साधारणता बांसों की पतली परतों से बनते

हैं। रंग-रंगे पट्टे या एरे से बनाने हों तो औरते बनाती हैं और बांस के बनाने हों तो कारीगरों से बनवाये जाते हैं।

पक्खियां—उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त ग्रामीन लड़कियां पक्खियां (पंखे) बनाती हैं। इनके लिये अधिक चातुरी और अन्य प्रकार के सामान की आवश्यकता होती है।

नाड़—कनक का सिट्टा यानी दानेवाला भाग काट लेने के बाद जो पौधा लम्बे से तिनके के नीचे बच रहता है उसे 'नाड़' कहते हैं। इसी नाड़ की पक्खियां बनती हैं। यही नाड़ जब बैलों द्वारा खलिहान में "छड़ा" (रौन्दा) जाता है तो 'भो' (भूसा) बन जाता है।

सूई और रंगदार धागे—पक्खियों की बुनाई के लिये साधारण सूई से कुछ मोटी और लम्बी सूई तथा अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे धागों की आवश्यकता होती है। नाड़ के टुकड़े काट कर समभाग में तीलियां बनाई जाती हैं और सूई धागे से जोड़ कर पक्खी बनाई जाती है जिसमें रंगीन धागे से बेलबूटे 'काढ़े' जाते हैं। फिर उसकी एक ओर 'डण्डी' लगाकर खूब कसकर जोड़ा जाता है। पक्खी के चारों ओर किसी रंगदार कपड़े की लम्बी सी गोट लगाकर तीलियों के चुभने वाले सिरे ढक दिये जाते है। इसे 'मगजी' लगाना कहते हैं। अधिक सुन्दर बनाना हो तो एक गिरह चौड़ी रंगी मलमल की झालर लगाई जाती है।

फुम्मन—यदि झालर के लिये कपड़ा उपलब्ध न हो सके तो दरजी की दुकान पर बिखरे पड़े छोटे २ रंग-बिरंगे टुकड़ों को लाकर उन्हें गोल-गोल काट लिया जाता है। फिर चार तह करके नोक की ओर से पक्खी की गोट पर एक-एक अंगुल के अन्तर पर टांका जाता है। इससे पक्खी बहुत सुन्दर लगती हैं।

कुण्डल—कांच की टूटी चूड़ियों के कुण्डल बनाकर कानों में पहनने के आभूषण बनाना ग्रामीण बालाओं की निर्माण बुद्धि तथा कलाप्रियता का सुन्दर परिचय है। कुण्डल बनाने के लिये केवल एक जलते दीपक की आवश्यकता होती है। टूटी चूड़ी के दोनों सिरों को तर्जनी और अंगूठे में पकड़ कर चूड़ी के गोलाई वाले भाग को दीपक की धीमी आग पर तपाया जाता है

नरम पड़ता है तो दोनों सिरों को जोड़ कर इस रूप में लाया जाता है। कई बार विशेष निपुण महिलायें इसे मोड़ कर अंग्रेज़ी के अंक 8 के रूप में ले आती हैं और फिर ठण्डा करके धागे में पिरो कर कानों में पहनती हैं।

कान्ने की बंङा—लड़कियां काई के मोटे छिलके उतार कर 'बंङा' (चूड़ियां) बनाती हैं, लम्बा सा छिलका उतार कर काट लेती हैं। उसे गोलाई में मोड़ कर दोनों सिरों में कान्ने के गूदे का छोटा सा टुकड़ा जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार 'बंङा' तैयार करके पहन लेते हैं। कान्ने के छिलके और गूदे के सहारे वह लोग हुक्के चिड़ियां घर इत्यादि कई प्रकार के अन्य खिलौने भी बनाते हैं।

युवतियों और प्रौढ़ाओं के उद्योग :—घर की बहुएं नई और पुरानी सभी गृहस्थी को सुचारु रूपेण चलाने के लिए उत्तरदायी हैं इस लिये उनके कार्य भी अधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक होते हैं। खाना पकाना, कपड़े धोना, सफ़ाई करना, पानी भरना, बच्चों का पालन-पोषण करना इत्यादि काम तो उनके लिये हैं ही। इनके अतिरिक्त भी उन्हें जो काम करने पड़ते हैं वे हैं खेत में काम करना, कपास चुनने से ले कर सूत कातने तक एवं अनाज की संभाल के लिये मिट्टी के बड़े २ कोह्ल तथा कोह्लियां (अनाज-रखने के लिये सन्दूक के आकार के मिट्टी के बड़े पात्र) बनाना, दधारने (तन्दूर की भान्ति का चूल्हा जिसमें दूध काढ़ने के लिये बर्तन रख दिया जाता है। इसके चारों ओर सुराख होते हैं। सूखे उपले सुलगा कर कर उसमें डाल दिये जाते हैं इस प्रकार वे धुखते रहते हैं और दूध सारा दिन कढ़ता रहता है) चूल्हे, चक्की के गंडे (चक्की के चारों ओर एक बालिश्त ऊंची मिट्टी की दीवार बनाई जाती है। एक तरफ़ रास्ता रखते हैं, जब आटा जमा हो जाता है तो निकाल लेते है) बनाना, दिवारों, फर्शों तथा कोठों की छतों की लिपाई करना इत्यादि।

कपाह चुनना :—ग्रामीण स्त्रियों के उद्योगों में विशेष महत्वपूर्ण कार्य कपास के खेत से प्रारम्भ होता है। कपास चुनने से लेकर सूत कातने तक महिलाओं को बड़े मरहले तय करने होते हैं।

फुटकरी मारना या फुटकड़ी देना :—कपास चुनना प्रारम्भ करने से एक दिन पहले घर की स्त्रियां इकट्ठी हो कर खेत पर जाती हैं और खेत के चारों कोनों पर दही के फुट्ट या लुक्खड़ (सख्त जमा हुआ दही) रख देती हैं या मुंह में चावल भर कर खेत के चारों कोनों में जाकर फून्कार करती हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से कपास खूब मोटी और सफेद निकलती है। इस रसम को फुटकरी मारना या फुटकड़ी देना कहते हैं। किसी २ स्थान पर इसी क्रिया को 'लौन देना' भी कहते हैं।

कपाह चुनना :— उपर्युक्त रसम के बाद दूसरे दिन मुंह अन्धेरे घर की समस्त स्त्रियां (वृद्धाओं को छोड़ कर) कपास के खेत में चली जाती और खिले हुए 'डीनों' (कपास के पौधे पर जो डोडे लगते हैं जिन में से कपास निकलती है) में से कपास चुनचुन कर झोली में भर दी जाती हैं।

कपाह दे फुट्ट :—वह कपास जो खूब गुथी हुई, गाढ़े जमे हुए दही की भान्ति सफेद हो उसे 'फोल' या 'फुट्ट' कहते हैं। यह बढ़िया किस्म की कपास होती है। जो कपास बिखरी २ धुन्दले या पीले रंग की हो वह हल्की किस्म की होती है।

लुढ़ी या लुढ़ा :—यह एक लाल रंग का कीड़ा होता है जो कपास को लग कर उसे खा जाता है। कीड़ों द्वारा खाई हुई ऐसी कपास को 'कानी कपाह' कहते हैं।

ओआ चुनना :—जब कपास इतनी अधिक खिलने लगती है कि घर की स्त्रिवों से सम्भाली नहीं जाती तो वे गावों की नीच जाति की कुछ स्त्रियों को भी सहायता के लिये बुला लेते है। इस सामूहिक प्रयास को 'आओ चुनना' कहते हैं और श्रमिक स्त्रियों को 'ओ आरन' या 'ओ आरण' कहते हैं।

धुप्प लुआना या सुक्कन पाना :—चुन लेने के बाद कपास को आंगन में छत पर चार पाइयां विछा कर धूप में डाल दिया जाता है। इस क्रिया को वे लोग 'धुप्प लुआना' या 'कपाह सुक्कनै पाना कहते हैं।

कपाह चुनना—धूप में कपास की नमी दूर हो जाने पर इसे टोकरियों में

भर कर रख लिया जाता है। और वृद्धाएं इसे हाथों से एक एक बूरी (कपास के एक दाने को बूरी कहते हैं) करके साफ करती हैं। घासपात तिनके लुड़े लुढ़ियां और खुर खुड़ियां (कपास के डोडे से कपास निकाल कर जो खोखला भाग रह जाता है उसे 'खुर खुड़ी' कहते है, गाय भैंस को खिलाने से वह खूब दूध देती हैं) निकाल कर कपास को एक बड़े से टोकरे में भर लिया जाता है।

चोन—गन्दी कपास को निकाल कर पृथक किया जाता है। इसे चोन कहते हैं।

झम्मनी एक लकड़ी या लाठी। जिससे कपास फटकारी जाती है।

कपाह लोढ़ना—चुनी हुई कपास को लोडखने (लोड़खा) से लोढ़ा जाता है अर्थात् कपास से बिनौले अलग किये जाते हैं। बिनौलों को 'बाड़े' कहते हैं।

रूं—लोढ़ने के बाद कपास की संज्ञा रूं (रूई) हो जाती है।

रूं पिंजना—लोढ़ी हुई रूई को पिंजनी (धनुष धुनहीं) से धुना जाता है। इस क्रिया को 'रूं पिंजना' कहते हैं।

छौरा लेना रूई धुनने में छौरा लेने (परछाईं लेने) का बड़ा महत्व है। जब स्त्रियां रूई धुनने बैठती हैं तो किसी ऐसी बालिका या बहू को आवाज़ देती हैं जो काम-काज में अत्यन्त फुर्तीली हो। वह आकर रूई धुनने वाली के पास से गुजर जाती है और फिर धुनने वाली अपना काम शुरू करती है। ग्रामीण स्त्रियों का यह विश्वास है कि ऐसा करने से काम जल्दी निपटता है किसी जिल्ली (काम में सुस्त) स्त्री की परछाई पड़ जाने से कार्य में अड़चनें आती हैं।

रूई धुनने की क्रिया भी दर्शनीय होती है। बांएं हाथ में पिंजनी की मुट्ठ (सूठ या मध्यभाग) पकड़े दाऐं हाथ से उसकी तूल या तील (डोरी) खींच कर दाईं ओर सामने रखे रूई के ढेर पर बार २ फिराती जाती हैं जिस से रूई के जमे हुए रेशे पतले हो कर फूलते जाते हैं और बाईं ओर को उड़ते चलते हैं। फूली हुई रूई को लंबे आकार में गोल कर के पत्थरियां बनाई जाती हैं और टोकरों में भर २ कर अलग रख लिया जाता है। अगर

पत्थरियां न बनाकर गोल और चपटे गाले बनाए जाय तो उन्हें 'गोढ़ा' कहा जाता है ।

पूनियां बट्टना—गाले बना लेने के बाद रूई की 'पूनियां बट्टी' जाती हैं । कच्ची काई का डेढ़ बालिश्त भर कान्ना [काई का लंबा टुकड़ा] लेकर पून-सलाई बनाई जाती है धुनी रूई में से थोड़ी रूई लेकर उसे हाथ से दो उंगुली चौड़ा और डेढ़ से दो गिरह तक लंबा करते हैं। फिर उसके बीचोबीच कान्ना या पून सलाई धर कर दोनों हाथों से हल्के २ गोल किया जाता है, पूनी बन जाती है ।

चरखा कत्तना—चरखा गांव की औरतों का सर्व प्रमुख उद्योग है दोपहर को तो यह कार्य एक छोटे मोटे कम्पीटीशन का रूप ही ले लेता है। मुहल्ले की कई स्त्रियां इकट्ठी होकर अपने २ चरखे और खोखड़े [पूनियां भर कर] ले आती हैं और किसी खुले आंगन या औसारे में अपने २ चरखे के सामने फुड़ियां बना कर कातने की होढ़ लगाती हैं ।

फुड़ी—पूनियां गिन कर उन्हें बारह २ की संख्या में कई परतें [एक के उपर दूसरी] लगाने को 'फुड़ी बनाना कहते हैं ।

चरखा कातने के दौरान कई बार भिन्न २ प्रकार की अड़चने भी आती हैं जैसे :—

त्रकला भज्जना - [लोहे की शलाका जिस पर सूत कात कर चढ़ाते जाते हैं] लचकीला होने के कारण कातते समय कई बार आवश्यकता से अधिक जोर पड़ जाने या झटका लग जाने से त्रकला टेढ़ा हो जाता है और सूत की तार बार-बार टूटने लगती है । इसे 'त्रकला भज्जना' कहते हैं ।

त्रकला संडना या डींग कढ़ना—टेढ़ा हो जाने पर नौसिखयां महिलाएं किसी अनुभवी वृद्धा या प्रौढ़ा को बुला कर त्रकला ठीक करवाती हैं। त्रकले का टेढ़ापन ठीक करने के लिए वह कारीगर महिला बाएं हाथ से त्रकले के मूल भाग को दृढ़ता से पकड़ कर दाएं हाथ की तर्जनी और मध्यमा से त्रकले के अग्रभाग पर हल्के २ ऐसे चपतें सी लगाती हैं जैसे नन्हें बच्चे को प्यार से लगाई जाती हैं । ऐसा करते हुए वह बाएं हाथ से [illegible] की टेढ़ी दिशा को भी

बदलती जाती है इस क्रिया को डींग कढना या त्रकला संढना कहते टेढ़ापन निलते ही तार ठीक से चलने लगती है।

माल त्रुट्टना—माल [वह डोरी जो चरखे के चक्कर और त्रकले की क्रिया का संबन्ध बनाए रखती है] टूटने पर कातने की क्रिया बंद हो जाती है। गुंजायश हो तो उसी को नई गांठ लगा कर ठीक कर किया जाता है छोटी पड़ जाय तो नई माल लगानी पड़ती है।

माल कस्सना—माल ढीली हो जाय तो चरखे का स्वाभाविक स्वर बिगड़ जाता है और तार नहीं निकलता ऐसे समय पर माल की घुण्डी [छोटी सी गांठ जो माल में लगी होती है] को निकाल कर ज़रा और आगे खींच लिया जाता है। इस क्रिया को 'माल कस्सना' कहते हैं।

तार बाह्ना या तार कड्डुना : एक सूत निकालने को तार कड्डना और मुंढ़े पर चढ़ाने को तार बाहना कहते हैं।

मुंढा :—सूत की तारें निकाल २ कर त्रकले पर चढ़ाई जाती हैं वह एक के ऊपर दूसरी बैठती जाती हैं और जब आगे से पतला नुकीला बीच में काफी उंचा उठा हुआ और पीछे को ढलता हुआ सूत का मुट्ठा या कुकड़ी तैयार हो जाए तो उसे 'मुंढ़ा' कहते हैं।

सूत की किस्में

कड़ बेठवां :—जब कोई नौसिखिया चरखा कातना शुरू करती हैं तो प्रारंभ में उस से तार ठीक नहीं निकलती वह धागा निकाल कर उसे बहुत बट्ट (बल) चड़ा देती हैं और तार आगे चलना बंद हो जाती है ऐसे सूत को 'कड़ बेठवां' कहते हैं।

थूहड़ :—ऐसी ही स्त्रियां तार को बार २ तोड़ती हैं और तोड़ २ कर बहुत से धागे इकट्ठे कर लेती हैं उन धागों को 'थूहड़' कहते हैं।

लूम्बड़ :—'मुंढा' उतारते समय कई बार उपर का भाग खिच कर त्रकले से बाहर आ जाता है और नीचे का सूत त्रकले पर ही चिपका रहता है इसे 'लूम्बड़ निकलना' कहते हैं।

बरीक ते मुट्टा सूत्तर :—मोटी तार निकाली जाए तो सूत मोटा होता है इस प्रकार का सूत खेस तौलिए तथा चादरें बनाने के काम आता

है और अच्छा बारीक सूत कात कर उसके बने खद्दर से पहनने के अन्य कपड़े बनते हैं ।

लेफड़ सूत्तर :– रजाइयों से निकाल कर पुरानी रूई को भी कई बार कात लेते हैं यह सूत्तर भी मोटा होता है और दरियां खेस बनाने के काम आता है ।

सूत्तर टेरना ते अट्टियां बनाना : मुंढे तैयार हो जाने पर अटेरन पर उन्हें अटेरा जाता है और अट्टियां बनाई जाती हैं (लंबे २ लच्छे बनाते हैं) और बाद में जुलाहे के यहां उनकी तानी तनवा कर पानी में उसे भिगो दिया जाता है । बाद में जुलाहे कपड़ा बुनते हैं ।

अनाज की संभाल के लिए मिट्टी के उद्योग

मिट्टी लाना—छतों फर्शों और दीवारों की वार्षिक लिपाई पुताई गांवों में महिलाऐं स्वयं ही करती हैं । बरसात की समाप्ति पर औरतें तीन २ चार २ की संख्या में छप्पड़ों से (गांव के कच्चे तालाब जिन का पानी या तो पशुओं के पीने के काम आता है या कपड़े आदि धोने के; इन छप्पड़ों की मिट्टी बड़ी चिकनी होती है) गीली मिट्टी की खारियां (टोकरियां) भर-भर घर ले आती हैं ।

घानी और लेम्बी करना—जब बड़ा सा ढेर एकत्र हो जाता है तो उसमें पानी और भूसा मिलाकर घानी [भूसा मिश्रित गीली मिठ्टी को पैरों से मल कर नरम करने को घानी करना कहते हैं] करती हैं तत्पश्चात दीवारों छतों फर्शों पर लिपाई होती है जिसे लेंबी करना कहते हैं ।

गोह्ती फेरना—जब लेंबी [लिपाई] सूख जाती है तो गोबर, रेत मिलाकर तैयार की हुई अन्य मिट्टी [उस में भूसा नहीं होता] पतली-पतली तह के रूप में लिपाई के ऊपर लीप दी जाती है इसे 'गोह्ती फेरना' कहते हैं ।

पट्टा फेरना—उसके बाद फर्श को पत्थरों से घिस २ कर सीमेंट के फर्श की तरह मुलायम किया जाता है । कुछ दिन तक जब फर्श मुलायम हो जाता है तो फिर गोबर से लीप कर परोला या मकोल [सफेदी की तरह की मिट्टी] से उस पर अनेक प्रकार से चित्रकारी

और डिजायन बनाए जाते हैं या साधारण रूप से दीवारों पर 'परोला फेरा' [सफेदी करना] जाता है।

इस के अतिरिक्त मिट्टी से जो अन्य घरेलू वस्तुऐं तैयार की जाती हैं वह भी 'मिट्टी लाना' कार्य-क्रम के अंतर्गत ही आती हैं जैसे चुल्ल बनाना या संढना (चूल्हा बनाना) चांवा चूल्हा (इधर उधर उठा कर ले जाने वाला चूल्हा) पत्थना, ददारना और तंदूर बनाना, कोहल-कोहलियां, ढोक्रु, चक्की ने गंड बनाना आदि।

मिट्ठी गोहना :—छप्पड़ों से मिट्टी ला कर केवल पानी मिला कर हाथों से खूब मसला जाता है उसे 'मिट्टी गोहना कहते हैं यहां भूसा मिली मिट्टी का काम न हो बहां गोई हुई मिट्टी काम आती है। चुल्ल बनाना, चुल्ल संडना या कुक्करा लाना, पत्रौला पाना आदि।

खाना पकाने के लिए रसोई घर में स्थाई रूप से जो चूल्हा वना रहता है उसे एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर बनाने या तोड़ कर नए सिरे मे बनाने को 'चुल्ल बनाना' कहते हैं। अगर उस की थोड़ी सी मुरम्मत ही करनी हो तो 'चुल्ल संढना' कहते हैं। कई बार चूल्हे का एक कुक्करा (कंग्रा) टूट जाता है तो उस की मरम्मत को कुक्करा लाना कहते हैं। चूल्हे के पिछले भाग में तीन कंग्रें का एक अन्य चूल्हा (जो मुख्य भाग से संबंधित रहता है और उसमें दूसरी सब्ज़ी भाजी तैयार हो जाती है) रहता है उसे 'पचौला' कहते हैं उसकी मुरम्मत या नए सिरे से बनाने को 'पचौला पाना' कहते हैं।

चांवा चुल्ला पत्थना :—यह तीन कुक्करों का एक अस्थाई चूल्हा जो रसोई घर, आंगन या औसारे में कहीं भी ले जाया जा सकता है और आवश्यकतानुसार छोटी २ चीजें गर्म करने आदि के काम आता है।

डीठी :—दालान के बीचों बीच एक चौरस या गोल गढ़ा सा खोद कर उसे लीप दिया जाता है उसे डीठी कहते हैं सर्दियों में आग जला कर तापने के काम में लाई जाती है।

झलैना : चूल्हे के पीछे की दीवार पर एक छोटी सी ताकची जिस पर दीपक या घी व तेल का छोटा मोटा वर्तन रखा जाता है।

गहई :—ताकनुमा बंद छोटी सी अलमारी जिस में घी दूध दही मक्खन आदि संभाले जाते हैं यह गहियां प्राय: रसोई घर में ही बनी रहती हैं जो दीवारों में ही ताकचियों को लकड़ी के छोटे २ दरवाजे लगा कर बनाई जाती हैं।

ददारना और तंदूर :—गांव की महिलाएं तंदूर भी घरों में ही बना लेती हैं जो गर्मी में रोटी सेकने के काम आता है परन्तु 'ददारना' केवल दूघ काढ़ने के काम ही आता है। इसका आकार प्रकार ठीक तंदूर की तरह ही ऊंची दीवारों वाला और उपर से खुले मुंह का होता है परन्तु इसकी चार दीवारी में अंगुल अंगुल भर के खूब छेद कर दिए जाते हैं और ऊपर से मुंह इतना खुला रहता है कि दूध का बर्तन आसानी से रखा जा सके। इस ददारने में उपले सुलगा कर रख दिए जाते हैं और दूधनी (दूध काड़ने का मिट्टी का बर्तन) में दूध कढ़ने के लिए रख दिया जाता है। इस में दूध खूब अच्छी तरह कढ़ जाता है मलाई मोटी हो जाती है और बिल्ली आदि से भी दूध सुरक्षित रहता है।

कोहल कोहलियां आदि—कोहलियां कोहल मिट्टी के सन्दूकनुमा बड़े बड़े वर्तन जैसे होते हैं जिनमें अनाज और आटा वगैरा संभाले जाते हैं इन्हें बनाने के लिए भी भूसा मिश्रित घानी और गोबर मिला कर बनाई गई गोहती की आवश्यकता रहती है। कोहल चार दीवारों वाला और दो मुंह वाला एक चौरस संदूक सा होता है जो चार से दस बारह फुट तक चौड़ा और छः से दस बारह फुट तक उंचा होता है उस के निचले भाग को 'थली' उपर वाले भाग को छत और सामने वाली दीवार के वीचों बीच जो गोल बड़ा सां सुराख या मुंह होता है उसे 'ऐन' कहते हैं। छत पर एक बड़ा सा गोल छेद या मुंह कोहल में दाने डालने को बना रहा है जो भरने के वाद चापड़ (मिट्टी का बना गोल ढ़क्कन) से ढका जाता है उस छेद को 'मघ' कहते हैं। मघ में से 'कोहल' में दाने भरे जाते हैं और 'ऐन' में से देनिक प्रयोग के लिए रोज थोड़े २ दाने निकाल लिए जाते हैं। किसी बड़े और लम्बे कमरे में यह बड़े २ कोहल कमरे के बीचों बीच बनाए जाते हैं और यह पार्टीशन का काम करते हुए बड़े

कमरे को छोटे दो कमरों में बांट देते हैं। कोहलिया कोहल का ही छोटा रूप होती हैं जो आटा चावल दालें वगैरा रखने के काम आती हैं इन पर कई प्रकार की चित्रकारी या मिट्टी की ही कलात्मक रचना की जाती हैं।

पाथे– कोहल या कोहली पर झिझरी नुमा एक कलात्मक दीवार या उठाई की जाती है जिससे कोहल सुन्दर लगते हैं और छत तक ऊंचे हो जाते हैं।

चौंतरा खुट्टियां—मरदों के घर से बाहर बैठने के लिए उंची २ द्वार के आगे बड़ी २ चौकियां बनाई जाती हैं। यह मिट्टी की चौकियां खुट्टियां कहलाती हैं जहां बैठ कर मर्द लोग गपशप करते हैं हजामत बनवाते हैं या सन इत्यादि कातते हैं। इसी तरह बड़े २ दालानों और खुले आंगनों में चौतरे भी स्त्रियां स्वयं बना लेती हैं।

बीठन चूल्हे या चौतरे के साथ छोटी २ 'बार' देकर उसे फर्श से उंचा कर दिया जाता है जिससे सौंदर्य और उपयोगिता बढ़ जाती है।

बार देना एक के ऊपर मिट्टी की दूसरी परत चढ़ाना 'बार देना' कहलाता है।

चरखड़ियां, करगत्तियां चित्रसाल—कोहल कोहलियों की दीबारों पर चौकोर, गोल और मिश्रित कई तरह की चित्रकारी की जाती है जिसे चित्रसाल कहते हैं और दीवार के उपर के भाग में 'किंगरे' 'कंगूरे' लगाए जाते हैं।

मकोल परोला फेरना या पोचना गोहती के बाद निर्माण कार्य समाप्त हो जाता है अब मकोल या परोला भिगोया जाता है और ग्रामीण महिलाओं की कलात्मक रुचियों के प्रदर्शन का समय आता हैं। पहले तो मकोल या परोले से कोहलों की दीवारों को पोचा (पोता) जाता है (पहाड़ों में परोला फेरने या पोचने को 'मुंगफेरना' कहते हैं) फिर भिन्न भिन्न रुचि के अनुसार स्त्रियां तवे की स्याही गोबर अथवा किसी रंग विशेष का घोल तैयार करती हैं।

गुड्डियां डपट्टे—उस घोल में रूई के बुर्श बना कर वह अनेक भांति की चित्रकारी करती हैं जिन्हें 'गुड्डियां डपट्टे पाना' कहते हैं।

डोरिया ग्रौर मुहारे पाना—गोबर से फर्श लीप कर बिशेष २ ढंग से चित्रकारी (गोबर से ही) करने को डोरिया पाना या मुहारे पाना कहते हैं।

गंड—गांवों में ग्राटा पीसने का काम प्राय: दैनिक रूप में ही होता है ग्रत: स्त्रियां चक्की को मिट्टी में जड़ देती हैं जिससे वह एक ही स्थान पर पड़ी जमी रहे। मिट्टी की थाली सी बनाकर चक्की का नीचे 'पुड़' (पाट) उसमें फिट कर दिया जाता है फिर उस थाली के चारों ग्रोर हाथ डेढ़ हाथ की दीवार बनाई जाती है, वह दीवार एक ग्रोर से काट दी जाती है जिससे पिसा ग्राटा बाहर निकाला जा सके, इसके बाद दूसरा पुड़ (पाट) ऊपर रख दिया जाता है इसे 'गंड पाना' कहते हैं।

ढोबरु—मिट्टी का एक ऐसा पात्र बनाया जाता है जो उपर नीचे से संकरा ग्रौर मध्यभाग में फूला हुग्रा रहता है। थोड़ी मात्रा में ग्राटा दाल वगैरा इसमें संभाले जाते हैं।

दकोहली—छोटे-छोटे खानों वाली मिट्टी की ही पेटीनुमा संदूकची सी जिसमें नमक मिर्च हल्दी, दैनिक प्रयोग के लिए ऐसी ही ग्रन्य कई चीजें रखी जाती हैं।

दुग्गा लाना—कहीं दीवार ग्रादि टूट जाय तो ग्रधसानी मिट्टी के मुट्ठे भर कर वहां ठूंस देने को 'दुग्गा लाना' कहते हैं बाद में लेंबी ग्रौर गोहती फेर कर उस स्थान को सम ग्रौर मुलायम किया जाता है।

—श्यामलाल शर्मा

डोगरी में प्रचलित उर्दू शब्दावली

राजनीतिक क्षेत्रों में बहुचर्चित रियासत जम्मू व कश्मीर में पीरपञ्जाल की पर्वतमाला रियासत को दो स्पष्ट भागों विभक्त करती है। उत्तरी भाग में कश्मीर की घाटी और पीर के दक्षिण में जम्मू प्रान्त। तीसरी इकाई लद्दाख प्रदेश है जो अपने दुर्गम पर्वतों, असह्य शीतल वातावरण के कारण पृथक् ही संस्कृति और सामाजिक जीवन रखता है। इन तीनों इकाइयों को महाराजा के शासन ने एक सूत्र में पिरोए रखा है।

रियासत की तीन क्षेत्रीय भाषायें विधान द्वारा स्वीकृत हैं। लद्दाखी कश्मीरी और डोगरी।

लद्दाखी हिन्द-तिब्बती परिवार की भाषा है। कश्मीरी को दर्द परिवार की भाषा कहा जाता है। परन्तु पद्मभूषण डा० सिद्धेश्वर वर्मा जी के पहाड़ी बोलियों के अनुसन्धान के अनुसार कश्मीरी में इण्डो-आर्यन परिवार के गुण ही प्रमुख दृष्टिगोचर होते हैं। जम्मू प्रान्त की डोगरी हिन्द-आर्यन परिवार की भाषा है और भद्रवाही, किश्तवाड़ी, रुधारी, खशाली, रामबनी, गोजरी तथा चम्याली, भट्याली, कांगड़ी आदि रूपों में चम्बा, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेशों तथा पञ्जाब के उत्तर प्रदेश में बोली जाती है। इन इलाकों के लोग अपने आप को डोगरा कहते हैं सेना में भी डोगरा ही लिखवाते हैं और इसी प्रमुख वृत्ति के लिये प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान लेख का सम्बन्ध केवल जम्मू की डोगरी से ही है। डुग्गर शब्द के विषय में द्विगर्त[1], डुंगर[2], दुर्गर[3] आदि व्युत्पत्ति के भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रचलित हैं ।

उच्चारण आदि के भेद के कारण डोगरी अपने ऊपर लिखे प्रदेशों में भिन्न-भिन्न रूपों तथा नामों से बोली जाती हैं परन्तु रस एक है। भौगोलिक दृष्टि से डुग्गर प्रदेश प्रायः अलग-थलग रहा है । डुग्गर देश के उत्तर में विशाल-भीमकाभ पर्वतमालाओं ने यातायात का बहुत कम अवसर दिया है। बहुत पहले समय में पंजाब और डुग्गर प्रदेश के दर्म्यान भीषण जंगलों और दुरुह तथा कण्टाकीर्ण प्रदेश ने ही इसे पृथक रक्खा । पश्चिम की ओर से होने वाले आक्रमण भी कश्मीर के सौन्दर्य के कारण होते थे और डुग्गर प्रदेश प्रायः पृथक ही रहता था । डा० अतहर अब्बास द्वारा लिखित मध्यकालीन भारत के इतिहास में नादिर शाह के जम्मू के पास से निकल जाने मात्र का संकेत है ।

छोटे-छोटे राज्यों में बंटा डुग्गर प्रदेश अपना स्वतन्त्र परन्तु पृथक जीवन बिताता रहा, इस लिए बाहिर का विशेष प्रभाव इसके सांस्कृतिक जीवन पर बहुत कम पड़ा ।

उन्नीसवीं शताब्दी में महाराज गुलाबसिंह ने अपने बाहुबल से जम्मु, कश्मीर, लद्दाख को एक किया तथा एकता के सूत्र में पिरोया । महाराजा के डोगरा वंशी होने के कारण स्वाभाविक रूप से डोगरा सेना तथा डोगरा अफसरों के कारण डोगरी का प्रभुत्व होता था । महाराजा गुलाब सिंह जी के सुपुत्र महाराजा रणवीरसिंह जी का काल डोगरा शासन की सुव्यवस्था तथा सर्वांगीन उन्नति का समय था । डोगरी राजभाषा बनी । संस्कृत के महान्

(१) पुराणों में वर्णित त्रिगर्त के आधार पर जम्मू प्रदेश में मानसर और सरूईंसर झीलों पर इसे द्विगर्त कहा गया है ।

(२) राजस्थान में डुंगर पहाड़ी टीले को कहते हैं तथा राजस्थान से निकले हुए लोगों का जम्मू प्रदेश में बस जाना और डूंगर के आधार पर प्रदेश को डुग्गर की संज्ञा देना ।

(३) प्रो० कील हार्ण द्वारा प्राप्त ताम्र पत्र, तथा राज-तरंगिणी में वर्णित दुर्गर प्रदेश के आधार पर डुग्गर प्रदेश ।

ग्रन्थों तथा न्याय, चिकित्सा और ज्योतिष तथा कर्मकाण्ड सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ । रणवीर ज्योतिर्निबन्ध. रणवीरप्रकाश, रणवीर व्रत रत्नाकर परन्तु इन ग्रन्थों की भाषा हिन्दी-व्रज भाषा से प्रभावित तथा स्थानीय शब्दावली और उच्चारण की छाप लिये हुए है । महाराजा के अफसर अधिकतर पंजाब के होते थे और पंजाब में उर्दू की प्रभुता होने के कारण डोगरी में उर्दू भाषा का प्रभाव बढ़ने लगा ।

महाराजा प्रताप सिंह के शासन में उर्दू राजभाषा हो गई । पंजाबी हिन्दू अफसर तथा मुसलमान अफसर मुकम्मल तौर पर उर्दू को ही प्रश्रय देते थे । परन्तु जनता का शासन से सम्बन्ध न्याय और सेना की दृष्टि से ही आता था । इसलिए डोगरी में न्याय के लिए और दफतरी काम सम्बन्धी तथा सेना सम्बन्धी शब्दावली में उर्दू का बोलबाला हुआ । अदालती काम काज सारा उर्दू में होने लगा । जनता का बहुभाग खेतीबाड़ी से सम्बन्ध रखता था इसलिए दीवानी मुकद्दमे खूब होते थे । मालिया, आव्याना जमीन की पैमाइश इत्यादि और न्याय सम्बन्धी प्राय: शब्दावली उर्दू से प्रभावित हो गई । रियासत जम्मू-कश्मीर की जनता का बहुभाग मुसलमान होने के कारण सामाजिक जीवन में कुछ पेशों व्यवसायों सम्बन्धी शब्दावली में भी उर्दू का जोर हुआ । धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा ललित-कला सम्बन्धी क्षेत्र प्राय: अछूते ही रह गये । अथवा उर्दू से बहुत कम प्रभावित हुए । उर्दू भाषा स्वयं अर्बी-फारसी से प्रभावित है, इसलिये डोगरी में अर्बी तथा फारसी के शब्द तत्सम, अर्धतत्सम तथा तद्भव रूपों में विद्यमान हैं और भाषा के अभिन्न अंग हैं ।

इन शब्दों को प्रशासनिक, प्राय: न्यायालय, और दफतरी काम-काज सम्बन्धी फौज सम्बन्धी, पेशे, तथा अन्य छोटे-छोटे भागों में विभक्त किया गया है ।

छोटे-छोटे भागों को सामान्य भागों में सम्मिलित किया गया है :—

प्रशासनिक न्यायालय

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
दालत	अदालत	न्यायालय
बकील	बकील	वकील (दूसरे का पक्ष मंडन करने वाला

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
बकालत-नामा	वकालत-नामा	वकील को दिया गया अधिकार पत्र
हाकम	हाकिम	अधिकारी, अफसर
मुन्सफ	मुन्सिफ	न्यायाधीश
नाजर	नाजर	देखने वाला (द्रष्टा)
अर्जी	अर्जी	याचिका
दरखास्त	दर्ख्वास्त	प्रार्थना पत्र
दावा	दावा	अभियोग
दस्तावेज	दस्तावेज	वह कागज़ जिस में कुछ व्यक्तियों के के बीच में व्यवहारिक बातचीत लिखी हो
फरिस्त	फहरिस्त	सूची
रुक्का	रुक्का	पुर्जा (छोटा पत्र)
सालस	सालस	दो पक्षों में एक समझौता कराने वाला
दलील	दलील	प्रमाण
इन्तजाम	इन्तजाम	प्रबन्ध
इश्तेह्यार	इश्तहार	विज्ञापन
सुलह	सुलह	सन्धि
सलाह्	सलाह	सम्मति
एहलमद	अहलमद	अदालत का प्रधान मुन्शी
दस्ती चिट्ठी	दस्ती चिट्ठी	व्यक्ति द्वारा (डाक द्वारा नहीं) भेजी गई चिट्ठी।
गश्ती चिट्ठी	गश्ती ,,	घूमती हुई ,,
स्याहनवीस	स्याहनवीस	मुन्शी।
मचलका	मचलका	वह प्रतिज्ञा पत्र जिस में कोई अनुचित काम न करने और निश्चित तिथि पर अदालत में उपस्थित होने की बात हो।

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
मलाजम	मुलाजम	नौकर
मुल्जम	मुलिज़म	दोषी
सही (स्हई)	सही	ठीक
श्हादत	शहादत	प्रमाण गवाही
असासा	असासा	सर्माया
रहननामा	रहननामा	बन्धक, गिरवी-पत्र
बैनामा	बैनामा	विक्रय-पत्र
कसूर	कसूर	दोष, त्रुटी
माफी	मुआफी	क्षमा
फर्याद	फरियाद	प्रार्थना
स्पारश	सिफारश	किसी के पक्ष में कुछ कहना
मर्दमशमारी	मर्दमशुमारी	जनगणना
जमीन	ज़मीन	पृथ्वी, भूमि
पमाश	पैमाइश	मापना
पटवारी	पटवारी	जमीन की पैमाश करने वाला
गर्दौंर	गिर्दावर	माल विभाग का कर्मचारी
दरोगा	दरोगा	जो पटवारी के कागज़ों की जांच-पड़ताल करता हो।
तसीलदार	तहसीलदार	माल के छोटे मकदमों का न्याय करता।
बजीरवजारत	वज़ीरवज़ारत	जिले का हाकम
जर्माना	जुर्माना	दण्ड रुपये के रूप में
बालग	बालिग	व्यस्क
मालमत्ता	मालमुताअ	धन दौलत
हुकम (हौकम)	हुकम	आज्ञा
बैतल माल	बैतउल माल	लावारिस, आवारा
स्पुर्द	स्पुर्द	सौंपना
स्हियत (स्हिज्जत)	हैसीयत	पदवी, स्थिति
खौफ	खौफ	भय

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
रयाया	रिग्राया	प्रजा
रज्जत	रैय्यत	किसान

सेना सम्बन्धी

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
फौज	फौज	सेना
इपाही	सिपाही	सैनिक
जुआन	जवान	सैनिक
हवालदार	हवालदार	सैनिकों का छोटा अफसर
जमेदार	जमादार	हवालदार से उंचे पद का अफसर
बन्दूक (दमूक)	बन्दूक	बन्दूक
तोफ (तुफक)	तोप	तोप
प्यादा	प्यादा	पैदल चलने वाला
रसाला	रसाला	घुड़सवार सेना
तोफ खाना	तोप खाना	तोप खाना
दुश्मन	दुश्मन	शत्रु
खन्दक	खन्दक	खाई
तकमा (तगमा)	तमगा	पदक
कैद	कैद	कारावास
कवैद	कवायद	सिद्धान्त
किला	कला	दुर्ग
डेरा	डेरा	परिवार, तम्बू
बरूद	बारूद	दारू
म्हीम (महीम)	मुहीम	कठिन काम
जसूस	जासूस	गुप्तचर
बकशी	बख्शी	वेतन बांटने वाला अफसर

पेशे

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
सराफ	सराफ	सोने चान्दी का व्योपारी
कातब	कातिब	लिखने वाला

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
अखबारनवीस	अखबारनवीस	अखबार लिखने वाला
दर्जी	दर्जी	कपड़े सीने वाला
धोबी	धोबी	कपड़े धोने वाला
कसाई	कसाई	बूचड़, बधिक
बवर्ची	बावर्ची	रसोइया
नानबाई	नानबाई	रोटी बनाने वाला
राजड़ा	राज	मकान बनाने वाला
बागवान	बागबान	माली
दरेस	दर्वेश	दर २ गा कर मांगने वाला
जिल्तसाज	जिल्दसाज़	जिल्द बान्धने वाला
सब्ज़ी फरोश	सब्ज़ी फरोश	सब्ज़ी बेचने वाला
कलिगिर	कलई गिर	कलई करने वाला
सइस	साईस	घोड़ों का रक्षक

वस्त्र

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
जामा	जामा	लिवास
पजामा	पाजामा	पाजामा
पोस्तीन	पोस्तीन	खाल का ओवर कोट
अन्दरास (अन्दरस)	अन्दरस	कोट के अन्दर लगाने वाला कपड़ा
शेरवानी	शेरवानी	लम्बा कोट
ऐचकन (अचकन)	अचकन	लम्बा कोट
दस्तार	दस्तार	पगड़ी
गुलुबन्द	गुलूबन्द	गले में लपेटने का कपड़ा
सलोआर	शलवार	पेशावरी पाजामा
संजाफ	संजाफ	गोट किनारा
जरीदार	ज़रीदार	सुनहरी

संगीत

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
तबला (तपला)	तबला	मृदंग या ताल देकर बजाया जाने वाला वाद्य

डोगरी	उर्दू	हिन्दीं
सितार (स्तार)	सितार	सितार
मिजराव (मजराब)	मिज़राब	स्तिार बजाने का छल्ला
रियाज	रियाज़	अभ्यास, साधना
उस्ताद (स्ताद)	उस्ताद	गुरू

खेल

डोगरी	उर्दू	हिन्दीं
कुश्ती	कुश्ती	मल्लयुद्ध
दंगल	दंगल	,,
शतरंज (शतरंज)	शतरंज	चौंसठ खाने का खेल
पहलवान (भलवान)	पहलवान	मल्ल
बादशाह (पादशाह)	पादशाह	सम्राट
मलका (मलकां)	मलका	साम्राज्ञी
सलतान (सुल्तान)	सुलतान	सुलतान
बेगम	बेगम	बेगम
शहजादा	शहज़ादा	राजकुमार
बजीर	बजीर	मन्त्री
दवान	दिवान	मन्त्री, बजीर
अमला फैला	अमला फैला	कर्मचारी
सतर (सथर)	सतर	पंक्ति, पर्दा
तस्वीर	तस्वीर	चित्र

बीमारियां

डोगरी	उर्दू	हिन्दीं
सिरदर्द	सिरदर्द	सिर पीढ़ा
सिरसाम (सरसाम)	सरसाम	सन्निपात
बखार	बुखार	ताप
कब्जी	कब्ज	मलावरोध

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
दशान्दा	जोशान्दा	क्वाथ
मजूनं	माजून	अवलेह

गालियां

हरामी	हरामी	व्यभिचार से उत्पन्न पुत्र
हरामजोदा	हरामज़ादा	वर्णसंकर, दुष्ट, पाजी
बदजात	बदज़ात	नीचकुल में उत्पन्न
बदमाश	बदमाश	दुराचारी
कमीना	कमीना	क्षुद्र, नीच
दगेबाज	दगाबाज़	धोकेबाज
ऐह् मख	एहमक	मूर्ख

विशेषण

चलाक	चालाक	चतुर
चुस्त	चुस्त	फुर्तीला
चापलूस	चापलूस	खुशामदी
खैर-खाह्	खैरख्वाह	शुभचिन्तक
दूरन्देस	दूरन्देश	दूरकी सोचने वाला
सादालोह	सादालोह	साधारण प्रकृतिका
रिश्वतखोर	रिश्वतखोर	घूस लेने वाला
सखी	सखी	दानी, उदार
जादूगर	जादूगिर	जादुगिर
जालसाज	जालसाज	धोकेवाज
जाबर	जाबर	आत्याचार करने वाला
बख्तावर	बख्तावर	धनाढ्य
परेहगार	परहेज़गार	संयमी
तंगदस्त	तंगदस्त	निर्धन
गमगीन	गमगीन	दुखी
ऐबी	ऐबी	दोषयुक्त
शरारती	शरारती	चपल

डोगरी	उर्दू	हिन्दी
वेबकूफ	बेवकूफ	मूर्ख
दलाल (दल्ला)	दल्लाल	लेने वेचने में सहायता करने वाला व्यभिचार कार्य में सहायक
हजरत	हज़रत	पाजी, दुष्ट

कुछ विशेष शब्दों की रचना

बैतल—डोगरी में बैतल शब्द अर्बी-फारसी के बैत-उल माल का संक्षेप रूप है। बैत-उल माल उस खज़ाने को कहते हैं जो मुस्लमान सरदार लूटमार से भरते थे। डोगरी में इसका अर्थ आवारा के अर्थों में प्रचलित है। डोगरी में बैतल और बैतलमाल दोनों अर्थों में मिलते हैं।

१. ए जागत कनेहा बैतल होई गेया ऐ !
(यह लड़का कैसा आवारा हो गया है।)

२. एबी बैतल माल गै।
(यह भी आवारा ही है)

(२) जाजरू—यह शब्द उर्दू फारसी के जा-ज़रूर का विकार है। फारसी में जा-जरूर शौचालय को कहते हैं और डोगरी में भी इसी अर्थ में प्रचलित है।

(३) डोगरी दमाक—अर्बी दिमाग का ही विकार है। सिर का गूदा भेजा मस्तिष्क के अर्थों में और घमण्ड के अर्थों में प्रायः बोला जाता है।

"बब्ब वजीर के बनेया कुड़िया गी दमाक होई गया।"
(पिता वजीर क्या बना लड़की को घमण्ड हो गया।)

(४) बख्तावर—फा० बख्त+आवर सौभाग्य को लाने वाला परन्तु डोगरी में प्रायः धनी व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है।

"उनेंगी इस घाट्टे दी के परवाह ओ बड़े बख्तावर न"
(उन्हें इस नुकसान की क्या पर्वाह वे बड़े धनाढय हैं)

(५) मालमता—फा० माल+मताअ, धनदौलत डोगरी में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(६) मलाई—यह फारसी बालाई शब्द का विकार हैं। दूध को काढ़ने पर ऊपर मोटी तह जम जाती उसे फा० में बालाई और डो० में मलाई कहते हैं।

(७) खस्ता—फा० जल्दी टूट जाने वाला। डो० में इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।

"ए मट्ठी बड़ी खस्ता ऐ।" (यह मट्ठी बहुत भुरभुरी है)

(८) तामा (तमां) अर्बी तम्मा लालची को कहते हैं। डोगरी में प्रलोभन को कहते हैं।

'तामा देइयै कम्म कड्डी लेया।'

(प्रलोभन देकर कार्य सिद्ध कर लिया)

(९) सतर (सथर)—अर्बी पर्दा, फारसी लकीर डोगरी में दोनों अर्थों में मिलता है।

१. राजपूतनियां अजें तोढ़ी थोड़ा मता सतर करदियां न।
(राजपूतनियां अभी भी थोड़ा बहुत पर्दा करती हैं)।

२. "उस सतर नईं लखोन्दी।"
(उससे एक पंक्ति भी नहीं लिखी जाती)।

(१०) सील—यह अर्बी असील शब्द हैं, जिस के प्रथम अ का लोप हो गया है। इसका अर्थ ऊची जाति का होता हैं।

"ए सील कुक्कड़ ऐ।"

(यह मुर्ग असील है। मुर्गों की विशेष जाति)

(११) दफतर—फारसी वह स्थान जहां लेन-देन का हिसाब होता है। कार्यालय, डोगरी में कार्यालय के अर्थों में तथा लिखने पढ़ने की सामग्री के विस्तार को कहते है :—

"ए के दफतर खोले दा ऐ?"

(यह क्यां दफतर खोल रखा है?)

(१२) दुशान्दा—फार्सी जोशान्दा का ही तदभव है। 'द' का 'ज' या 'ज' का 'द' साधारण विकार है। जड़ी-बूटियों के उबले हुए पानी को कहते हैं।

(१३) सूफियाना (सफयाना)—फार्सी सूफियों जैसा, बढ़िया और सुन्दर। डोगरी में इस का अर्थ होता है वह रंग जो शोख न हो। तड़क-भड़क का न हो।

(१४) हजरत—अर्बी, बादशाहों या महाराजाओ की उपाधि। परन्तु डोगरी में प्रायः व्यंग्य के अर्थों में (पाजी धूर्त) ही प्रयुक्त होता है।

"अस उसी बड़ा सादालोह् समझदे हे पर ओ ते बड़ा हजरत निकलेया।"

(हम तो उसे साधारण व्यक्ति समझते थे, पर वह तो बड़ा शैतान निकला)

(१५) खम्याज़ा—फारसी बुरे काम का परिणाम। डोगरी में इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता है।

"नईं समझदा तां के करचै, आपूं खम्याजा भुगतग।"

(नहीं समझता तो क्या करें, स्वयं बुरे का परिणाम भोगेगा)।

(१६) उपसंहार—डोगरी साहित्य का बढ़ता हुआ भण्डार और हिन्दी, उर्दू संस्कृत, पंजाबी तथा अंग्रेजी के साहित्यकारों कलाकारों का सहयोग डोगरी शब्दावली को प्रतिदिन समृद्ध करता जा रहा है। डोगरी ने भी अपने द्वार सब भाषाओं के लिए खुले रखे हैं।

—चरणसिंह

अज्ञात कवि लक्खू

कवि लक्खू दा पता मिगी अपने ग्रां राजिन्द्रपुरे (बगूना)—जेड़ा जम्मुआ दा कोई २० मील दूर साम्बा तसील च ऐ—दे इक बजुर्गं बसकम्म घसीटू राम होन्दे थमा लग्गा। मिस्त्री घसीटू राम होन्दी उमर इस बेल्लै अस्सिएं बरें दै लग-भग ऐ। में पिछले दिनें डोगरी लोक गीत किट्ठे करने दे सिलसिले च उन्दे कोल गेया तां ओ चार-पंज डोगरी लोक गीत ते विश्वकर्मा मैंत्र लखाने दै प्रैन्त आखन लगे, "तेरे आंगर साढ़ा चाचू (पिता) बी कवित्त लिखदा होन्दा हा।" ते फी उनें मिगी दो चार उन्दे बन्द सुनाए, पर ओ पंजाबी च हे। मैं उने गी उन्दे पिता होन्दी, कोई डोगरी रचना सुनाने बास्तै गलाया तां बिन्द-भर सोचियै बोले, "चाचू होन्दी ते कोई डोगरी कविता मिगी चेता नेईं, पर साढ़े बाबे (दादा) दे शरीकें चा लगदे इक ताए 'लक्खू' दियां डोगरी बुझारतां ते इक दो कवितां मिगी चेत्ता न इस चालीं उने मिगी कवि लक्खू दिएं रचनें ते ओदे जीवन-बृत्तै दे बारे च जेड़ा किश उने अपने पिता 'रूपा' होन्दे कच्छा ने रूपा होरें अपने पिता (काका राम) होन्दे थमा सुने दा हा—सुनाएया।

जीवन बृत्त :

कवि लक्खू, राजिन्द्रपुरे (बगूना) दा रौहने आला हा ते जाति दा तरखान हा, पर ओ तरखानके कम्मै दे कन्नै कन्नै लुहारका कम्म बी करदा हा, जिस दा सबूत उस दी ए बुझारत ऐ :—

"टोम्बे दै विच टोम्बा वड़या
जाई टोम्बे गी फड़दा ।
ए बुझारत लक्खू आक्खै
आरन रम्बे घड़दा ॥"

लक्खू नै आरनै उप्पर रम्बे घड़दे होई पानियां कन्नै भरोचे दे गत्तै च इक सप्पै गी डड्डू फड़दे दिक्खेया तां 'टोम्बे' शब्दै गी त्रौं अर्थें च (पानियां कन्नै भरोचे दा गत्त, सप्प ते डड्डू) बन्नियै इक बिचित्र बुझारत रची लेई ।

इस चाली दियां उल्टियां-सिद्धियां बुझारतां उसी मजबूरी च बज्झे दे बनाने पौन्दियां हियां, की जे उस दी घरै बाली नित्त-नमी बुझारत सुनने प्रैन्त गै उसी रुट्टी दिन्दी ही । ओ बड़ी गै चतर-चनार जनानी ही ते उने दौन्नें दा ब्हाह बी उस दी चतराई कारण गै होई सकेया हा ।

गल्ल इयां होई जे ए दोए आपूं चें ब्याह करना चाहन्दे हे । कुड़ी दा बब्ब इस ब्याह वास्तै पहलें ते कतेई राजी नईं हा, पर बाद च उसनै लक्खू अग्गैं इक शर्त रक्खी जे इक लकड़ी उप्पर घुआड़ी दे सत्त फट्ट मारने ने सत्तै फट्ट इक्कै थारै उप्पर लगने लोड़दे ।

लक्खू अजैं तरखानके कम्मै च सगेत्रा गै हा, इस करी स्याना नईं हा जे इक्कै फट्टै उप्पर सत्तै मारी सकदा । घुआड़ी ते लकड़ी नुआढ़ै सामनै टिकी दी ही ते कुड़ी (लक्खू दी जनानी) दा बब्ब अन्दर मसारिया बैट्ठा निश्चिन्त तमाकू पिया करदा हा, पर लक्खू गी शर्त पूरी करने दी कोई सबील नईं ही सुज्झै करदी । इन्नें चिरा गी ओदी जनानी—जेढ़ी ओदी मजबूरी समझी गेई ही—पानी ल्यौने दै बाहन्नै बल्लैं जेई ए गलाइयै ओदे कोलें लंगी :—

"सिक्ख तरखानकी बृद्धि ।
छें पुट्ठियां इक सिद्धि ॥"

लक्खू नै छे फट्ट लकड़ी उप्पर पुट्ठे मारे ते सत्तवां सिद्धा । सौरे नै अन्दरा आनिएं दिक्खेया तां सत्तै फट्ट इक्कै थारे उप्पर लग्गे दे बझोए । इस चालीं उने दौनें दा ब्याह होई सकेया हा ।

स्याने बब्बा दी स्यानी धी ! लक्खू पहलो... लाड़ी दिया पक्कैया

खान बैठ्ठा तां उसनै इक फुल्का देइयै गलाएया जे दूआ इक नमीं बुझारत सुनाने उप्पर गै मिलग । लक्खू गी, नमी ते कुतै रेई, कोई पुरानी बुझारत बी नईं औन्दी, पर ए ओदी सरोखड़ बुद्धि दा इमध्यान हा ते केढ़ा खसम भला एदे च फेल होना चाहन्दा ऐ, खास करियै जिसलै इमध्यान लैने आली ओदी अपनी गै जनानी होए ? सैबन गै लक्खू दी नजर इक बड्डे मक्खा उप्पर पेई, जेढ़ा इक निक्की मखी गी फड़ियै उडरै दा हा तां उसने झट गै ओदे उप्पर ए बुझारत कड़ी :—

"जङड़े आले गी फङ्के आला
लेई चढ़ेया गास ।
ए बुझारत लक्खू आक्खै
बेई पचौल्ले पास ।।"

कविया दे हिरदे चा भाव-सीरां बाहन्ना मिलदे गै फुट्टी निकलदियां न। कदें ए बाहन्ना कोई गहरी चोट—वेदना बनदी ए, कदें सोहल श्लैपा, कदें हिरखै दे गुन्जल ते कदें तान्ने-रमजा एदे कारण होन्दे न। कवि लक्खू गी बी जनानी दी बुझारत सुनाने आली गल्ल इक तान्ना बझोई ते ओदे कवि हिरदे दियें भाव-सीरें गी फुट्टी निकलने दा बाहन्ना मिली गेया ओ भिरी उठदे-बौहन्दे, टुरदे-फिरदे, कम्म करदे होई नित्त नमियां बुझारतां रचन लगी पेया :—

"अखनी दै बिच मखनी सूई
कनक जमें दा बन्नां ।
ए बुझारत लक्खू आक्खी
चूपदा आवै गन्ना ।।"

ते फी बल्लैं-बल्लै दोस्ते-जारें गी तान्ने-मीने, स्नेह-सूत्र ते लाम्में बी बुझारतें च गै देन लगी पेया। उसदे मित्रै (पक्खो) दी तृम्तू नै थिन्दे दी थोढ़ै जां खरै बच्चतै करी उसी अद्ध-चुप्पड़े भठोरे खलाए तां उस नै अपने मित्रा (जेदा कुतै बाण्डे गेदा सा) गी इस गल्ला दा लाम्मा देने गी ए बुझारत वनाई लैत्ती :—

"दक्खन देसा बदली चढ़ी ऐ
भाड़ें देसें बरसना;
उच्चै उच्चै बरी गई ते

नीमा रेई गेया सक्खना ।
ए बुझारत लक्खू आक्खी
पक्खो गी तुसें दस्सना ।।

कवि लक्खू नै शुरू-शुरू च ते ए उल्टियां-सिद्धयां बुझारतां अपनी घरै आली गी हसने ते अपने आपा गी ओदी नजरें च चतुर-स्याना सिद्ध करने गितै गै लिखियां, पर बाद च इस चाली दिएं बुझारतें गैं उसी इक सोहगा-सरोखड़ कवि वनाई दित्ता ते ओ अनपढ़ होइऐ बी बड्डे पढ़ाकू पण्ड़ते दे बी अपने सहज तर्क-व्रतर्क कन्नै कन्न कतरन लगी पेया । इस दा परमाण लक्खू दी व्रजभाषा च लिखी ए बुझारत ऐ :—

'तीन नन षट चरन
दो मुख जीभा एक ।
भृगुसुत नारी बचन कहैं
अरु लक्खू कहै बबेक ।।'

अर्थ :—'शुक्कर तारा ते ओदा बाहन डड्डू' । शुक्करै दी इक अक्ख ते डडुआं दियां दो अक्खां मिलियै त्रैत्र (तीन नैन) होई गे ते इस्सै चाली दौन्ने दे दो ते चार पैरां रलिए (षट चरन) छे होई गे । मूह ते दौने दे दो गै होङण, पर जीभ इस करी इक होग, की जे डडुआं दी जीभ नईं होन्दी । रेहया (भृगुसुत नारी वचन कहैं) तां जनानियां शुक्कर तारे दे चढ़ने-डुब्बने दा बचार करदियां गै न । ए बुझारत पढ़ियै कोई बी आक्खी सकदा ऐ जे लक्खू इक स्याना कवि हा, जेढ़ा पढ़े-लिखे दा पण्डित ते नईं, पर गुढ़े दा जरूर हा ।

कवि लक्खू दा जीवन वृत्त किन्ना सच्च ऐ ? किश आक्खेया नईं जाई सकदा, की जे इस दा कोई लिखित प्रमाण नईं, पर ए रोचक जरूर ऐ ते इस्सै करी इक जवानो-जवानी चली औने आली लोक कत्थै आंगर पीढ़ी दर पीढ़ी समलोए दा रेहया । इस जीवन वृत्तै गी रोचक बनाने च सुनानै आलें दे पासेया किश बाद्धा-घाट्टा होई सकदा ऐ, पर इस बाद्धे-घाट्टे दा कवि दी कृतियें उप्पर कोई फर्क नईं पौन्दा । उन्दा इक अपना गै टकोहदा मुल्ल ऐ, जेढ़ा शैल सुलझे दे भाव विचारे ते गिन्तरी च मतियां होने करी डोगरी कवि दत्तू, गंगा राम ते राम घनै दे इक-इक गीतै [illegible] कुसै [illegible]

बी घट्ट नईं। सच्ची गल्ल ते ए जे जेढ़ा थार हिन्दी साहित्य च कबीर खुसरो दा ऐ, उस थमा बद्ध गै डोगरी साहित्य च कवि लक्खू दा ऐ।

जन्म

कवि लक्खू दे जन्मे बारे कोई लिखत परमाण ते नईं मिली सकेया, पर मुट्टे-स्हाबे त्रै पीढ़ियां पिच्छै, राज गजराजदेव दै बेल्लै, यानी अठारवीं सदी दे अखीरी बरै च कबि लक्खू दा जन्म मन्नेया जाई सकदा ऐ; की जे मिस्त्री घसीट्टू राम दे दादा काका राम (जिन्दा लक्खू ताया लगदा हा) मिस्त्री होन्दे आखने मताबक सन् १८९० च नव्वें बरें थमा किश बद्ध गै आयु दे होइयै गुज़रे हे। इस चाली काका राम होन्दा जन्म सन् १८०० सौ दै लग-भग होएया होना ते कवि लक्खू, जेड़ा इन्दा ताया लगदा हा, जरूरी गल्ल ए जे इन्दे थमा बडेरा गै होना ऐ। सै जे अस लक्खू गी बीह-पञ्जी बरे बड्डा मन्नी लैचै तां इस स्हाबे ओ जन्म सन् १७७५-८० दै आलै-दुआलै गै होया होना। कवि लक्खू दा काल कदूं होएया? इतदा कोई पता तईं लग्गी सकेया पर इन्ना जरूर पता लग्गा जे ओ बे-लुअद्धा गै गुजरेया हा।

मिस्त्री घसीट्टू राम होन्दा कवि लक्खू कन्नै साक-सरबन्ध इस चाली बनदा ऐ :—

खुरसी नामा

रचनां
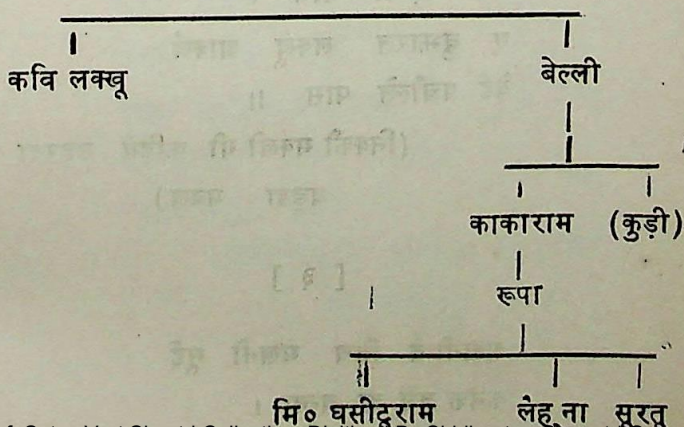
कवि लक्खू दियां कुल मलाइऐ ए अट्ठ बुझारतां जिन्दे च दो ब्रज-भाषा बिच लिखी दियां न—ते दो कवितां गैं मिगी मिली सकियां न :—

बुझारतां

[१]

टोम्बे दै बिच टोम्बा बड़ेया
जाई टोम्बे गी फड़दा ।
ए बुझारत लक्खू आक्खै
आरन रम्बे घड़दा ॥
(पानियां दे गत्तै च डडुआं पिच्छे
लग्गे दा इक सप्प)

[२]

ज़ड्ड़े आले गी फड्ङे आला
लेई चढ़ेया गास ।
ए बुझारत लक्खू आक्खै
बेई पचौल्ले पास ॥
(निक्की मक्खी गी फड़ियै उडरदा
बड्डा मक्ख)

[३]

अखनी दै बिच मखनी सूई
कनक जमें दा बन्ना ।

ए बुझारत लक्खू आक्खी
चूपदा आवै गन्ना ॥
(कमान्दै च लाए दे आलड़े बिच
अण्डे दिन्दी इक पिद्दी)

[४]

जीन्दे हे तां घा चुगीन्दे
मोए खचूरा खन्दे ।
ए बुझारत लक्खू आक्खी
पक्खो-कुल्ले गी जन्दें ॥
(खचूरें उप्पर सुखाने गितै टंगी
दियां डंगरें दियां खल्लां)

[५]

दक्खन देसा बदली चढ़ी ऐ
प्हाड़ें देसैं बरसना;
उच्चै उच्चै बरी गेया ते
नीमा रेह्‌ई गेया सक्खना ।
ए बुझारत लक्खू आक्खी
पक्खों गी तुसें दस्सना ॥
(अद्ध-चुपड़ें पठोरें दा मित्रै
गी लाम्मा)

[६]

जल बन्नै, तन बस्स करै
थात्ती राहन्दे लोक ।
चम्पा असें गी भेजना
जे नगर तुसाढ़ै होग ॥
तन हारै, मन-रूप हारै
किश कलंक बी ला ।
लक्खू चम्पा चीज बुरी
होर सुगात मंगा ॥

(अफीम ते ओदे गुण - दोष)

[७]

तीन नैन षट चरन
दो मुख जीभा एक ।
भृगुसुत नारी बचन कहें
लक्खू कहै बबेक ॥

(शुक्कर ते ओदा बाह्‌न डड्डू)

[८]

आठ चरन, नौ लोहिनी
दो पूछल सिर चार ।
लक्खू सभा में देखेया
पण्डित करे बिचार ॥

(शिव, पारवती, नन्दी ते सप्प)

कवितां

(१)

लाहोर जेलम गुजरात कश्मीर काबल,
जम्मू कांगड़ा झंग मलतान दिक्खे ।
पुन्छ करगल गिलगित्त ते कोट-मिट्ठा,
यारकन्द गजनी कुराशान दिक्खे ।
लक्खू बलख-बुखारा बी दिक्खेया पर
बाज सज्जनें सारे बरान दिक्खे ॥
दाख ङूर बटैन्क ते बैर बेइयां
स्यौ नाख़ चोटे रसेदार दिक्खे ।
आड़ू - दाडू खुमान्नी ते खोड़ मेवा,
फल केलें दे बेशमार दिक्खे ।
लक्खू बागें दी सैल बी कीतियै पर,
बाज सज्जने सारे जुआड़ दिच्खे ॥
किंग घुंगरू सारंग सतार ढोलक,
बीन मुरली ते कड़ियें दे ताल दिक्खे ।
ढोल डमरू तपला मृदंग मैंन्ना
शैने कैंसियां कन्नै खड़ताल दिक्खे ।
लक्खू दिक्खे न साज ते ओड़कां पर,
बाज सज्जने सारे बेताल दिक्खे ॥

(२)

इक दाह्या दाह्या,
बाल बरेसा आएया ।

दो दाह्ए बीह्,
मंग्गैं खण्ड - घी ।

त्रै दाह्ए त्रीह्,
गज्जैं जियां सीह् ।

चार दाह्ए चाली,
होआ पक्का हाली ।

पञ्ज दाह्ए पंञ्जा,
पुच्छै तीर्थे दे राह् ।

छे दाह्ए सट्ट,
अन्दर डाई खट्ट ।

सत्त दाह्ए सत्तर,
जीभा पेइया पत्तर ।

अट्ठ दाह्ए अस्सी
गल्लां देऐ दस्सी ।

नौ दाह्ए नब्बे,
दन्द करीड़ा चब्बै ।

दस दाह्ए सौ
लक्खू रेया नी भौ ।

—गंगादत्त शास्त्री विनोद'

डोगरा राजवंश और संस्कृत साहित्य की परम्परा

डुग्गर धरती वीरता की वपौती साथ संजोए हुए साहित्य परम्परा के उज्जवल दीपक को आंचल में लेकर सदियों से प्रकाश का वितरण करती चली आ रही है। साहित्य की दृष्टि से इसका अतीत अतीव स्वर्णमय है। विशेषकर यह भूभाग संस्कृत साहित्य का केन्द्र रहा है ! स्थानीय संस्कृत साहित्यकारों की परम्परा के सन्दर्भ में खोज करने पर हमें प्रतीत होता है कि जम्बू-पति महाराज ब्रजराज देव के युग में यह परम्परा-प्रवाह अतिप्रबल होकर म० रणवीर सिंह के युग सम्बन्धी स० साहित्य परम्परा के उत्तेजित प्रवाह से मिल जाता है। म० ब्रजराज देव के पूर्व की यह ऐतिहासिक कड़ी उपलब्ध नहीं होती किन्तु उस युग से सम्बन्धित सं० साहित्य की यह ऐतिहासिक शृंखला रणवीर सिंह युग से मोड़ खाती हुई अन्य जम्बू शासकों के युगों को भी अपने में संजोकर वर्तमान युग तक पहुंचती हैं। महाराज ब्रजराज देव का समय सम्वत् १८०० से प्रारम्भ होकर १८४३ तक चलता है। जैसा कि उसके दरवारी कवि दत्तू के संस्कृत छन्दों में लिखे हुए अपने कृष्ण महिम्न स्तोत्र में स्पष्ट लिखा है—

नाग दग्गज भू संज्ञे (१८२८) वर्षे विक्रम भूपतौ ।
स्तवोऽयं कृष्ण जन्माहे दत्तोनानभिपूर्णताम् ॥

म० ब्रजराज देव संस्कृत के महान अनुरागी थे। जम्मू से निराश होकर विलावर में जा बसे परन्तु वहां भी संस्कृत के प्रेम का संवरण नहीं कर पाए और दत्तू तथा गंगाराम जैसे संस्कृत कवियों को उन्होंने यहीं पर रहते हुए अपने दरवार में प्रश्रय दिया। म० ब्रजराज देव जम्मू के प्रतापी राजा रणजीत देव के पुत्र थे किन्तु रणजीत देव अपने छोटे पुत्र दलेल सिंह को अधिक चाहते थे। राजदरबार में पिता की अपने प्रति उपेक्षा देख कर ब्रजराज रूठ कर मनावर में आकर रहने लगे। इधर दलेल सिंह राज्य के सर्वेसर्वा रहे परन्तु रणजीत देव के अन्तिम दिनों में जसरोटे का राजा स्वेच्छाचारी बन बैठा! रणजीत देव ने उसका दमन करने के लिए दलेल सिंह को अखनूर राज्य के कुछ अधिकारियों के साथ जसरोटे की ओर भेजा। वहीं पर अखनूरियों के साथ उसकी टक्कर हुई और अन्त में किसी दूसरे समय अखनूरियों ने दलेल सिंह का वध कर दिया, जिस से रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात ब्रजराज मनावर से आकर जम्मू की राजगद्दी पर आसीन हुए। अपने पिछले लम्बे प्रवास के समय ब्रजराज देव ने संस्कृत साहित्य की जो सेवा की, उसका पूर्ण विवरण तो नहीं मिलता किन्तु उपर्युक्त दो संस्कृत कवियों को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने इस परम्परा को अग्रसर किया! संस्कृत के ये दोनों कवि दत्तू तथा गंगाराम उस युग के एक प्रसिद्ध संस्कृत साहित्यकार थे। उनकी कई एक रचनाएं भी होंगी जो अनुपलब्ध हैं किन्तु दत्तू रचित "कृष्ण महिम्न स्तोत्र" तथा गंगाराम रचित मामल्लाष्टक अब भी विद्याविलास प्रेस से छपे हुए यत्र तत्र मिल जाते हैं। श्री कृष्ण महिम्न स्तोत्र पर कवि ने स्वयं संस्कृत टीका भी लिखी है, जो उनके टीका कारण चातुर्य का परिचय देती है। श्लोक सबके सब शिखरिणी छन्द में लिखे गये हैं और इनकी संख्या ३२ है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कवि की दो और फुटकल संस्कृत कविताएं मिलती हैं जो प्रातः सायं कृत्य से सम्बन्धित हैं ये दानों कविताएं भी कृष्णाष्टक के अन्त में पृथक रूप से छाप दी गई थीं।

श्री गंगाराम रचित मामल्लाष्टक के आठ श्लोक म० रणवीर सिंह के दरबारी विद्वान् एवं हिन्दी कवि श्री नीलकण्ठ रचित "कीर्ति विलास" में उद्धृत किये गए हैं! इस समय इन दोनों संस्कृत कवियों की केवलमात्र उपर्युक्त रचनाएं ही उपलब्ध हैं वे भी लगभग १०० वर्ष पुराने प्रकाशन में छिपी पड़ी हैं। किन्तु इन रचनाओं द्वारा ही हम डुग्गर धरती की सं० ऐतिहासिक परम्परा की एक शृंखला [illegible] सकते हैं। इसलिए प्रस्तुत

इतिहास के लिए वे रचनाएं और इनके रचयिता एक विशेष कड़ी बन जाते हैं। ब्रजराज के पिता रणजीत देव एक कुशल शासक, सुप्रबन्धक तथा विद्याव्यसनी थे ! उनके शासन-चातुर्य के कारण जम्मू प्रदेश धन-धान्य सम्पन्न होकर उन्नति की चोटी पर जा पहुंचा तथा इसकी सीमा लाहौर के शाहदरे के साथ जा लगी ! राजा ब्रजराज देव ने भी अपने राज्यकाल में इस धरती का गौरव पूर्ववत् कायम रखा किन्तु पंजाब के महाराजा रणजीत-सिंह के पिता महान् सिंह ने उसी समय जम्मू पर आक्रमण कर दिया ! ब्रजराज देवने स्वल्प साधनों के रहते हुए भी बहादुरी से सामना किया और अन्त तक लड़कर सम्वत् १८४३ में युद्ध क्षेत्र में वीरगति प्राप्त की ! इस समय जम्मू के आकाश पर लूट-पाट और अग्निदाह का तूफान उमड़ा हुआ था, जम्मू पूर्ण रूप से उजड़ चुका था । ऐसी राजनैतिक उथल-पुथल की परिस्थिति की लपेट में आकर ब्रजराज देव द्वारा प्रज्जवलित सं० साहित्य का दीपक कुछ देर के लिए बुझने के स्थान पर धुंधला अवश्य पड़ गया, जो म० गुलाब सिंह के युग तक धीमा प्रकाश देकर अब पुनः पूर्ण प्रकाश की पहली अंगड़ाई लेने चला।

म० व्रजराज देव का बालक अभी दस वर्षों का था जब वह स्वर्ग सिधारे थे। अतः जसरोटे का राजा जैत सिंह जो दलेल सिंह का लड़का था अर्थात् व्रजराज देव का भतीजा, को बुला कर जम्मू की गद्दी पर बैठाया गया और सूरत सिंह के लड़के मीयां मोटा को राज्य प्रबन्धक नियुक्त किया गया। इस दौर में संस्कृत साहित्य का धुंधला दीपक तो जलता रहा किन्तु उसमें अभी उत्तेजना नहीं भरी थी।

सूरत सिंह के चार लड़कों में एक जोरावर सिंह था, इसी के लड़के किशोर सिंह के घर महाप्रतापी गुलाब सिंह का जन्म हुआ। सूरत सिंह ध्रुवदेव का लड़का तथा रणजीत देव का भाई था।

म० जैत सिंह भी संस्कृत के बड़े प्रेमी थे। किन्तु इन का पूर्ण जावन भी युद्ध में ही व्यतीत हुआ। कारण कि लाहौर से बार-बार आक्रमण हो रहे थे, जिनका सामना व्रजराज देव ने जीवन के अन्तिम क्षणों तक वीरता पूर्वक किया। युद्ध की यही विरासत जैत सिंह को भी मिली किन्तु एक डोगरा शासक अपने खून की अन्तिम बूंद रहते तक लड़ता रहता है, जैत सिंह ने भी इस व्रत का पालन किया। युद्ध की इस भूमिका में

संस्कृत साहित्य के उत्थान को बहुत चोट पहुंची किन्तु यह दीपक इन तूफानों की चुनौतियों में भी जलता ही रहा। म० जैत सिंह के ससय इस धरती पर ऐसे संस्कृत के चमत्कारी विद्वान पैदा हुए जिन्होंने अपने प्रगाढ़ पाण्डित्य द्वारा न केवल डुग्गर को वल्कि काशी को भी चमत्कृत कर दिया।

ये थे पं० काकाराम शास्त्री जो वेद-वेदाङ्ग दर्शन पुराण व्याकरण आदि विषयों के पूर्ण पण्डित होकर काशी गए। वहां के प्रसिद्ध विद्वान शेखर के टीकाकर भैरव मिश्र तथा गौड़पाद जैसे दिग्गज विद्वानों से शास्त्रार्थ करके उन्हें चमत्कृत कर डाला। काकाराम शास्त्री जी ने इतना बड़ा पाण्डित्य इसी डुग्गर धरती में रह कर प्राप्त किया था। इस से स्पष्ट है कि उस युग में यहां का संस्कृत पठन-पाठन स्तर काशी के स्तर से कम नहीं होगा और यह स्तर राजाश्रय से पोषण पाकर ही इतनी बुलन्दी पर पहुंचा होगा। पं० काकाराम शास्त्री को विद्वत्ता के कारण काशी की पण्डित मण्डली में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। अन्त में ८० वर्षों की अवस्था में इन्होंने वहां के मणिकरणिका घाट पर अपना शरीर छोड़ा। इनकी शिष्य परम्परा आज तक भी वहां चलती आ रही है। इनका समय सम्वत् १८२३ से १९०७ के लगभग पड़ता है। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

जम्मू प्रदेश परम्परा से संस्कृत का गढ़ रहा है, इस प्ररेश में संस्कृत के अनेक ग्रन्थ लिखे गए थे, किन्तु कोई इतिहास न होने के कारण आज हमें इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई। केवल एक ही ऐसा पहलु है, जिसके द्वारा प्राक् गुलाब सिंह युग के संस्कृत क्षेत्र की समृद्धि के संबंध में हमें कुछ उन्मेष मिलते हैं। वह पहलू स्थानीय संस्कृत हस्त-लिखित लेखों का एक बड़ा खासा भण्डार, जिसे महाराजा रणबीर सिंह ने उपलब्ध कर रघुनाथ मन्दिर के पुस्तकालय में सुरक्षित रखा था। किसी स्थान पर संस्कृत हस्तलेखों की इतनी बड़ी राशि का मिलना ही उस स्थान की संस्कृत परम्परा की समृद्धि का सूचक होता है। अन्य था वे हस्तलेख कैसे और कहां से आ पाते ? रणवीर सिंह का युग संस्कृत साहित्य के लिए इस राज्य में स्वर्णयुग अवश्य था इसलिए कि इसी युग में महाराज के प्रयत्नों द्वारा संस्कृत का बहुत सा भाग प्रकाशित हुआ, देश-देशान्तरों से बड़े बड़े विद्वान जम्मू आकर राजकीय छत्रछाया में रहकर सरस्वती की उपासना करने लगे। प्राचीन हस्तलेखों का संग्रह भी हुआ [illegible] संगृहीत हस्त लेखों के निर्माण

में इसके पीछे कितनी शताब्दियां बीती होंगी और कितने भिन्न-भिन्न राजाओं ने इस कार्य में प्रोत्साहन दिये होंगे । यह बात स्वयं समझ लेने की है । दूसरा तथ्य यह भी है कि म० रणवीरसिंह का संस्कृत के प्रति अगाध अनुराग कुछ तो उनकी व्यक्तिगत विशेषता थी और कुछ उन्हें अपने पूर्वजों की विरासत के रूप में मिला था, जो अपना संस्कार लेकर उनकी बाल्यावस्था में ही उनके साथ जुड़ गया !

डुग्गर प्रदेश का हस्तलेख-युग डुग्गर राज वंशावलि के साथ-साथ चलता आया है । म० गुलाब सिंह के युग तक यह निर्माण युग समाप्तप्राय होकर ढेरों ग्रन्थ राशि तैयार कर चुका था । इस लिखित साहित्य के विषय निम्नलिखित हैं :—

वेद सूत्र, उपनिषद्, वेदाङ्ग, व्याकरण, कोश, छन्द, सगीत, काव्य, नाटक, आख्यायिका, अर्थशास्त्र दर्शन, ज्योतिष चिकित्सा, जैन दर्शन आदि । आज इन्हीं विषयों में लिखे गये हजारों हस्तलेख रघुनाथ पुस्तकालय में सुरक्षित हैं । इनमें कुछ ऐसे ग्रन्थ भी हैं, जो संस्कृत साहित्य की अप्रकाशित अपूल्य सम्पत्ति हैं । उनमें से कुछेक के नाम यहीं गिना देना आवश्यक होगा :

रघुनाथ गुणोदय महाकाव्य धर्मशास्त्र संग्रह, नीति कल्पलता पूजा रहस्य, वीर रत्न शेखर 'संक्षिप्ताह्निक' पद्धति, धर्म निर्णय ब्रह्मसूत्र वृतिसार, एकाक्षर निघण्टु, कल्प सागर, रणवीर चिकित्सा प्रकाश

उपर्युक्त हस्त लेखों के अन्तिम कुछ ग्रन्थ जो 'रणवीर' शब्द के नामकरण को लिए हुए हैं, बे रणवीर सिंह ने विद्वन्मण्डली द्वारा रचाये थे, जिनके प्रकाशन की व्यवस्था उस समय के विद्या विलास प्रेस में किसी कारणवश नहीं हो पाई होगी किन्तु कई एक प्रकाशित हो गए थे । शेष हस्तलेख रणवीर सिंह के युग से अति प्राचीन हैं । इन संगृहीत हस्तलेखों का पूर्ण विवरण मि० स्ताईन की कैटेलाग में प्रस्तुत किया गया है । किन्तु दुर्भाग्य वश यह कैटेलाग भी अब *(Out of Print)* होने के कारण अप्राप्य है । रघुनाथ पुस्तकालय में इसकी एक प्रति है, जो जीर्ण-शीर्ण दशा में मिलती है, धर्मार्थ ट्रस्ट को चाहिये कि वह इसे पुनर्मुद्रित करे । यह एक रोचक कैटेलाग है ।

उपर्युक्त जम्बूपति म० व्रजराज देव का युग भी अपने समय का संस्कृत भाषा के लिए स्वर्णयुग ही था। दत्तू कवि के एक श्लोक से विदित होता है कि महाराज को प्रसन्न करने के लिए संस्कृत कवि अमना कवि कौतुक दरबार में प्रदर्शित करते हुए उनकी कृपा का प्रसाद पाने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार राजाश्रय से संस्कृत कविता भी पनप रही थी।

श्लोक इस प्रकार है :—

आर्जवादि गुणैर्युक्ता सद्वृत्ति स्स पराक्रमा।
सतीव कवितेयं मे व्रजराज मुदेऽस्तु वः॥

इसी समन लगभग सं० १८११ में बिलावर के एक गांव सुकराल में देवी प्रकट हुई। उसके स्थान की प्रतिष्ठा म० व्रजराज ने धूम धाम से की जिस में कवि गंगाराम दत्तू तथा उस युग के प्रद्धि कर्मकाण्डी, तांत्रिक एव संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित श्री सूर्यनारायण उपस्थित थे। कुल पण्डित होने के नाते आचार्य सूर्य नारायण ने ही मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई थी। यह धार्मिक तृष्य भी उस युग की संस्कृतोन्नति का एक संकेत हैं। मूर्ति स्थापित होने के बाद ही गंगारास ने 'मामल्हष्टक' की रचना संस्कृत छन्दों में की, जिस का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। मामल्ह देवी का नाम सुकराल गांव में स्थापित होने के कारण सुकराल देवी पड़ गया, जो आज तक इसी नाम से प्रसिद्ध है।

संस्कृत भाषा के गढ़ मुख्यरूप में भारतीय तीर्थ रहे हैं इन्हीं स्रोतों से निकस कर संस्कृत सरिता की धाराएं समग्र देश में वहती रहीं। प्रयाग, अयोध्या, काशी, मथुरा, हरिद्वार, द्वारका आदि तीर्थ अनादिकाल से संस्कृत के केन्द्र रहे हैं और अब भी हैं। कारण कि संस्कृत विद्वानों तथा मनीषियों को स्वभावत: तीर्थ स्थान की पवित्रता के नाते वहां का निवास अभीष्ट रहता था। इसी कारण श्रुति स्मृतियों तथा पुराणों में तीर्थ स्थानों की महत्ता के विस्तृत विवरण लिखे गए हैं। इन तीर्थों की शृंखला में महाभारत के अनुसार जम्बू प्रदेश भी आ जाता है। इसी कारण यह भूमि विद्वानों और ऋषि-मुनियों का निवास स्थान रही है। महाभारत के वन पर्व (अध्याय ४० श्लोक ८२) के एक श्लोक से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है :—

जम्बू मार्गं समाविश्य देवर्षि पितृ सेवितम्।
अश्वमेधमवाप्नोति सर्वं काम समन्वित:॥

जम्बू मार्ग में प्रवेश करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हुए सब कामनाएं प्राप्त करता है। यह जम्बू मार्ग देवर्षि और पितरों से सेवित है। इस उद्धरण द्वारा जम्बू मार्ग देवर्षि और पितरों का निवास स्थान होने के कारण संस्कृत का केन्द्र स्वयं सिद्ध हो जाता है। इस जम्बू मार्ग का निर्देश निरूक्त के प्रसिद्ध प्राचीन टीकाकार आचार्य यास्क ने निरूक्त टीका की अध्याय समाप्ति पर किया है। इति श्री जम्बू मार्गाश्रम वासिनो भगवद् दुर्गाचार्यस्य कृतौ ऋग्वर्थायां निरुक्त वृत्तौ। आचार्य दुर्गाचार्य जो लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुए थे, अपना परिचय जम्बू मार्ग-निवासी के रूप में देते हैं। उस समय अर्थात सम्वत १४५० के आस-पास मालदेव जम्बू की गद्दी पर विराजमान था। उसी समय दिल्ली सिंहासन पर कुछ काल के लिए तैमूर बैठा हुआ था। राजा मालदेव की वीरता की कहानियां प्रसिद्ध हैं। यह बड़े बड़े वृक्षों को हाथों हाथ उखाड़ फैंकते थे और बड़ी बड़ी चट्टानों को उठा कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। आचार्य दुर्गाचार्य इन्हीं के समकालीन या कुछ आगे-पीछे समय में रहे होंगे। दुर्गाचार्य का धुरन्धर पाण्डित्य और उसका अखिल भारतीय स्तर पर कीर्ति कलाप जम्बू मार्ग की ही देन समझनी चाहिए। मालदेव या उसके पुत्र हमीर किसी के भी राज्य काल में दुर्गाचार्य रहें हों, किन्तु उन्हें राजआश्रय या राज सम्मान अवश्य मिला होगा इसलिए कि प्राचीन संस्कृत साहित्श सर्वदा राजदरवारों के पोषण में रहकर ही विकसित होता रहा है। यहां की प्राचीन राज परम्परा ने दुर्गाचार्य जैसे अन्य संस्कृत महारथि भी उत्पन्न किये होंगे किन्तु दुर्भाग्यवश आज उनके सम्बन्ध में हमें कुछ संकेत प्राप्त नहीं हैं।

हां तो राजा व्रजराज देव के युग को पार कर जब हम आगे चलते हैं तो राजा जैत सिंह का युग दृष्टिगोचर होता है। यह स्वल्पकालीन युग संस्कृत प्रचार की दृष्टि से विशेष नहीं मालूम पड़ता क्योंकि इस युग में 'मियां डीडो' का आतंक मचा हुआ था और उसे दबाने के लिये जम्मू सिंहासन परेशान था। गुलाब सिंह जो उस समय म० रणजीत सिंह के दरवार में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित थे, ने जम्मू आकर इस परेशानी को मिटाया और संस्कृत केलिए मार्ग साफ किया।

श्री गुलाब सिंह जी ... महाराजा बने, उन्होंने ... जम्मू कश्मीर

लद्दाख, तिब्बत आदि के समन्वय से एक वृहत् राज्य की स्थापना की यह पृथक ऐतिहासिक विषय है। सम्वत् १८६५ में महान सिंह ने जम्मू पर पहली चढ़ाई की, जम्मू के राजा जैत सिंह ने गुमट ढक्की पर सेना संगठन किया और गेट कुछ देर के लिए बन्द कर दिया चौदह वर्ष के बालक ने सेना की टुकड़ी साथ लेकर बिशाल शत्रु समूह को वीरता के साथ तवी के जंगलों के उस पार खदेड़ दिया। वीरता के इस अद्भुत चमत्कार को सुन कर म० रणजीत सिंह ने गुलाब सिंह को लाहौर दरवार में बुला लिया। तभी से गुलाब सिह ने अपने शौर्य और राजनीतिज्ञता के बल पर उन्नति प्रारम्भ की। निरन्तर युद्धों में विजय पाकर गुलाब सिंह ने लाहौर दरवार को अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। सन् १८२२ ई० में उसे जम्मू का राज्य मिल गया किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं। जम्मूपति बनकर भी उसे रणजीत सिंह की आज्ञानुसार युद्धों में जाना पड़ता था। इधर जम्मू का राज्य पाकर गुलाब सिंह ने इस प्रान्त के छोटे-मोटे राज्य जीत कर अपने राज्य की सीमा वनिहाल पर्वत तक पहुंचा दी तत्पश्चात् लद्दाख और कुछ भाग तिब्वत का भी जीत लिया। म० रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद कुछ वर्षों के अनन्तर जब पंजाब प्रान्त में अराजिकता फैल गई तो गुलाब सिंह ने ७५ लाख रुपये देकर अंग्रेज़ों से कश्मीर भी ले लिया। इस प्रकार जम्मू कश्मीर लद्दाख तिब्बत का समन्वय करते हुए गुलाव सिंह ने वृहत राज्य की रचना की। अंग्रेजों ने उसे स्वतन्त्र राजा सन् १८४६ में ही घोषित कर दिया था।

इन बारह वर्षों के राज्यकाल में अर्थात सन् १८४६ से १८५८ तक गुलाब सिंह का जीवन युद्धों में ही बीतने के कारण उसे संस्कृत उन्नति के लिए समय नहीं मिला किन्तु रणवीर सिंह के संस्कृत-स्वर्णयुग की मूल पृष्ठ भूमि के प्रतिष्ठापक म० गुलाब सिंह थे, इसमें सन्देह नहीं।

दृढ़ धार्मिक होने के नाते उन्होंने उत्तर वाहिनी में गदाधर का वृहत मन्दिर सम्वत १८५८ में बनवाया जिसके साथ एक संस्कृत पाठशाला, गौशाला तथा सदावर्त की भी स्थापना की। संस्कृत की दिशा में पुनः नये सिरे से यह आयोजन अपने ढंग का प्रथम था। इसी प्रकार उत्तर-वाहिनी के आस पास अविमुक्तेश्वर, रणवीरेश्वर आदि कई मन्दिरों का निर्माण किया गया। गदाधर संस्कृत पाठशाला में ... वेद, व्याकरण, ज्योतिष तथा

षट् दर्शनों का अध्ययन कार्य होता था, जिसके लिए भारत भर के चुने हुए संस्कृत विद्वान बुलाए गए। डोगरा भूमि के गण्यमान्य विद्वानों को भी इस सस्था में नियुक्त किया गया। ५०० छात्रों के लिए भोजन, अध्ययन तथा आवास का निश्शुल्क प्रबन्ध किया गया। म० गुलाब सिंह के इस प्रतिष्ठान ने उत्तर वाहिनी को संस्कृत भाषा की केन्द्र भूमि बना यिया। इस आयोजन के फलस्वरूप संस्कृत का देश भर में जिस विशालता से प्रचार हुआ उसका अनुमान स्वयं किया जा सकता हैं। इसी प्रकार म० गुलाब सिंह ने जम्मू के प्रसिद्ध रघुनाथ मन्दिर की निर्माण शिला लगभग सन १८५५ में रखी थी। उसके साथ, बृहत संस्कृत विद्यालय, छात्रावास, छात्रों के लिए भोजन व्यवस्था, सदावर्त आदि की योजना भी साथ जोड़ दी थी, जिसे रणवीर सिंह ने अपने राज्य काल में परिपूर्ण किया।

महाराजा रणवीर सिंह

राज्य में संस्कृत का स्वर्ण-काल स्थापित करने वाले मुख्य सूत्रधार म० रणवीर सिंह का जन्म सन १८२६ में जम्मू के रामगढ़ स्थान पर हुआ था। म० गुलाब सिंह के छोटे भाई सुचेत सिंह ने इन्हें गोद लिया था। इसी कारण इनका बचपन उन्हीं की जगीर में बीता। सन १८४३ में इनका प्रथम विवाह हुआ था। म० गुलाव सिह के महल में विद्वत्ता और धर्मिक कृत्य दोनों को प्रश्रय मिला हुआ था। इसी कारण दरबारी विद्वानों का का प्रभाव तथा संस्कार इन पर बचपन में ही पड़ा होगा। १३ वर्षों की उम्र तक राजा सुचेत सिंह के पास रह कर अब रणवीर सिंह अपने पिता म० गुलाब सिंह के पास आ गए। १४ वर्ष की अवस्था में अर्थात सन् १८४५ में उनका विवाह हो गया। म० रणवीर सिंह का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। सर रिचर्ड अपनी डायरी में लिखते हैं कि रणवीर सिंह के नक्श अति सुन्दर थे। विशाल मस्तक, सीधी नाक, छोटी स्याह तथा घुंघराली दाढ़ी गोटेदार पगड़ी माथे पर तिलक, गले में सुन्दर माला, सफेद पौशाक और छ.ती पर शासक तमगा। यह था उनका स्वरूप।

गद्दी पर बैठने पर इन्हें अपने विरुद्ध एक बड़ी भारी साजिश का भी सामना करना पड़ा जो बाद में कुचल दी गई। सर लारेन्स, फ्रेडरिक केरी आदि अंग्रेज अधिकारियों के विचार में रणवीर सिंह के प्रति बड़े श्रद्धापूर्ण

रहे हैं इन लोगों ने समय समय पर म० रणवी सिंह के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त किया था।

जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है कि म० गुलाब सिंह के घरेलू जीवन में संस्कृत पाण्डित्य और सनातन धार्मिकता को पूरा प्रश्रय मिला हुआ था। महलों में आस्तिकता कर्मकाण्ड और जप, तप-व्रत आदि को भी पूर्ण प्रतिष्ठा मिली हुई थी। अगर विज्ञान से जीवन को सभ्यता मिलती है तो धर्म से संस्कृति। संस्कृति का उद्गम धर्म होने के कारण धार्मिक लोग संस्कृति प्रधान (Cultured) होते हैं। यह संस्कृति डोगरा शासकों की वंश-परम्परा रही है। डुग्गर जाति को वैदिक एवं पौराणिक धार्मिकता की देन अति प्राचीन है। तलवार और लेखनी का अपूर्व गठजोड़ इस जाति में परम्परा से पाया जाता रहा है। इसी कारण रणवीर सिंह को महलों के इस धार्मिक वातावरण ने अपनी परम्परा प्रदान की।

इन्हें राजकीय विद्वानों से संस्कृत साहित्य के अनुराग संस्कार मिला। जहां म० गुलाब सिंह युद्धों में उलझे हुए थे, वहां राजकुमार रणवीर सिंह अपना राजकुमारसुलभ ऐश्वर्य एवं कोमलता का जीवन महलों में बिता रहे थे। जीवन की इस एकान्त निष्ठा तथा एकाग्रता में इन्होंने उन पवित्र संस्कारों को आत्मसात कर लिया था, जो उनकी राजकीय स्थिति में आकर उभर उठा।

सन १८५७ में राज्य की बागडोर संभालते ही सर्व प्रथम म० रणवीर सिंह को संस्कृत के प्रचार की धुन लगी और थोड़े ही वर्षों में उन्होंने संस्कृत के क्षेत्र में अपने राज्य को दूसरी काशी बना दिया।

इस स्थिति पर मुग्ध होकर उस युग के प्रसिद्ध संस्कृत कवि चण्डीदास ने इस श्लोक में अपने उद्गार प्रकट किये थे :—

विद्वद्भिः सर्वदेशीयैः सर्वशास्त्रविशारदैः ।
कृता काशीपुरी येन श्री जम्बू नगरोपमा ॥

सब देशों से सर्वशास्त्र निष्णात विद्वानों के द्वारा उन्होंने काशी को भी जम्मू नगर की उपमा के योग्य बना दिया। इस अर्थ में काशी की अपेक्षा जम्मू को ऊंचा किया गया है।

म० रणवीर सिंह ने संस्कृत विकास तथा प्रचार के लिए मुख्यरूप से चार पहलू निश्चत किए थे :—

१. पुस्तकालयों में मुद्रित पुस्तकों के साथ प्राचीन हस्तलेखों के भण्डार स्थापित किये गए ।

२. मन्दिरों की स्थापना, जिन में संस्कृत का पठन-पाठन होता था और पाठशालायें स्थापित की जाती थीं ।

३. संस्कृत पुस्तकों का प्रकाशन जिसके अन्तगर्त स्थानीय विद्वत् मण्डलों द्वारा रचे नए-नए संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन होता था ।

४. भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से संस्कृत के प्रकाण्ड पडितों को राज्य में बुला कर सम्मान पूर्वक जीविका प्रदान की जाती थी । इन चार पहलुओं को कार्य क्रम में परिणत करते हुए महाराजा ने सचमुच जम्मू को दूसरी काशी बना डाला ।

१. पाठशालाएं :—इस कार्यक्रम के अन्तगर्त सन् १८५८ में रघुनाथ मन्दिर की परिपूर्णता के साथ प्रतिष्ठा हुई और तभी श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की गई ! इस प्रकार संस्कृत के प्रचारार्थ यह आयोजन सम्पन्न कर ५०० विद्यार्थियों के लिए निवास और भोजन की भी व्यवस्था साथ जोड़ दी ! इसी स्तर पर उत्तर-वाहिणी संस्कृत विद्यालय का भी नया संगठन किया गया और वहां के छात्रों की संख्या भी ५०० सौ कर दी गई । इन दोनों विद्यालयों में वेद-वेदाङ्ग, व्याकरण, ज्योतिष, चिकित्सा दर्शन आदि विषयों के पृथक विभागीय स्तर पर विद्वानों की नियुक्तियां की गई ! इसके अतिरिक्त राज्य भर में छोटी-छोटी अन्य संस्कृत पाठशालायें भी स्थापित की गईं किन्तु उन सब का मुख्य केन्द्र उपर्युक्त दो महाविद्यालय ही थे ! म० रणवीर सिंह की महारानी बन्द्रहाली ने भी सम्वत् १८४६ में पुराणीमण्डी मन्दिर का निर्माण करवा कर वहां एक संस्कुत पाठशाला स्थापित की, जिसमें ५० विद्यार्थियों के भोजन तथा निवास की व्यवस्था की गई ! यह पाठशाला तब से प्रारम्भ हो कर सन् १९३७ तक चलती रही । इस पाटशाला से अनेकों संस्कृत विद्वान पैदा होकर राज्य भर में भागवत, [illegible] तथा ज्योतिष, कर्म काण्ड

की प्रौढ़-योग्यता द्वारा यश कमाने लगे ! उनमें से प्रसिद्ध पं० हाकिम चन्द्र शास्त्री (सन् १८८२-१९२४) थे ! जिनकी श्रीमद्भागवत में अगाध गति थी। उनके श्री मद्भागवत के सप्ताह पारायण में इतना जादू भरा आकर्षण था, कि श्रोता लोग इनकी सुरीली कण्ठ ध्वनि और श्लोकों की मार्मिक व्याख्या सुनकर सब कुछ भूल जाते थे ! अपने समय में इस साप्ताहिक पारायण क्षेत्र में इनकी बड़ी प्रसिद्धि रही ! इसी प्रकार उपर्युक्त दो बड़े महाविद्यालयों से धुरन्धर विद्वान पैदा होकर देश-विदेशों में इस डुग्गर देश की यश-पताका फहराने लगे ! और आज तक फहरा रहे हैं। हज़ारों विद्वान यहां से निकल कर ऊंचे-ऊंचे स्तरों पर प्रतिष्ठित रहे और अब भी हैं। इस स्तर की तीसरी पाठशाला रणवीर पाठशाला अब लुप्त हो चुकी है। यह रणवीर हाई स्कूल के साथ जोड़ी गई थी ! उत्तर-वाहिनी पाठशाला भी अब लुप्त हो चुकी है ! इस समय केवल रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय पूर्ववत चल रहा है ! युग की गति के अनुसार इसकी स्थिति में भी कुछ परिवर्तन हुआ है !

प्राचीन हस्त लेख

इस समय रघुनाथ पुस्तकालय में लगभग ४५०० प्राचीन हस्तलेख संगृहीत हैं ! जो म० रणवीर सिंह ने बड़े परिश्रम से इकट्ठे कराए थे ! इसके लिये उन्होंने पं० आशानंद को बनारस भेजा और १५०० रुपया खर्च कर सैंकड़ों संस्कृत हस्तलेख वहां से प्राप्त किए। अपने राज्य में भी खोज की गई और सैंकड़ों पाण्डुलिपियां यहां से भी उपलब्ध की गईं ! इसी प्रकार विद्यानाथ पाठक (बनारस) पं० व्यास (पटियाला) पं० रामकृष्ण (जम्मू) गोपालराम (जम्मू) से भी प्रर्याप्त धन देकर संस्कृत हस्तलेख खरीदे गए। तत्-पश्चात् राजस्थान के एक राजा मंगल सिंह ने भी अपना हस्तलेख भण्डार यहीं भेज दिया। इस प्रकार मिलाजुला कर ४५०० के लगभग पाण्डुलिपियों की यह राशि रघुनाथ पुस्तकालय में रखी गई ! इस पुस्तकालय के लिए पं० गनराज की नियुक्ति हुई ! यह संग्रह-कार्य सन् १८६० के लगभग प्रारम्भ होकर १८८३ तक चला ! १८८५ में म० रणवीर सिंह की मृत्यु के बाद मा० प्रताप सिंह गद्दी पर बैठे। इनके राज्यकाल में ही मि० स्ताईन को जम्मू बुलाया गया। उन्होंने सन् १८८९ १८९२ तक इन हस्तलेखों की एक वृहद् सूचि तैयार की ! इसी समय के भीतर पं० राज[illegible] बलभद्र काक, साहिब राम आदि कश्मीरी विद्वानों ने

कश्मीर-घाटी से भी बहुत हस्तलेख प्राप्त करके इस पुस्तकालय को दिए। डा० स्टाइन उस समय लाहौर युनिवर्सिटी के ओरियण्टल कालेज के प्रिन्सिपल थे! इस कार्य के लिए उन्हें गोविन्द कौल तथा सहज भट्ट नामक दो सहायक दिए गए तथा छः प्रतिलिपिकार! इस संग्रह में अमूल्य संस्कृत हस्तलेख हैं जो अभी तक अप्रकाशित पड़े हैं। इनमें से एक प्राचीन हस्तलेख डा० ब्लुमफील्ड के हाथ चढ़ गया था, जिसकी फोटो कापी लेकर उन्होंने उसे इङ्गलैंड में जाकर छपवाया और (पच्चासों) रुपए उसकी क़ीमत रखी!

संस्कृत पुस्तक प्रकाशन

इस कार्य के अन्तगर्त महा० रणवीर सिंह ने दूर दूर के विद्वानों को मंगवा कर अपनी सभा में रखा तथा संस्कृत के भिन्न-भिन्न विषयों पर उनसे गन्थ लिखवाए! विस्तार भय से प्रत्येक निर्मित तथा सम्पादित ग्रन्थ का परिचय देने के बजाय उन सबकी केवल मात्र सूचि नीचे दी जाती है :—

१. अथर्व वेद संहिता पैप्पलाद शारदीया, (हस्तलेख)
२, अमर कोष हिन्दी भाषा सहित ,,
३. अमर कोष नाम माला - हिन्दी लद्दाखी भाषानुवाद सहित ,,
४. एकाक्षर निघण्टु ,, ,,
५. कल्प सागर— (निर्मित) ,,
६. चित्र प्रदीप— (सम्पादित) ,,
७. जातक गणित स्कन्ध संग्रह ,,
८ जातक फल स्कन्ध ,, ,,
९. जातक संग्रह ,, ,, (रचित) ,,
१०. तर्क संग्रह व्याख्या ,, ,, ,
११. दशभाषोदय कोष ,, ,, ,,
१२. ताजिक संहिता (सम्पादित) ,, ,,
१३. दुर्गा क्रमण रीति ,, ,,
१४. धनञ्जय विजय डोगरी भाषानूवाद ,, ,,
१५. धर्मशास्त्र संग्रह (सम्पादित)

१६. नीति कल्पलता (रचित) ,,
१७. पञ्च सायक विवरण (रचित) ,,
(साहिबाम)
१८. पूजा रहस्य सटीक—(रचित) हस्तलेख
१९. श्री मद्भगवद्गीता टीका (सम्पादित) ,,
विंशति
२०. भाव प्रकाश टीका ,, ,,
२१. भाषा कोष ,, ,,
२२. मार्कण्डेय पुराणाख्यान ,, ,,
२३. रघुनाथ गुणोदय (रचित) ,,
२४. रणवीर संगीत महोदधि ,,
२५. रणवीर सदाचार रत्नाकर ,,
२६. विषहर तन्त्र (गणेश शास्त्री) ,,
सं० १८०१
२७. वीररत्न शेखर शिखा—अनुवाद ,,
२८. वीर वैद्यरत्नहार टीका ,,
(साहिव राम)
२९. संक्षिप्ताह्निक पद्धति (रचित) ,,
३०. स्त्रीधर्म निर्णय (रचित) ,,
३१. फौज के लड़ाने की किताब ,,

उपर्युक्त कुछ प्रधान हस्तलेखों का प्रदर्शन हो चुका है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रधान ग्रन्थ ऐसे हैं, जो म० रणवीर सिंह ने विद्वानों द्वारा बनवा कर तथा सम्पादित करवा कर विद्याविलास प्रेस से छपवाए थे। उनके मुख्य-मुख्य नाम इस प्रकार हैं।

१. गीता पञ्च रत्न, २. धातुरूपावली,
३. मन्त्र रामायणम् ४. रणवीर चिकित्सा प्रकाश
५. रणवीर चिकित्सा सुधासार ६. रणवीर ज्योति महा निबन्ध
७. रणवीर प्रायश्चित्त प्रकरण ९. रणवीर व्रतरत्नाकर १० वर्ण-माला—११. सेना शिक्षा, १२. रणवीर दण्ड विधान,
१३. कुछ धर्म शास्त्र सम्बन्धी सम्पादित पुस्तकें।

म० रणवीर सिंह ने ... मोटे वेतन देकर बड़े बड़े योग्य विद्वानों

को राज्य में लाकर रखा था। डोगरे संस्कृत विद्वान भी चुन चुन कर राजकीय पण्डित मण्डली में रखे गए थे। उनमें से कुछ प्रसिद्ध विद्वानों के नाम नीचे दिए जाते हैं :—

१. पं० गोपाल राम २. त० प० चण्डीदास ३. पं० दीनानाथ ४. पं० विश्वरूप ५. निधिपत्ति ६. पं० नीलकण्ठ ७. पं० गणेश दैवज्ञ ८. पं० महेश ९. पं० विश्वेश्वर दैवज्ञ १०. सर्वेश्वर पण्डित ११ काशीनाथ शास्त्री १२. पं० गोकुलचन्द्र १३. पं० गंगाधर १४. पं० गोविंदाचार्य।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि म० रणवीर सिंह का युग संस्कृत क्षेत्र में सब युगों से महान है। सन १८८५ में म० रणवीर सिंह की मृत्यु के पश्चात उनके बड़े सुपुत्र श्री प्रताप सिंह जम्मू कश्मीर की राज गद्दी पर वैठे। इन्होंने भी अपने पितृपाद द्वारा जलाया गया संस्कृत दीपक उसी प्रकार प्रज्ज्वलित रखा तथा संस्कृत पुस्तक प्रकाशनकी दिशा में महान कार्य किया। इनके समय में जम्मू कश्मीर अनुसन्धान विभाग की ओर से लगभग १०० हस्तलेखों का प्रकाशन हुआ। जिनका विवरण विस्तार भय से यहां नहीं दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त म० प्रताप सिंह ने पूजा-पाठ कर्म काण्ड और यज्ञ तप-दान तथा संस्कृत विद्वानों के सम्मान में काफी योग-दान दिया। इनके युग में विद्वानों की प्राचीन परम्परा तथा संस्कृत के उत्कृष्ट पाण्डित्य को बड़ा पोषण होता रहा और संस्कृत का उपयोग साधारण जनता तक आ पहुंचा। ६० वर्ष पुराना एक विज्ञापन पत्र मेरे हाथ लगा था जिससे में श्री भद्भागवत सप्ताह के होने की सूचना आम जनता के नाम प्रसारित की गई थी। विज्ञापन पत्र संस्कृत में छपा था जिसका पहला पद्य इस प्रकार है :—

भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं महाशयैः

इसके नीचे गद्य में लिखा था—एषा सूचना ग्रामे ग्रामे नगरे नगरे परिप्रेषणीया। इनके युग में संस्कृत विद्वत्ता का वही स्तर जीवित ही नहीं रहा उसके साथ और नई उपलब्धियां जुड़ीं।

सन १९२५ में म० प्रताप सिंह के देहावसान पर म० हरि सिंह जम्मू कश्मीर की राज गद्दी पर बैठे। इनके युग में भी रणवीर सिंह सम्बन्धी संस्कृत परम्परा कायम रही किन्तु नए युग के अंग्रेजी प्रसार ने इस परम्परा की हड़पना आरम्भ कर दिया हुआ था। यह ग्रासिकरण

दिन व दिन बढ़ता ही गया। इसके साथ ही साथ राज्य की प्राचीन संस्कृत परम्परा भी अस्त होती गई किन्तु म० हरि सिंह ने म० रणवीर सिंह द्वारा स्थापित संस्कृत प्रतिष्ठान, सदावर्त और मन्दिरों का पोषण पूर्ववत् चालू रखा। इस युग में यह भी एक बड़ी प्रशंसनीय बात थी। इन्होंने संस्कृत क्षेत्र में अपनी एक नइ उपलब्धि यह भी जोड़ दी कि संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शास्त्रियों को बड़ी बड़ी छात्र वृत्तियों पर काशी भेजा जाने लगा।

सन १९४७ के अनन्तर स्वतन्त्रता प्राप्ति के युग में आकर म० हरि सिंह के सुपुत्र डा० महाराजा कर्ण सिंह ने भी संस्कृत प्रेम की अपनी परम्परा की विरासत को साथ रखते हुए अपने पूर्वजों की इस परम्परा को अभी तक सुरक्षित रखा हुआ है यद्यपि आज के नवीन वैज्ञानिक युग में अंग्रेजी के अन्धे अनुराग ने जनता की भावना को संस्कृत दिशा की ओर से मोड़ने के प्रयत्न किए हैं किन्तु इस घटाटोप में भी वह दीपक तो जगमगा रहा है किन्तु नवीन धारा के इस प्रवाह में अंग्रेजी और विज्ञान की चकाचौंध में इसका प्रकाश ग्रहण करने वाले बहुत कम रह गए हैं यह एक युग-चक्र है, जो परिवर्तन की धुरी पर घूमता हुआ आया है। अब इसे अपना समय तो लेना ही है।

महाराजा ड० कर्ण सिंह के संस्कृत प्रेम के कारण ही उन प्राचीन हस्त लेखों को नया संरक्षण मिला है। एक रघुनाथ सं० अनुसंधान विभाग की अलग स्थापना करते हुए इन्होंने संस्कृत रिसर्च कार्य को बड़ा प्रोत्साहन भी दिया है। इन्ही की प्रेरणा का फल है कि जम्मू कश्मीर में अब भी उस प्राचीन स्वर्ण युग का संस्कृत लेखन कार्य और पाठन प्रचलित हुआ है। श्री रघुनाथ सं० महाविद्यालय में सस्कृत पठन-पाठन का प्रतिष्ठान भी चल रहा है तथा लेखन कार्य की दिशा में श्री शुकदेव शास्त्री ने लगभग संस्कृत के चार काव्य भी लिख कर प्रकाशित कर दिये है। अभी उनकी साधना चल रही है। संस्कृत गद्य की दिशा में संस्कृत रिसर्च पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री रामकृष्ण शास्त्री ने भी इन दिनों 'कादम्बरी कथा सार' लिख कर इस परम्परा को अग्रसर किया है। केदारनाथ शास्त्री जी ने भी तौषी शतकम की रचना की है। पं० काकाराम जी द्वारा लिखित विश्व-संस्कृत शताब्दी ग्रंथ (जम्मू-कश्मीर सम्बद्ध भाग) महत्वपूर्ण कृति है।

—श्यामलाल शर्मा

डोगरी शब्दों का स्थिरीकरण

साहित्यिक वृद्धि के साथ भाषा में एकरुपता की आवश्यकता पड़ती है। नहीं तो शब्दावली की रूप विविधता दूसरी भाषाओं के पाठकों तथा उसीभाषा के विद्यार्थियों के सामने एक असमंजस का वातावरण खड़ा कर देती है। टाइप तथा प्रकाशन की समस्यायें भी उत्पन्न हो जाती हैं।

डोगरी भाषा ने पिछले दो दशकों में प्रशंसनीय उन्नति की है। आज उसका प्रकाशित साहित्य डेढ़ सौ से ऊपर पुस्तकों का भण्डार है। डोगरी साहित्य कविता, कहानी और नाटक की परिधि को लांघ कर उपन्यास निवन्ध, व्याकरण और कोष निर्माण तथा अनुसन्धान की ओर अग्रसर है। 'नमीं चेतना' और 'रेखा' द्वारा निर्मित पदचिन्हों के सहारे डोगरी 'ब्रह्मवाणी' तथा 'शंखधुन' की (अपर्याप्त ही सही) सहायता से अपने यथार्थ पद केलिये अग्रसर होती जा रही है। डोगरी की स्मृद्धि में निरत संस्थाओं द्वारा अयोजित कवि सम्मेलनों, गोष्ठियों तथा नाटकों ने जनता की भावनाओं को मुखरित किया है। विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत तिलक, प्रवीण और शिरोमणि परीक्षाएं इसकी विपुल सम्भावनाओं की द्योतक है। (अभी तक केवल तिलक और प्रवीण परीक्षाएं ही विधिवत चालू हो पाईं हैं)। इन सब प्रयासों से मंज, सवंर कर भाषा एक साहित्यिक रूप को ग्रहण करती जा रही है। उसकी शैली की विविधता उसकी स्मृद्धि की परिचायक है। आज से वीस वर्ष पहले का गुतलू'' का प्रकाशन आज के 'शानो' और

'बताल पचीसी' के समक्ष प्राचीन सा लगता है। डोगरी के कवियों और लेखकों की संख्या में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई है। अर्थाभाव और असुविधाओं के कारण बहुत सा साहित्य अभी पाण्डुलिपियों के रूप में लेखकों के पास ही पड़ा है। उसका अल्पांश ही—अकाडमी या व्यक्तिगत उत्साह के बलबूते पर प्रकाशित हो पाता है। साधना के ऐसे वातावरण में एक बात खटकती है। वह है एक शब्द को लेखकों द्वारा भिन्न भिन्न रूपों में लिखना। प्रकाशनों के एक शब्द की बहुरूपता पाठकों को भ्रम में डालने वाली वस्तु सिद्ध होती है। विशेषतया बालकों के लिये जटिलता उत्पन्न करने वाली बात होती है। बालकों के लिये मुद्रित शब्द तो सर्वोपरि प्रमाण होता है। एक बार उनके मन में शब्द का जो रूप अंकित हो जाता है वह चिरस्थायी रूप धारण कर लेता है। चूंकि उस समस्या (शब्दों की एकरुपता) का सम्बन्ध आने वाली पीढ़ियों पर पड़ने वाला है इसलिये यह हमारा कर्तव्य है कि हम लेखक बन्धू वैज्ञानिक चिन्तन के आधार पर डोगरी शब्दावली की एक रुपता मान्य करलें और फिर उस पर अमल करें ताकि आगामी प्रकाशित होने वाला साहित्य भ्रान्ति या असमञ्जस उत्पन्न करने की बजाय एक सामञ्जम्य की भावना का निर्माण करे। मुद्रकों और प्रकाशकों को सुविधा हो तथा दूसरी भाषाओं के पाठकों को भी समाधान हो।

पद्मभूषण डा० सिद्धेश्वरवर्मा जी से इस समस्या पर मेरा पत्र व्यवहार हुआ है। उनका परामर्श है कि हमें कोई निकटोद्देशीय योजना को चाहे उस में पूर्ण सहमति न भी हो स्वीकार करके शीघ्राति-शीघ्र तैयार कर लेना चाहिए। डाक्टर साहब ने लिखा है कि प्राचीन और अर्वाचीन-विचारकों ने अक्षर-विन्यास के तीन मुख्य रूप बताये हैं। (१) तात्विक (२) व्यावहारिक और (३) व्यावहारिक प्राय। तात्विक निरुपण (Narrow transcription) वह है जिस में ध्वनि का वास्तविक रूप प्रकट किया जाता है। उदाहरणार्थ 'मन्त्र' शब्द यदि डोगरी भाषियों में 'मैन्तर' बोला जाता है तो बच्चों और साधारण जनता पर यह जुल्म है कि उन्हें 'मन्त्र' लिखने के लिये मजबूर किया जाये। इसी प्रकार बोल चाल की हिन्दी में 'मन्तर' ही बोला जाता है। 'मन्त्र' कोई नहीं बोलता परन्तु लिखा 'मन्त्र' ही जाता है। आगामी सन्ततियों में आपत्ति हो सकती है कि 'मन्त्र' क्यों लिखा जाता है।

उस तात्विक दृष्टि कोण से यह विचार उत्पन्न होता है कि क्या विकल्प रूप से हम बच्चों, साधारण जनता और ध्वनि विज्ञों के लिये 'मैन्तर' लिख सकते हैं। पाणिनि जैसे महान् वैय्याकरण को भी देश काल तथा प्रकरण के आधार पर विकल्प बहुलम्' स्वीकार करना पड़ा था। शकुन्तलादि संस्कृत नाटकों में भिन्न २ प्राकृत बोलियों का प्रयोग हुआ है। अतः यह उचित रहेगा कि बच्चों की पाठय पुस्तकों में कम से कम दूसरी श्रेणी तक शब्दों के रूपों में तात्विक दृष्टिकोण को ही प्रमुख माना जाए। २. व्यावहारिक दृष्टिकोण देश में प्रतिदिन बढ़ रहा है उसमें कोई सन्देह नहीं। इस दृष्टिकोण के अनुसार लिपि और अक्षर विन्यास संकेत मात्र है; भिन्न २ उच्चारणों के प्रतिनिधि हैं और देश की बौद्धिक एकता के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। पृथ्वी भर में अंग्रेज कौम से बढ़ कर उन्नतिशील जाति कोई बिरली ही है, परन्तु ये लोग भी अपने उपहासास्पद अक्षर-विन्यास पर अभी तक डटे हुए हैं। अक्षर विन्यास ली एक रूपता राष्ट्रीय एकता के लिये जिन्दगी और मौत का प्रश्न है। यह व्यावहारिक निरूपण एक माया जाल, एक जालिम यान्त्रिकता का प्रकोप भले ही हो इसकी महिमा के आगे प्राचीन आचार्यों के समान हमें भी सिर झुकाना ही पड़ेगा। ऋषियों ने 'विद्या' के साथ अविद्या' का महत्व भी उदघोषित किथा था। फरमाया था कि अविद्या से ही मृत्यु से छुटकारा होता हैं। (३) व्यावहारिक प्राय निरूपण वह है जिसमें व्यावहारिकता प्रधान तो होती है कहीं २ उसमें तात्विकता की झलक भी होती है। जैसे 'डोगरी शब्दों में एकरुपता' (ले० श्यामलाल शर्मा) योजना मासिक अंक ६,...... (१९५९ अकतूबर) पृष्ठ ४३ श तथा छ से प्रारम्भ होने वाले शब्दों में 'छ' को मान्यता दी है परन्तु बीच में तथा अन्त में आने वाले 'श' और 'छ' दोनों को स्वीकार कर लिया गया है। 'शतरी' और 'छतरी' में छतरी को मान्यता दी गई है। और 'पिशुआं' तथा 'पिछुआं' में दोनों को ही स्वीकार कर लिया गया है। अब प्रश्न यह कि इन तीनों प्रकार के निरूपणों में किस को प्रधान स्वीकार किया जाए और किन २ प्रकरणों में ? सृष्टि में हम भेदाभेदतादात्म्य (Unity in diversity) देखते हैं। क्या इन तीनों निरुपणों का समन्वय हो सकता है।

भाषा विज्ञान के नियमानुसार दस मील के उपरान्त भाषा में एक स्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है। स्वराघात, बल-अथवा सुर में फर्क पड़ने लगता है। यह लहजे का परिवर्तन कई बार शब्द का रूप ही बदल देता है

श्रौर शव्द श्रपने पहले रूप से बहुत भिन्न दिखाई देता है । उदाहरणार्थ संस्कृत 'श्रंगुष्ठ' हिन्दी में श्रंगूठा डोगरी में ङ्ड, श्रौर कई स्थानों में बूढ़े तथा बच्चों की भाषा में 'ठुठु' हो गया है। जीवित भाषा में ङूठा, 'नूठा' श्रौर ठुठ सभी रूप मिलेंगे ! इसी प्रकार 'श्रौन' धातु । डोगरी में सर्वनामों का क्षेत्र खूब विस्तृत श्रौर दिलचस्प है। 'श्रऊं' 'तू' श्रौर 'श्रो' के सब कारकों के रूप देखें तो विविधता की रंगीनियां जहां श्रांखों को तृप्त करती हैं वहां मन को भी बहुत भाती हैं। 'श्रऊं' श्रौर 'में' दोनों मिलते हैं । लिखने में "श्रौं" श्रौर 'मैं' भी मिलते हैं ।

मेरे विचार में 'श्रऊं' संस्कृत के तत्सम (श्रहं) के समीप है श्रौर श्रधिक प्रचलित हैं। 'श्रौं' संयुक्त स्वर है श्रौर उच्चारण में मतभेद उत्पन्न करता है। 'में' रूप भी मान्य है। 'मैं' बहुत कम मिलता है । पंजाबी में 'मैं' की ही प्रधानता है। 'मिकी', 'मिगी' श्रौर 'मी' ये तीनों रूप प्रचलित हैं। मेरे विचार में मान्यता 'मिकी' को मिलनी चाहिये । मिगी 'मिकी' का ही सघोष है। 'मी' तो शव्द लाघव है। साहित्यिक रूप 'मिकी' उपयुक्त रहेगा। 'मेरे कशा', माढ़े कशा, श्रौर मेरे शा ये करण के तीनों रूप मिलते हैं। एक बचन माढ़े कशा श्रौर बहुवचन साड़े कशा उपयुक्त लगते हैं । मेरे कशा' को भी मान्यता दे देनी चाहिये। श्रब एक बात श्रौर है कि माढ़ा इसी प्रकार लिपिबद्ध किया जाये या 'म्हाड़ा' रूप लिखा जाये ! इसी प्रकार 'साढ़ा' श्रौर 'स्हाड़ा' का प्रश्न है। धवनि विज्ञ को स के साथ ह ध्वनि की अनिवार्यता श्रवण गोचर होती है परन्तु यह वास्तव में 'ह' ध्वनि नहीं, नीचारोही सुर (Low rising tone) है जो 'ह' का भास कराती है !'

इसका श्रन्तर्राष्ट्रीय लिपि में चिन्ह [/] है। इसको स्वर के नीचे प्रयोग में लाया जाए तो श्रत्यन्त उपयुक्त रहे। इसी प्रकार उच्चावरोही सुर (High falling tone) का [—] हैं इसको भी स्वर के ऊपर श्रपनालिया जाये तो मैं समझता हूं कि डोगरी भाषा की पचास प्रतिशत कठिनाइयां स्वयं हल हो जायेंगी ! डोगरी की प्रमुख विशेषताश्रों में इन 'सुरों' का प्रसुख भाग है। इसलिये माढ़ा श्रौर स्हाड़ा में तथा साढ़ा श्रौर स्हाड़ा में मान्यता माढ़ा श्रौर साढ़ा को ही दी जानी चाहिये ।

इसी प्रकार माढ़े गित्तै, मेरे गित्तै श्रौर माढ़े लई, मेरे लई इन

दोनों द्वन्द्रों में पहला अधिक प्रचलित तथा उपयुक्त भी दिखाई देता है ।

माढ़े थमां, माढ़े थुआं और माढ़े थोंआं में पहला ही उचित लगता है !

मेरा माढ़ा और साढ़ा तीनों ही रूप प्रचलित हैं और मान्यता प्राप्ति के अधिकारी हैं ।

माढ़े उप्पर, माढ़े पर, साढ़े उप्पर और साढ़े पर में 'उप्पर' वाले रूप को मान्यता दी जानी चाहिए ।

कारकों के सम्बन्ध में विचार करने से पता लगता है कि कर्ता में 'ने' की वृद्धि करण कारक का प्रभाव है। डोगरी कारकों में एक विशेषता जो स्पष्ट दिखाई देती है वह 'ऐ' ध्वनि है जो कर्म, सम्प्रदान अपादान तथा अधिकरण में दृष्टिगोचर होती है। कारकों का व्योरा इस प्रकार है।

कर्ता में अखिया ।
तूं आखेया ।
उस आखेया ! उसनै आखैया ।
राजै ग्लाया ! राजे नै ग्लाया ।
कवियै लिखेया !—कवि नै लिखेया ।
दोधिऐ दुद्ध चोया—दोधि नै दुद्ध चोया ।
मानुऐ पुक्छेया—मानु नै पुच्छेया ।
भातृ आखेया—भ्रातृ नै आखेया ।
बलि राजै दान दित्ता—राजे बलि नै दान दित्ता
लाड़िऐ ग्लाई दित्ती—लाड़ी नै ग्लाई दित्ती,

	१	२	३
कर्म	मिकी	मिगी	मी
	तुकी	तुगी	तुई
	उसी		
	[illegible] की	–गी	–ई

लाड़िऐ की—गी —ई

करण	कशा,	शा		कोला
	लाड़ी कशा	कम्म	नइं हुन्दा	
	,,	शा ,,		,, ,,
	,,	कोला ,,		,, ,,
	लाड़िऐ	,,		,, ,,
सम्प्रदान	मनुक्खै	लइ	गित्तै	ग्रास्तै
	इस उमरी च	इन्नी खेचल	जातकै लइ गै	
ग्रपादान		दा	थमा	
	श्माना	दा	तारा	त्रुट्टा
	श्मानै	थमां ,,		,,
	बूटे	दा	फुल	तुग्रारो
	,,	थमां ,,		,,
सम्बन्ध		माढ़ा	मेरा	
		थुग्राड़ा	तेरा	
		नुग्राढ़ा	ग्रोदा	उसदा
			कोदा	कुसदा कुसैदा
अधिकरण		ऐ	उप्पर	

शरीक कन्धै लिखेदा मान नई

गौ बाड़िऐ पे दी ऐ

कुसै उप्पर के रो ऐ।

साढ़े उप्पर सान नइ कीता

वर्णमाला में वर्ग के प्रथम और चतुर्थ वर्ण का डोगरी उच्चारण में ऐसा योग है कि यदि प्रथम वर्ण को नीचारोही-सुर (low rising tone) का चिह्न [/] लगाया जाये तो चतुर्थ वर्ण का कार्य सम्पन्न हो जाता है।

इसलिये घर (मकान) को क्र्र लिखना चाहिये या 'घ' की ध्वनि को प्रथम वर्ण के आधार पर बोलना चाहिये। जैसा डोगरी में बोला जाता है परन्तु बहार (वसन्त) को बहार ही लिखना चाहिये। इसको भार लिखने से बहार (बसन्त) भार (बोझ) हो उठेगी। इसी प्रकार पहाड़ प्ाड़ लिखना ही उचित रहेगा भाड़ लिखने से भाड़ में जाने का भय रहता है।

प्रथम वर्ण के हलन्त् के साथ ह मिला कर काम चलाने से सुगमता नहीं आती। कुछ शब्दों में अधिक जटिलता का ही गिर्माण होगा।

क्र्र	क्हर,	घर
च्ात	च्हात	झात
ट्ि्लकना	टि्हल्कना	ढिल्कना
त्ाड़	त्हाड़	धाड़
प्ार	प्हार	भार
बा्र	ब्हार	भार

डोगरी में 'ऐ' ध्वनि की प्रचुरता क्त्वान्त (Indeclinable) में खूब है! जैसे—खाइयै (खाकर) सैइयै (सोकर), बइयै (बैठकर) खड़ोइयै (खड़े होकर) आदि! प्रान्त के कई भागों में और पुराने कवियों के प्रयोगों में धातुका संज्ञीकरण करके और करी लगाकर रूप भी मिलता है।

बाजरे दी राखी करी, चिड़ियां डुआरी करी,

डंगर चराई करी कियां कियां कत्तना ?

राखी करी	राखी करिऐ
डुआरी करी	डुआरिऐ
डराइ करी	डराइऐ

दोनों प्रकार के उदाहरण मिलते हैं परन्तु मान्यता डोगरी गद्य में खाइयै आदि (ऐ) ध्वनि के रूपों को ही मिलनी चाहिये।

डोगरी में कृदन्त की विविधता भी खूब है। "कर रहा" के लिये [illegible] बोलने में सुनाई करा करदा, करादा, करा दा—, कर दा और [illegible]

देते हैं। उच्चारण की सुगमता का परिणाम दिखाई देता है कि 'करा करदा' 'कद्दा' तक पहुंच गया है ! लेखकों ने प्रायः सभी रूपों का प्रयोग किया है। एकरूपता के लिये गद्य में 'कराकरदा' रूप ही मान्य होना चाहिये। बोलचाल में बाकी रूप भी चलेंगे परन्तु साहित्यिक रूप—'करा करदा' ही होना चाहिये।

क्रिया विशेषणों के रूप प्रायः स्थिर हैं। बहुलता अवश्य है। डोगरी-हिन्दी तथा अन्य भाषाओं से आवश्यकतानुसार शब्द-ग्रहण करके स्मृद्ध होती जा रही हैं।

इत्थें	ताईं	इद्धर
उत्थें	तुआईं	उद्धर
कुत्थें	कुताईं या कुआईं	कुद्धर
अग्गे	अग्गुआं	
पिच्छे	पिच्छुआं	
सामने	सामनेआ	
पासै } वक्खी }	बक्खी आ पासेआ	
अन्दर	अन्दरा	
बार	बारा	
कन्ने	अपनें कन्नें वैर नईं करना	
समेत } सने }	ओ बव्वै सने सत्त जी न	
तौली	तौली कम्म कर	
बिजन	बिजन बोले गै टुरदा होआ	

शब्द की बहूरूपता या विविधता के कारण भीं होते हैं। कविता में कभी ह्रस्व भी दीर्घ हो जाता है। पर यह ज्ञात भाव और सुधार भाव से होता है। कहीं प्रदेश भेद और सम्प्रदाय भेद भी कारण होते हैं। कई बार अज्ञान के कारण भी शब्द को दूसरा रूप मिल जाता है। इसमें प्रमाद

प्रमुख कारण होता है। किसी ने कुछ कहा और सुनने वालों ने कुछ और सुन लिया और उसी प्रकार लिख लिया ! या लिखते-लिखते जानते हुए भी एक ढंग से लिखा गया तो आलस्य वश छोड़ दिया—"चलो इसी प्रकार चलने दो।"

डोगरी शब्दों की एकरुपता पर पहले भी एक गोष्ठी में विचार हुआ था जिस में डोगरी के प्रमुख लेखकों ने भाग ले कर कुछ शब्दों के रुपों पर एकमत निश्चित किया था।

उस निर्णय के आधार पर मुझे 'त्रिवेणी' को दुबारा लिखना पड़ा था। आगे छपने वाली पुस्तकों में उन निर्णयों पर अमल भी हुआ परन्तु अभी कुछ महारथी 'Write as you speak' के आधार पर एकरुपता को 'बन्धन' मानते है। परन्तु हमें महसूस करना चाहिये कि इस बन्धन से हम विद्यार्थी वर्ग और साहित्य के अन्य पाठकों का कितना भला कर सकेंगे ! और उनको कितनी व्यर्थ भ्रान्ति से बचायेंगे।

फुटकर शब्द या पदांश और वाक्यांश

१	था	हा	और	सा
२	जाइऐ	जाइए	जाइयै	
३	अपने जनेह	अपने नेए	अपने ने	
४	जेहड़ा	जेड़ा	जड़ा	
५	रेआ	रेया		
	होआ	होया		
६	कीयां	कीआं		
७	औन्दी	आंऊंदी	आओन्दी	
	उंगली	औंगली	आओंगली	
८	सरबन्धी	सम्वन्धी	समन्धी	
९	भलोके	भलोखे	पलोके	
१०	सभा	सुभा	स्भा	
११	परसन्न		परसिन्न	

१२ निं	नैं	नइं नईं
१३ सेई	सइ	सैंई
१४ कनें	कन्ने	करगे
१५ सवा	सुबा	सिवा सुम्रा

डोगरी ने नागरी लिपि को अपनाया है अपभ्रंश शब्दों को उसी रूप में लिखना चाहिये पर जिन शब्दों ने वास्तव में अपना तत्सम रूप नहीं खोया हैं उन में किसी वर्ण के विशिष्ट प्रादेशिक उच्चारण के कारण उसे बदल देना जरूरी नहीं है। क्योंकि वह बोली को व्यर्थ में सम्बद्ध भाषाओं से दूर ले जाता है।

तत्सम शब्दों के विषय में यह निश्चित हुआ था कि उसके रूप बदलने की आवश्यकता नहीं। आवश्यकतानुसार यदि किसी भाषा से कोई नया शब्द लिया जाए तो उसे उसके तत्सम रुप में ही लेना चाहिये।

—कार्तिक प्रसाद डोगरा

भाषाशास्त्र तथा भाषाविज्ञान

दार्शनिकों का कथन है कि परब्रह्म अथवा पराशक्ति, अनन्त है। भाषा शास्त्रियों का कथन है कि भाषा का साम्राज्य अनन्त है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि भाषा के विना सभ्यता नहीं पनप सकती है और विवेक ज्ञान जैसे विशिष्ट गुणों वाला व्यक्ति भाषा का सम्वर्धन करता है। इसी कारण से विद्वानों ने मनुष्य को एक यांत्रिक जीव कहा है। यह ठीक भी है, क्योंकि भाषा नाम के सब से बड़े यंत्र का व्यवहार करना यह जानता है। भाषा एक ऐसा यंत्र है जिसके द्वारा हम संसार के कठिन से कठिन कार्य भी करने में समर्थ होते हैं। हम भाषा के माध्यम से विभिन्न विषयों से परिचय करते है और उन पर विचार करते हैं। हम विभिन्न देशों और प्रदेशों की विभिन्न भाषाएं बोलते हैं और निजी भाषा की प्रशंसा कर गौर्वान्वित होते हैं। परन्तु जिस प्रकार छोटे बच्चे नहीं जानते कि वह क्या और कैसे बोलते हैं वैसे हम भी नहीं जानते कि भाषा कहां से आई और इस का आविष्कार किस ने किया ? भाषा का सिलसिला तो उस दिन से चालू है, जिस दिन किसी ने अरण्य में सार्थिक गर्जन किया होगा। परन्तु हमारा प्रश्न अभी खड़ा है और संसार के भाषाशास्त्री आज तक सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाए हैं। संसार के भाषाशास्त्री यह जानते हैं कि किसी काल में भाषा नहीं थी और प्रगतिमान काल ऐसा आया जब कि भाषा हो गई।

सदियों तक क्रिश्चियन लोगों का विश्वास था कि 'हिब्रू' आदम की भाषा है और बच्चे स्वत: इस भाषा का व्यवहार करने लगते हैं। संसार के अनेकों विद्वानों का मत है कि भाषा ईश्वर प्रदत्त है: ग्रीक, रोम, जर्मनी इत्यादि अनेकों देशों की पौराणिक गाथाओं में भाषा के देवी-देवताओं का वृत्तान्त मिलता है। रोमन लोग मिनर्वा को तथा यूनानी पल्लास ऐथिन को भाषा-दायिनी देवी के रूप में मानते हैं। पल्लास ऐथिन के सम्बन्ध में उनका विश्वास है कि यह शुद्ध वायु और गति की अधिष्ठातृ देवी है। इसकी कृपा से शुद्ध वायु का संचार होता है। इस प्रकार से हजारों वर्षों से मनुष्य भाषा के उद्गम के विषय में अटकलें लगाता रहा है।

भारतीय परम्परा में हम शब्द को ब्रह्म रूप से देखते आए हैं। अमृतविन्दु उपनिषद तथा अन्य ग्रन्थों से इसकी पुष्टि होती है।

> द्व विद्येवेदितव्ये तु शब्द ब्रह्म परं च यत् ।
> शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
>
> (अमृत विन्दु उपनिषद)

संगीत दर्पणकार ने इस विषय को और स्पष्ट किया है—

> 'नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वचः ।
> वचसो व्यवहारोयं नादाधीनमिद जगत् ॥

नाद से वर्ण की, वर्ण से पद की तथा पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है। वाणी से ही यह सब व्यवहार चलता है। अतः यह सम्पूर्ण जगत नाद के अधीन चलता है।

> "शब्दस्य परिणामोऽय मित्याम्नाय विदोविदुः ।"

अर्थात—'आम्नाय (वेद) के ज्ञाता जानते हैं कि यह जगत् शब्द का ही परिणाम है।

'नाद' शब्द की व्युत्पत्ति साधारणतया नद् धातु से की जाती है, जिस का अर्थ होता है अभिव्यक्त ध्वनि। इसी अभिव्यक्त ध्वनि के ही व्यक्त रूप हैं वर्ण, पद, वाक्य, स्वर इत्यादि। नाद अर्थात्

ध्वनि की उपासना है, इसी लिए हम ने शब्द का आरम्भ में ब्रह्मरूप से विवेचन किया है। ब्रह्म की उपासना वेद का सार है।

नास्ति नादात् परोमंत्रो न देव स्वात्मनः परः।
नातुसन्धेः परापूजा न हि तृप्तेः पर सुखम् ॥'

योगशिखोपनिषद्

अर्थात्—नाद से बड़ा कोई मंत्र नहीं है और अपनी आत्मा से बड़ा कोई देव नहीं है। नादानुसंधान से कोई बड़ी पूजा नहीं है और तृप्ति से बड़ा कोइ लुतफ नहीं है।

ध्वनि या नाद, जो भी कहिये, दो प्रकार की होती है। अनाहत और आहत। अनाहत नाद बिना आघात के उत्पन्न होती है और ब्रह्मरूप होने के कारण यह सर्वव्यापी है। संत कबीर कहते हैं—

"जब अनहत बाजा बाजे, तब साईं संग बिराजे।"

नाद सर्वव्यापी है, यह छिपी बात नहीं है। हम आप सभी प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। बालक जिस ने अभी कोई भाषा नहीं सीखी है, उसके अन्दर से अ...अ...अ ऐसी ध्वनि आती है। यह ध्वनि-तत्व जलचर, थलचर, नभचर सभी में विराजता है। यह अनाहत तो आकाश (शून्य) में भी विद्यमान है। भाषाशास्त्री और बाद में भाषा वैज्ञानिक भी समस्त भाषाओं का उद्गम् इसी अनाहत ध्वनि से मानने लगे हैं; जो कि शिशु के भीतर से कण्ठ जिह्वा, ओष्ठ, तालु इत्यादि से टकराती हुई बाहर आती है।

भाषा के वाचिक अंश पर भी विचार करने से ज्ञात होता है कि भाषा शिशु के भीतर जाने वाली और आने वाली श्वास ध्वनि से बनती है। भीतर जाने वाली श्वास ध्वनि की प्रक्रिया में 'डायफ्राम' ऊपर की ओर उठता है इस के किनारे किनारे की मांसपेशियां छाती को सिकोड़ती हैं। फेफड़े दबते हैं और हवा फैंकते हैं, जो केवल श्वास नाली द्वारा ही बाहर आती है। इस अनाहत बहिर्गामी श्वासध्वनि से बहुत कुछ किया जा सकता है। इसे स्वच्छन्द एवं निरंकुश बहने दिया जा सकता है अथवा इस में बाधा भी डाली जा सकती है। तब इस का नाम आहत ध्वनि हो जाएगा। इस श्वास ध्वनि का स्वच्छन्द प्रवाह तो साधारण श्वास, है जो [illegible] है अथवा खर्राटा लेता है। खर्राटा हर समय लेते हैं, दमारोग

लेने को कतिपय विद्वान अनुचेतनावस्था की भाषा कहते हैं। कारण— खर्राटा लेने जैसी ध्वनि में मुख के विभिन्न भागों का आघात होता है। अस्मात् इस ध्वनि को भी भाषा के समान ही मानते हैं। पर इस ध्वनि का कुछ अर्थ नहीं होता।

स्वभावानुगत अन्दर से 'अ' ध्वनि निकलने पर हम उस अनाहत नाद में तीन प्रकार से व्यवधान पैदा करते हैं। इसको रोकते हैं, संकुचित करते हैं अथवा इसमें कंपन पैदा करते हैं। इन्हीं तीन अवस्थाओं का अज्ञान अवस्था में शिशु व्यवहार करता है और भाषा का संवर्धन करता है। रोकने की बाधाक्रिया करने पर 'ह' जैसे वर्णों का उच्चारण सम्भावित है और संकुचन क्रिया में 'स' वर्णों का अनाहत नाद 'अ' में हम कम्पन पैदा करते हैं। संसार के सभी संगीतज्ञों ने 'अ' को अपनाया है। कम्पन पैदा करके संगीतज्ञ 'अ' से लम्बी आलाप लेते हैं। अवरोध और संकुचन की क्रियाओं से क्या क्या चमत्कार किया जाता है? इत्यादि समस्याओं को लेकर आज भी संसार के भाषा वैज्ञानिक खोए खोए से बैठे हैं।

भारतीय भाषा शास्त्री पाणिनी ने आज से प्राय: २५०० वर्ष पूर्व अवरोध, संकुचन एवं कम्पन की प्रतिक्रियाओं से कतिपय चमत्कारों का निर्देशन किया था जो कि आज संसार के सभी भाषाविद् स्वीकार करते हैं।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद् विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

नटराज शिव ने अपने नृत्य को समाप्त करने के बाद सनकादि सिद्धों के उद्धार के लिए चौदह बार डमरू बजाया। इन चौदह सूत्रों का आविर्भाव हुआ। इन चौदह सूत्रों में पहला है 'अइउण्'। इसमें पहले स्वर 'अ' की स्थिति कण्ठ में है। एक गूंगा भी 'अ' की ध्वनि तो निकाल ही सकता है।

भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में "अक्षराणामकारोऽस्मि" कह कर 'अ' का महत्व और भी अधिक कर दिया है। इस 'अ' के अतिरिक्त अन्य स्वर और व्यंजन जो हम उच्चारण करते हैं, वह सभी उपरोक्त तीन प्रक्रियाओं के कारण ही होता है।

मनुष्य मात्र के गले में जीभ के पीछे एक कूक होती है जिसे

साधारणत: घंटी कहते हैं। इसे अंग्रेज़ी में लैरिंक्स कहते हैं। यह श्वास नाली के शिखर पर रहती है और बाहर आने वाले श्वास में प्रकारांतर बाधा करके विभिन्न ध्वनियों का संचार करती है। इसके अतिरिक्त मुख के विभिन्न भागों जैसे कण्ठ, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ का अलग-अलग व्यवधान होता है, उससे अनेकों वर्णों की ध्वनिएं निकलती हैं।

पाणिनी ने अपने भाषा शास्त्र में इसका पूर्ण विवेचन किया है जिसका ज्ञान उस शास्त्र से परिचित विद्वानों को है ही। यह पद्धति जगतमान्य है। अब इस के आगे की खोज भाषा शास्त्री कर रहे हैं। प, फ, व, भ, म का उच्चारण ओष्ठ के प्रयोग से होता है। आज अमेरिका में भाषा वैज्ञानिकों ने ऐसे यंत्र बनाए हैं जिन के द्वारा हमें बोध होता है कि इन वर्णों का उच्चारण व्यक्ति विशेष अपने ओष्ठ के किस भाग से बहिर्गामी श्वास ध्वनि में व्यवधान करके इन वर्णों का उच्चारण करता है। ओठ को कई अंशों में विभक्त कर अंश विशेष के प्रयोग का निर्देशन करती हैं वह मशीनें। इस प्रकार वर्णों की उत्पत्ति होने के उपरान्त मनुष्य ने अपने उपयोग के लिए फूल, पशु, पक्षी इत्यादि को संकेत के रूप में अंकित करना आरम्भ कर दिया और कालक्रम से संसार की अनेकों लिपियों का प्रादुर्भाव हुआ।

"पदं वर्णात्" वर्णों से फिर पद बनने लगे और फिर वाक्यों के बनने पर हमारे समस्त व्यवहार चलने लगे। पदों से पदों में जब हम झुकते हैं तो हमें और भी प्रकाश मिलता है। ध्वनि तत्व के आगे पदों से सवन्ध होने पर हमें दो तत्व और दिखाई देते हैं। एक सन्बन्ध तत्व, जिसमें भाषा के अंग और उपांगों का समावेश रहता है-- अर्थात् व्याकरण और दूसरा अर्थतत्व जोकि सूक्ष्म होने पर भाषा की आत्मा कहा जा सकता है। भाषा के विकास में यह तीनों तत्व समान रूप से काम करते हैं। जिस प्रकार ध्वनि तत्व और सम्बन्ध तत्व के परिवर्तन से भाषा का वाह्य स्वरूप परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार अर्थतत्व के परिवर्तन से उस का आंतरिक स्वरूप कुछ का कुछ हो जाता है। भाषा के इस अर्थ परिवर्तन के कारणों की संख्या निश्चित नहीं हो सकती।

देश काल और परिस्थितियों के अनुसार इसके कितने ही कारण [illegible] के परिवर्तन में अनेक [illegible]

गिनाए जा सकते हैं। साथ ही

एक ही कारण काम करता है वरन् प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से न जाने कितने कारण उसकी तह में निहित होते हैं ।

यह अर्थ परिवर्तन मुख्यत: तीन दिशाओं में पाया जाता है :— (१) अर्थविस्तार (एक्सपैन्शन ऑफ मीनिंग) इसमें शब्द का संकुचित अर्थ विस्तृत हो जाता है। उदाहरण के लिए तेल शब्द लीजिए । इसका मूलत: अर्थ होता है तिल से निकला हुआ द्रवित पदार्थ और अर्थ यहां तक सीमित था। परन्तु आज इसके अर्थ का यहां तक विस्तार हुआ है कि न केवल सरसों, अरण्डी, नारियल के तेल ही वरन् कटहल, धनिया, चन्दन, बादाम, मछली, सांप आदि के रस को भी तेल कहते हैं । इस शब्द को इतने पर भी छुटकारा नहीं मिल पाया। घोर परिश्रम से आई हुई थकावट की पूर्व अभिव्यक्ति के लिए कहते हैं :—"आज बच्चू का तेल निकल गया।" यह अर्थ ही विस्तार तो हुआ कि "दिन में भी लोगों को तारे नजर आते हैं।' जरा सी थकावट पर लोगों की जान निकलती है।' निर्धन को नंगा कह दिया जाता है ।

दूसरा है अर्थ संकोच (कन्ट्रैक्शन आफ मीटिंग) जिस प्रकार शब्द के संकीर्ण अर्थ का कालान्तर में विस्तार हो जाता है, उसी प्रकार किसी शब्द का अर्थ विशिष्ट या सीमित हो जाया करता है । संस्कृत में मृग शब्द पशुमात्र के लिए प्रयुक्त होता था (इसलिए सिंह को मृगराज कहा जाता है) किन्तु आज यह शब्द केवल हरिन बोधक है। ऐसे ही धान्य शब्द अनाज के लिये था किन्तु अब केवल चावलों को ही धान्य कहते हैं ।

(३) तीसरा है अर्थादेश (ट्रान्सफरेन्स ऑफ मीनिंग) जब शब्द अपने प्रधान या मूल अर्थ का त्याग कर कोई अन्य अर्थ ग्रहण कर लेता है तो उस अर्थादेश कहते हैं। इस में कहीं अर्थ का अपकर्ष तो कहीं उत्कर्ष होता और कहीं शब्द अपने प्राचीन अर्थ को त्यागकर एक विचित्र अर्थ में प्रयुक्त होते लगता है । कभी कभी अमूर्त अर्थ अमूर्त अर्थ में और कहीं अमूर्त अर्थ मूर्त अर्थ अमूर्त रूप में सामने आता है। प्रत्येक भाषा में इस के अनेक उदाहरण मिलते हैं और इनके पीछे सुन्दर इतिहास होता है। ईरानी और भारतीय आर्यों के अलग होने से पहले 'असुर' शब्द, जिसका अर्थ देवता है इसी अर्थ में ईरानी रूप में 'अहुर' है ऋग्वेद की ऋचाओं में असुर शब्द इसी अर्थ में आया है, तथा वरुण का विशेषण भी रहा है, किन्तु ईरानी आर्यों के साथ [illegible] कारण भारतीय आर्यों द्वारा इस का प्रयोग

राक्षस के अर्थ में होने लगा और अस्वीकारात्मक 'अ' प्रत्यय को हटा कर केवल सुर शब्द देवता के लिए रखा। जो कि आज तक प्रचलित है। इधर ईरान में प्रतिक्रिया ठीक इसके विरुद्ध हुई अर्थात् 'असुर' रक्षक के लिए और 'देव' राक्षस के लिए प्रयोग किया जाने लगा। यह अर्थ के अपकर्ष और उत्कर्ष दोनों का ही उदाहरण है। अर्था देश के उदाहरण में रसोइया 'महाराज' है। मरने को 'आंख बन्द करना' या 'स्वर्गवास' होना कहते हैं। विधवा होने को 'बिछुआ उतर गए' या 'चूड़ी टूट गई' भी कहते हैं। रोटी क्यों छीनते हो वाक्य में 'रोटी' का अर्थ नौकरी से है इत्यादि। अर्था देश के कारण आज लगाम घोड़े को ही नहीं आदमी को भी लगाई जाती है। अंकुश हाथी के लिए ही नहीं स्त्री के लिए भी होता है। (अनुशासन के अर्थ में) इन अर्थों के परिवर्तनों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनेक कारण होते हैं। एक ही शब्द के अर्थ परिवर्तन के गर्भ में अनेकों कारण काम करते हैं।

कभी भाषा के अलंकारिक प्रयोग से अर्थ में परिवर्तन हो जाया करते हैं। कभी इस के सतत् प्रयोग अथवा बल प्रयोग से भी अर्थ भेद आ जाता है। अशुभ, अमंगल तथा अप्रिय को शुभ, मंगल तथा प्रिय रूप में रखने कारण भी शब्दार्थ बदल जाता हैं। शब्दार्थ परिवर्तन में अन्ध-विश्वास, अशिक्षा, असावधानी भावावेश, व्यक्तिगत योग्यता, हास्यविनोद, व्यंग्य, नवीन, अविष्कार, भाषा भेद, स्थान भेद, सादृश्य अथवा मिथ्याप्रतीति आदि अनेक प्रमुख कारण हैं। समाज में जिस प्रकार एक ही व्यक्ति जिस प्रकार अनेक रूप धारण करता रहता है—अर्थात एक क्षण वह स्वामी है तो दूसरे क्षण दास। कभी पिता तो कभी पुत्र। उसी प्रकार भाषा के अव्यक्त शब्द भी समय, स्थान और परिस्थिति के अनुसार अपना स्वभाव एवं गुण बदला करते हैं। इस को अर्था देश अथवा अर्थ परिवर्तन कहते हैं।

इस प्रकार हम वर्णों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर पदों के पास आए और पदों के शब्द-समूह के मध्य बैठ गए। शब्दों से परिचय होने से पश्चात् हमारे लिए आवश्यक हो गया कि हम शब्द साधना में रत हो जाएं और परब्रह्म से आत्मसात् करें। 'सम्यग् ज्ञाता सुप्रयुक्तः:' किसी एक शब्द को समझ कर उस का समुचित प्रयोग, प्रयोगकर्ता को इहलौकिक और पारलौकिक सुख का दाता होता है।

शब्द-साधना में शब्दों के इतिहास की खोज करने में आनन्द का अनुभव होता है; क्योंकि शब्द अनित्यस्वरूप है। पद्म भूषण आचार्य रामचन्द्र वर्मा के शब्दों में :—

"शब्द में भी आत्म तथा जीवन-ब्रह्म का बीज और अंश होता है। उनका भी जन्म और विकास होता है, कुल, गोत्र और परिवार होते हैं। उनका महत्व उन प्राणियों से बढ़ कर होता है, जो उनका प्रयोग करते हैं।"

भाषा शास्त्र और भाषा-विज्ञान के सम्मिलित रूप के सम्बन्ध में मैं ने हल्की-फुल्की बातें कहीं। यह विद्वानों के लिए नहीं हैं, क्योंकि मुझ से अकिञ्चन व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर है कि वह विद्वानों को कुछ समझावे मेरा ध्येय तो भाषा शास्त्र का साधारण परिचय कराकर इसमें साधारण अध्यवसाइयों का प्रेम बढ़ाना मात्र है, परन्तु आज के भाषा वैज्ञानिकों एवं पण्डितों से मेरा अनुरोध है कि वह समस्त भारतीय भाषाओं का अध्ययन इस दृष्टि से करें। क्योंकि भाषा-विज्ञान की यह शाखा अछूती पड़ी है। आज हमें ऐसे शोधकर्ताओं की आवश्यकता है जो हमें भारतीय भाषाओं के प्रति एक शब्दों की कहानी सुना सकें, भाषा के अर्थ-तत्वों का तुलनात्मक आधार पर अध्ययन करें और भाषाओं के आदान-प्रदान का इतिहास तैयार करें। यह महान् कार्य निरन्तर शब्द-साधना से ही हो सकता है।

—केदारनाथ शास्त्री

श्रीनगर संग्रहालय के शारदा अभिलेख

सन् १९६५ ग्रीष्म ऋतु में जम्मू कश्मीर राज्य के पुरानत्व निदेशक के कहने पर लेखक ने श्रीनगर संग्रहालय के शारदा अभिलेखों और प्राचीन देवमूर्तियों का अध्ययन किया। अभिलेख बीस के लगभग थे और अधिकांश वास्तुखंडों और देवमूर्तियों पर खुदे थे। इनमें से कुछ लेख अत्यन्त खंडित होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखते थे। कुछ लेख ऐसे भी थे जो खंडित एवं अधूरे होने पर भी पयाप्त महत्व के थे। क्योंकि इनसे देश की तात्कालिक राजनीतिक, समाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों पर काफी प्रकाश पड़ता हैं। पूर्वोक्त शारदा अभिलेखों का नीचे क्रमशः वर्णन दिया गया है :—

अभिलेख १—यह लेख एक देवमूर्ति के पद्माकार पादपीठ के तीन पहलुओं पर खुदा है। पाद पीठ के मध्य में एक छेद हैं जिसमें मूर्ति की पैंदी में बनी हुई चूल बैठती थी और मूर्ति को पीठ पर स्थिर कर देती थी। पाद पीठ १ फुट ११ इंच लंबा, १ फुट १ इंच चौड़ा और ५ इंच ऊंचा है। इसके सामने के दोनों कोने टूटे हैं जिससे १, २ और ३ संख्या की पंक्तियों के आदि और अन्त तथा पंक्ति संख्या ४ के आरम्भ के अक्षर नष्ट हो गये हैं। लेख पांच पंक्तियों में विभक्त है जैसे :—

पं० १......२१......आसाढ सुति २ श्री ज......

पं० २......बरगादाना मभ्यन्तरे दानरुद्र मग्रे गृहं मण्डपं मृदापाव...

पं० ३......देव (?) प्रतिमाद्वयं...प.. दान दक्षिन (ण) भाग...

पं० ४.....राज्ये तपस्वि गग्गेन भट्ट विजय कण्ठ शि (ष्ये)

पं० ५......न (ण) प्रतिष्ठितम्

इस लेख में दान की तिथि वर्ष २१ आषाढ़ महीने की शुक्ल द्वितीया, लेख का प्रयोजन और देव प्रतिमा के प्रतिष्ठापक का नाम दिया है। इसमें लिखा है कि पूर्वोक्त तिथि को भट्ट विजयकठं के शिष्य तपस्वि गग्ग ने टान रुद्र मग्र में मण्डपसहित एक आयतन बनवाया और उसमें दो देव प्रतिमाओं की स्थापना की। इसमें उल्लिखित 'टान रुद्र मग्र' नाम कश्मीर की वादी का प्रसिद्ध स्थान टनमर्ग ही प्रतीत होता है।

अभिलेख २—यह लेख पत्थर के एक भारी सिरदल के खंड पर खुदा है। लेख दो पंक्तियों का है। इन में पहली पक्ति अच्छी दशा में है परन्तु दूसरी खंडित है। सिरदल की लंबाई ३ फुट साढ़े ३ इंच, चौड़ाई १ फुट ६ इंच और मोटाई साढ़े १० इन्च है। लेख इस प्रकार है :—

पं० १ ओं सं ३३ आषाढ़ सुति १५ श्री परमाणुदेव राज्ये ब्राह्मण भागवताचार्य जगराजस्य सुपुत्र घग्गेन प्रतिपादितम्।

पं० २............पादितम् थापति लक्ष्मण गात्वातुर।

इस लेख का महत्व यह है कि इसमें दान की तिथि, सामयिक काश्मीर शासक राजा परमाणुदेव का नाम देव प्रतिमा के प्रतिष्ठापक ब्राह्मण जगराज के सुपुत्र तपस्वि-घग्ग का नाम और शिल्पी लक्ष्मण गात्वातुर का नाम भी अंकित है। तपस्वी घग्घ ने लक्ष्मण स्थपति के द्वारा किसी देवायतन अथवा प्रतिमा का निर्माण कराया था। राजा परमाणुदेव राजा जयसिंहदेव का पुत्र था जिसने ई० ११५४ से ११६४ तक काश्मीर पर शासन किया था।

अभिलेख ३—इस लेख की पांच पंक्तियां हैं और लेख भूरे रंग के पत्थर की वर्गाकार भारी शिला पर खुदा है। शिला अच्छी प्रकार घुटी होने के कारण ... है। इस वर्गाकार शिला का मध्य भाग

वर्तुल और उन्नतोदर है। काट में यह शिला नीचे प्रदर्शित आकार की है।

शिला का ऊपर का भाग अत्यन्त घुटा हुआ और चमकीला है जिससे प्रतीत होता है कि वास्तु-रचना में यह शिला सब से चोटी का अंग था और इस पर कोई और वास्तु नहीं रखा जाता था। लेख इस प्रकार है :—

पं० १ ओंनमो भगवते आर्यावलोकितेश्वराय ....
त्रैलोक्यालोकभूताय लोक ।

पं० २......... शतवस्थिद जगदानन्द चन्द्राय लोकनाथाय ते नमः
प्राग्गङ्गेश्वर म ि............

पं० ३ .. मतिमान् वेद्येल्लदेवाभिध श्चक्रे दारुमयं विहार ममलं
श्री लोकनाथा दम् भमि ....

पं० ४ हुत्रापेरा कालवशतो दग्धोथ पक्वेष्टिकाश्रेष्ठं तत्सुतकुल्ल
(ण्ण ?) देवतनयो (यः) स्वं रामदेवो ।

पं० ५ सं ७३ मार्ग शु ति ५

इस लेख में सर्वप्रथम बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर को नमस्कार की गयी है। अनन्तर उल्लेख है कि पहला दारुमय (लकड़ी का) विहार जिसे वेद्येल्लदेव ने बनवाया था अग्निकांड से दग्ध हो गया। कालान्तर में वेद्येल्लदेव के पौत्र और कुल्लदेव के पुत्र रामदेव ने यही विहार इष्टकामय पक्का विहार बनवाने की तिथि जो लेख में दी है वह लौकिक संवत् ७३ मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष की पंचमी है। यह विहार बौद्ध संघाराम था जो लोकनाथ बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की प्रतिष्ठा के लिये बनवाया गया था। निर्दिष्ट तिथि १२वीं या १३वीं सदी ईसवी के समय की प्रतीत होती हैं।

अभिलेख ४—यह लेख एक चतुर्भुज पत्थर की शिला पर तीन पंक्तियों में खुदा है। शिला की लंबाई २ फुट सात इंच, चौड़ाई १ फुट ४ इंच और मोटाई ३ इंच है। इसकी उपलब्धि बारामूला के पास फीरोजपुर नाम गांव में हुई थी जबकि जेहलम नदी के पात्र को मशीनों के द्वारा गहरा किया जा रहा था। लेख इस प्रकार है :—

पं० १ ओं स २५ चैत्र शु ति द्वादश्या।
पं० २ जयसिंह देव राज्य (ज्ये) भटट्गोविन्द।
पं० ३ वामिग पुत्रेन (ण) पुनः प्रकाशितम्।

लेख का विषय यह है कि लौकिक संवत् २५ के चैत्र महीने के शुक्लपक्ष की द्वादशी को, जब राजा जयसिंह देव काश्मीर का शासक था, वामिग (?) के पुत्र भट्ट गोविन्द ने एक देव प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। जयसिंह देव राजा सुस्सल का पुत्र था। इसने ई० ११२८ से ११५४ तक काश्मीर पर शासन किया।

अभिलेख ५—अभिलेख ३ के समान यह लेख भी एक वर्गाकार शिलापट्ट पर अंकित है। इस शिलापट्ट की चोटी भी वैसी ही उन्नतोदर और घुटी हुई चमकीली है। इस शिला के सामने माथे पर खुदे लेख में इस पट्ट को 'मंडलक' के नाम से निर्दिष्ट किया गया है जोकि एक धार्मिक यंत्र था। ऐसे 'मंडल' देवताओं को भेंट चढ़ाये जाते थे अथवा स्वतन्त्र रूप से पूजे जाते थे। लेख इस प्रकार है :—

पं १ ओं सं ५७ वैशाख शु ति ४ परमेश्वरण—
पं० २ देव राज्ये आचार्य कमल श्रियंन (श्रिया) लोके
पं० ३ श्वर भट्टारकं मण्डलकं प्रतिपादितम्।

इसमें लिखा है कि लौकिक संवत् ५७, वैशाख शुक्लचतुर्थी को राजा रणदेव के शासन काल में आचार्य कमलश्री ने यह मंडलक लोकेश्वर भट्टाचार्य (बोधिसत्व अवलोकितेश्वर) को भेंट चढ़ाया। मालूम होता है कि मध्यकाल में काश्मीर की बौद्ध उपासना पद्धति में ऐसे मंडलक बोधिसत्वों के आगे भेंट चढ़ाये जाते थे।

कल्हण की राजतरंगिणी में दी हुई कश्मीर राजावली में रणदेव नाम का कोई राजा नहीं मिलता। इस में रणादित्य नाम का एक राजा अवश्य है जिसने कल्हण की कालगणना के अनुसार ३०० वर्ष राज्य किया। वह गोनन्द राजवंश का था और ईसवी सातवीं सदी के पहले हुआ था। लिपिशैली के आधार पर यह अभिलेख इतना प्राचीन नहीं सिद्ध होता।

अभिलेख ६—यह लेख बोधिसत्व पद्मपाणि की कांसे की मूर्ति के पादपीठ पर अंकित है। मूर्ति १० इंच ऊंची, सवा ७ इंच चौड़ी और अढ़ाई

इंच मोटी है। बोधिसत्व महाराज-लीलासन-मुद्रा में पीठ पर बैठे हैं। उन की बाईं जांघ नीचे लटक रही है और पांव भूमि पर टिका है। दाईं जांघ आसन मुद्रा में सिकोड़ी है और पांव पद्मासन पर स्थित है। लेख इस प्रकार है—

ओं सं ५५ श्रा शु १५ श्री व्र......
दिद्दादेव राज्ये देयधर्मोंय राजानक उपासक भीमपुत्रस्य
तथामरमाता सङ्घादेव्या भ्रातृ सन्तुष्टायस्य (सन्तोद्याय)
सकल स......

इसमें लिखा है कि लौकिक संवत् ५५ में, श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को जब रानी दिद्दा कश्मीर पर शासन कर रही थीं, बोधिसत्व पद्मपाणि की इस कांस्य मूर्ति की स्थापना की गयी, इस उद्देश्य से कि राजानक भीमदेव के (दिवंगत) पुत्र तथा संघा देवी के भाई की आत्माओं को पुण्य की प्राप्ति हो। स्मरण रहे कि रानी दिद्दा ने ई० ९८० से १००३ तक काश्मीर पर शासन किया था।

अभिलेख ७—यह लेख पत्थर के एक वास्तु खंड पर खुदा है जो सम्भवत: स्तम्भ शीर्षक था। इसका प्राप्ति स्थान खोनामूह गांव है जो श्रीनगर से पांच मील दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यह गांव काश्मीर के विख्यात कवि बिल्हण का जन्म स्थान है। लेख केवल एक पंक्ति का और वह भी खंडित है, जैसे—

स २६ आषाढ शु ति २ श्री ल......

लेख से केवल यही पता लगता है कि लौकिक संम्वत २६ आषाढ शुक्ल द्वितीय को किसी देव मूर्ति अथवा मंदिर की प्रतिष्ठा की।

अभिलेख ८—यह लेख भी एक स्तम्भ शीर्षक पर खुदा है और इसका प्राप्तिस्थान भी खोनामूह ही है। लेख केवल एक पंक्ति का नीचे दिया गया है :—यह लेख अभिलेख १ की पं० २ के लेख के समान है।

......वरपादाना मभ्यन्तरे टानरुद्र भार्य गृहमण्डप
सूदापाकं .....

लेख का अभिप्राय यह है कि 'टानरुद्र मार्ग' में देवालय आदि किसी धार्मिक वास्तु के अन्दर पकी मिट्टी का गृहमंडप बनाया गया था।

अभिलेख ९—यह लेख पत्थर के स्तम्भ शीर्षक पर ख़ुदा है और तीन पंक्तियों में विभक्त है जिन में पहली दो पंक्तियां खंडित हैं। लेख इस प्रकार है -

पं० १ ...देव (?) प्रतिमाद्वयं पादानां दक्षिणत: भागे...
पं० २ ...राज्ये तपस्वि गग्गेन भट्टविजयकण्ठ शिष्येन (ण)
पं० ३ प्रतिष्ठितम्

इस में लिखा है कि यह भट्टविजय कंठ के शिष्य तपस्वि गग्ग ने दो देवमूर्तियों की स्थापना की। शासक राजा का नाम लुप्त है। यह बात उल्लेखनीय है कि अभिलेख १ में भी तपस्वि गग्ग के नाम की चर्चा है। परन्तु लेख के खंडित होने के कारण उससे यह मालूम नहीं हो सका था कि भट्ट विजय कंठ का गग्ग के साथ क्या सम्बन्ध था। अभिलेख ८ से स्पष्ट हो गया कि दोनों में गुरु शिष्य भाव सम्बन्ध था। दोनों अभिलेखों का प्रयोजन एक ही है—अर्थात् दो देवमूर्तियां की प्रतिष्ठा।

अभिलेख १०—यह लेख पत्थर के एक खंडित स्तम्भ पर उत्कीर्ण है और अत्यन्त शीर्ण दशा में है। लेख कई पंक्तियों में विभक्त था परन्तु अब इन पंक्तियों के कुछ अंश ही बचे हैं। इस खंडित अभिलेख के नीचे घोड़े का रेखा चित्र बना है और ऊपर त्रिशूल का चिह्न है। लेख के बचे खुचे अंश नीचे दिये हैं।

......वश्चयं.......मयाघ.......
......राज्ये .... धितरहू ...
......थम .... मटकेन (?)
..... यः......ष्वङ्गक......
......पुत्रक......ष्टपुत्री......
......सुता......

अभिलेख ११—वह लेख भी पत्थर के खम्भे पर उकेरा गया था। लेख

के उपर ब्रृत्त के अंदर दस फांकड़ियों वाला एक फूल है । लेख पांच पंक्तियों में विभक्त है—

पं० १ ओं स ७३ आषा

पं० २ ढ शु ति ३

पं० ३ श्री राज्य देवरा

पं० ४ ज्ये रा पुत्र यश (?)

पं० ५ .... य प्रतिष्ठापितम्

खंडित होने के कारण लेख के अभिप्राय को मालूम करना सम्भव नहीं । परन्तु संदेह नहीं कि इसमें लौकिक संवत् ७३ अषाढ़ शुक्ल तृतीया को किसी देवमूर्ति की स्थापना की चर्चा है । शासक राजा का नाम श्री राज्यदेव बनता है ।

सम्भवतः यह राज्यदेव कश्मीर राज वंशावली में दिया हुआ राजा राजदेव ही है जिसने ई० १२१३ से १२३६ तक शासन किया ।

अभिलेख १२ – यह लेख एक शिला पट्ट पर खुदा है और तीन पंक्तियों में विभक्त है । लेख के उपर रिक्त स्थान में एक योधा की मूर्ति है जिसने लम्बा अंगरखा पहना है जो घुटनों के नीचे तक घाघरे के समान फैला है । अंगरखे की बाहें लंबी है और कटि में योधा कमरबंद पहने है । जांघों में चुस्त पाजामा है योधा दर्शक की ओर पीठ मोड़ कर खड़ा है । उसके बाएं हाथ में भाले के समान कोई शस्त्र है । और दायां हाथ उसने अपनी कमर पर रखा है । लेख यद्यपि शारदा लिपि में है परन्तु असावधानी से उकेरा जाने के कारण पढ़ा नहीं गया । पंक्ति ३ में अंतिम पांच अक्षर 'अगेन कृतं' प्रतीत होते हैं, जिसका अर्थ है 'अग ने बनाया' । पं० २ के आरम्भ में 'ओं सं ५४' अक्षर डी पढ़े जाते हैं जिसका अर्थ है 'लौकिक संवत् ५४' शेष अभिलेख का पढ़ना सम्भव नहीं ।

अभिलेख १३—यह लेख लाल रंग के बलुए पत्थर की शिला पर अंकित था जिसके अब सात खंड ही शेष हैं । कुछ खंडों पर जो लेख उत्कीर्ण हैं उन में 'कपिलरोच'...'सुरासुर' 'धरित्सागर' मनोरथ आदि शब्द पढ़ गये है । परन्तु इन अकेले

अकेले शब्दों से कोई सुसम्बद्ध अर्थ नहीं बनता। शिला के सात खंड इस समय संग्रहालय की एक अलमारी में रखे हैं।

अभिलेख १४—यह लेख पत्थर की खंडित देवी के पादपीठ पर खुदा है। मूर्ति ८ इंच ऊंची और कंधों के पास ५ इंच चौड़ी हैं। लेख दो पंक्तियों में विभक्त है :—

पं० १·······म्भ········ महापद्माख्यायन्य त्रिभ(ज ?) य······

पं० २ ति श्रीमद् ज्येष्ठेशस्य पुरः प्रभोः अ········

शिलालेख का सम्भावित अभिप्राय महापद्म नाम पुत्र के द्वारा ज्येष्ठेश के स्थान में देवी की मूर्ति का प्रतिष्ठापन है। प्रतिष्ठाता शैव सम्प्रदाय का था और उसने यह मूर्ति श्रद्धा से ज्येष्ठेश के स्थान पर प्रतिष्ठित की। ज्येष्ठेश स्थान की एकात्मा वर्तमान ज्येष्ठेश्वर के मंदिर के साथ ही हो सकती है जो शङ्कराचार्य पहाड़ी पर है। इस पहाड़ी का प्राचीन नाम गोपाद्रि था।

अभिलेख १५ यह लेख एक काले पत्थर के शिलाखंड पर उत्कीर्ण है। इस पर लिखी आठ पंक्तियों के कुछ प्रारम्भिक अक्षर ही बचे हैं। शेष सारा लेख नष्ट हो चुका है। उत्कीर्ण शिला खंड की लंबाई $6\frac{3}{4}$ इन्च और चौड़ाई ४ इन्च है। यह खंड भी एक अलमारी में प्रदर्शित है। लेख आठ पंक्तियों में विभक्त है। इन पंक्तियों के एक से लेकर चार तक ही अक्षर बचे हैं, शेष टूटे हुए खंड के साथ ही नष्ट हो चुके हैं। लेख इस प्रकार :—

पं० १ स्यन्द सुन्द ·····..........

पं० २ त्वया पर···············

पं० ३ यदि······ ....

पं० ४ दकं—f ····· ....

पं० ५ का इ·················

पं० ६ श्वं·················

पं० ७ पा···············

पं० ८ क···············

अभिलेख १६—श्रीनगर संग्रहालय में कच्ची मिट्टी की बनी कुछ गोल मुद्राछापें हैं जिन पर निम्नलिखित बौद्ध मंत्र अंकित हैं :—

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतः प्राह।
तेषां च यो निरोधः एवंवादी महाश्रमणः ॥

अर्थ– भगवान बुद्ध ने उन सब कार्यों का हेतु बतलाया है जो कारणों से उत्पन्न होते हैं, और उन कारणों के निरोध का उपाय भी बतलाया है।

अभिलेख १७—यह एक पंक्तिमय नागरी लेख राम लक्ष्मण सीता की पाषाणमयी मूर्ति पर खुदा है —

ओं राम लक्ष्मण सीतय नमः

अभिलेख १८—यह एक पंक्तिमय शारदा लेख एक बड़े माट के खंड पर खुदा है। लेख इस प्रकार है—

महाश्री अन्तिवर्म घट १५०३ (?)

लेख से पता चलता है कि यह महाघट श्री अन्तिवर्म नाम किसी व्यक्ति का था। लेख के अन्त में दी संख्या सम्भवतः घट के परिमाण की सूचक है कि अमुक संग्रह भांड में इतना धान्य या अन्य पदार्थ समा सकता था।

अभिलेख १९ —यह नागरी लेख एक काले शिला पट्ट पर खुदा है। इसमें छः संस्कृत श्लोक समाविष्ट हैं जिनकी रचना विक्रम संवत् १९६४ में आषाढ़ पूर्णिमा के दिन भगवान् अमरनाथ की स्तुति में महाराजा चन्द्र चूड़ सिंह वर्मा ने की थी। इस स्तोत्र का नाम 'अमर नाथ स्तोत्र पंच रत्न' है। इसकी रचना उन्होंने वि० १९३४ में अपनी अमरनाथ यात्रा की स्मृति में की थी। महाराजा चन्द्र चूड सिंह अवध प्रान्त में स्थित चंटाशर नाम जागीर के स्वामी थे। तारीख कुछ संदिग्ध है परन्तु फिर भी वि० १९६४ के कासपास ही दिखाई देती है।

अभिलेख २० -यह लेख काले पत्थर की एक चौपहल शिला पर खुदा है जिसका ऊपर का भाग महराब के आकार का है। यद्यपि चतेरे ने लेख बहुत बुरी तरह उकेरा है और संस्कृत भी बहुत अशुद्ध है

फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से लेख महत्वपूर्ण है। लेख १७ पंक्तियों में विभक्त है जिनमें अंतिम ६ पंक्तियों के अन्तिम भाग थोड़े बहुत नष्ट हो चुके हैं। लेखक और चतेरे के प्रमाद से तथा लेख के खंडित होने के कारण अभिलेख का प्रयोजन निस्सन्दिग्ध रूप से मालूम नहीं हो सका है. तथापि कहीं कहीं अंशत: लेखक के आशय का आभास अवश्य हो गया है। सम्भवत: लेख में जनता के हित के लिये एक कूप[१] की प्रतिष्ठा की गयी है। कुएं का निर्माण और प्रतिष्ठा काश्मीर के शासक सुलतान शिहाबुद्दीन के काल में हुई थी। यह सुलतान ई० १३५४ से १३७३ तक काश्मीर का प्रतापी शासक रहा और इसने न केवल समस्त कश्मीर पर ही निष्कंटक राज्य किया किन्तु काश्मीर-मंडल के बाहर भी कई देशों को जीत कर अपने अधीन कर लिया। लेख इस प्रकार है।

पं० १ वौदाभिधा पुण्यमिदं चकार········ए

पं० २ भज्ञदेव गटि सिंगवेन ग्रहितं धा········

पं० ३ शिखिगणजाजक: स ४५ वे वति ११ गुरुवारे

पं० ४ ओं स्वस्ति गुगुओं नमो विग्रहार्त्ती यश्चाहीन म

पं० ५ पु र पुष्करजन: हेरम्भो (म्बो) द्यान्महाविघ्नतृणं वह्निक

पं० ६ णोरिव⁀०⁀अपवत्रग्रहावत् जा गृहीता ह्यग्रविग्रहा:

पं० ७ जीवाश्चिन्मानृमहिमा महिमात्रि (तृ) सुतापति: ।। १ ।। अस्ति

पं० ८ स्वस्ति स(सु)खस्तरे पुन्य (ण्य) कश्मीर मण्डले शाहा-भदेनो राजेन्द्रश्श्रीमत्या—

पं० ९ ण्डववंशशज: ।।१।। प्रतापाग्नि विशरपेन द्रागित: घूर्णिमा ता लापु—

पं० १० पूरिता श्चन्द्रायुतशुद्धा यशोभरै: ।।२।। य·· श्चण्डकोदण्ड ज्याघो—

---

[१] श्रीनगर संग्रहालय के अध्यक्ष श्री जरहिरलाल मान से पता लगा कि यह लेखांकित शिला एक कुएं की दीवार में लगी थी। इसलिये लेख की पहली पंक्ति में निर्दिष्ट पुण्यकार्य कुआं ही हो सकता है।

पं० ११ बाकर्णनाकुल: दूरं यान्ति द्विषद्वंशा गजोन्मत्तस्य शङ्कया हाज

पं० १२ त्रासहा येन मद्रानां (णां) मही जिता श्रीगोपण्यादि विजय कथोत्कण्ठा त्रिदश

पं० १३ णा यस्य सौकर्य सव्रत्रा खननदीमता (?)श्रीजयन्ती…f…

पं० १४ णेनेव राघव: । स्रितजयप्रीति गखिनस्य ……

पं० १५ महाकण्ठ मत्रुति वादिनात्र । दौवारि ……

पं० १६ दर्पशठा (?) सहृदया………ते ये ………

पं० १७ ज्ये वै आख क्षत्रपण (कृपण ?) द्विदश (?)………

पूर्वोक्त लेख की पंक्ति १ में वर्णन है कि किसी महिला ने, जिसका नाम सम्भवत: यशोदा था यह पुण्यकार्य (कूप खनन) कराया । पं० ३ में इस पुण्य कार्य की प्रतिष्ठा की तिथि लौकिक संवत् ४५, वैशाख कृष्ण पक्ष की एकादशी, गुरुवार, दी है । ४ से ७ तक की पक्तियां गणेश की स्तुति में हैं जो विघ्नों का नाश करके सकल शुभकार्यों में सिद्धि प्रदान करते हैं । हेरम्ब विघ्नों का ऐसे नाश करते हैं जैसे अग्निज्वाला तृणों की राशिका । ८ से १७ तक की पंक्तियों में काश्मीर से समकालीन शासक सुलतान शिहाबुद्दीन की प्रशंसा की गयी है । ८ और ९ पंक्तियों में शिहाबुद्दीन को पांडव वंज कहा गया है । शायद सुलतान अपने को पांडववंशज कहलाने में गौरव समझता था, इसलिये कि विख्यात पांडव वंश में पैदा होने के कारण उसका काश्मीर के सिंहासन पर अधिकार न्याय संगत था, और हिन्दू राजवंश को मिटा कर जो उसका पूर्वज इस राज्य पर अधिकृत हो गया उसमें कोई अन्याय नहीं हुआ । ८ से १४ तक की पंक्तियों में सुलतान की वीरता और विजयों का वर्णन है । इनमें लिखा है कि उसके प्रखर प्रताप भानु के ताप को न सह कर उसके शत्रु दूसरे देशों को चले गये । उसके विजयघोषों ने दिग्दिगन्तरों को पूरित किया और उसके शुभ्र यश की धवलिमा ने हजारों चन्द्रमाओं की धवलिमा का तिरस्कार करके संसार को शीतल और आनन्द से पूर्ण कर दिया । रण में उसके धनुष की टंकार को सुनकर भयभीत उसके शत्रु पीठ दिखाकर भाग निकले इस शंका से कि उनके पीछे मदमत्त चिंघाड़ते हाथी आ रहे थे । पं० १४ में सुलतान को राघव (राम) से उपमित

किया गया है यह दिखलाने से लिये कि वह धुनुर्विद्या में राम के समान था।

पंक्ति १२ में वर्णन है कि सुलतान ने मद्र देश जीता (मद्राणां मही जिता)। कुछ विद्वानों के मत में मद्रदेश व्यासा और वितस्ता के मध्य में था, लेकिन दूसरों के मत में चन्द्रभागा और व्यासा के मध्य में पड़ता था। ऐसा प्रतीत होता है कि मद्रदेश व्यासा और चन्द्रभागा के बीच का प्रदेश था जो हिमालय की बहिर्गिरि (कंडी) पहाड़ियों के मूल से लेकर मुलतान तक फैला था। महाभारत के कर्ण पर्व में वर्णन है कि मद्रदेश शमी पीलु और करीर के वनों से अटा पड़ा था (शमी-पीलु-करीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु)। इन वृक्षों के वन पंजाव के उस उदेश में मिलते हैं जो इस समय मुलतान, मंटगुमरी, लायलपुर आदि जिलों से व्याप्त है। यह प्रदेश मद्रदेश के अन्तर्गत था। पहाड़ियों वाला उत्तर का इलाका जो यथाक्रम अन्तर्गिरि और वहिर्गिरि कहलाता था दार्व के नाम से विदित था। चन्द्रभागा और वितस्ता (जेहलम) के बीच का इसी प्रकार का पहाड़ी इलाका अभिसार कहलाता था। व्यास और वितस्ता के बीच का सारा पहाड़ी इलाका दार्वाभिसार के नाम से विख्यात था। निष्कर्ष यह निकला कि जम्मू के उत्तर पहाड़ी इलाका मद्रदेश के अन्तर्गत नहीं था। देविका माहात्म्य आदि आधुनिक माहात्म्य पुस्तक में अगर कहीं इसे मद्र कहा गया है तो यह ग्रंथकर्ता की भूल ही मालूम होती है। क्योंकि यह महाभारत, पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों की मान्यता के विरुद्ध है।

पूर्वोक्त अभिलेख में लिखा है कि सुलतान शिहाबुद्दीन ने मद्रदेश जीता और इसे काश्मीर राज्य में मिला लिया। डाक्टर फ्लीट के अनुसार मद्रदेश की राजधानी शाकल थी जो आपगा नाम नदी (आधुनिक 'ऐक') पर बसा था*।

---

* शाकलं नाम नगर मापगा नाम निम्नगा
जर्तिका नाम वाह्लीका स्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम्
धाना गौडासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह
अपूप मांस वाटयाना-माशिनः शीलवर्जिताः
गायन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रिो मत्ता विवाससः

डाक्टर फ्लीट और जनरल कनिंघम ने शाकल नगर की एकात्मता वर्तमान स्यालकोट से की है। महाभारत के अनुसार शल्य मद्रदेश का राजा था और शाकल उसकी राजधानी थी। महाभारत तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में मद्रदेश के निवासियों को कई नामों से निर्दिष्ट किया गया है, जैसे मद्र, आरट्ठ, जार्त्तिक, वाहीक, बाल्हीक आदि।

उत्तर काल की तीन राजतरंगिणियों में, जिनके कर्ता क्रमशः जोनराज श्रीवर और प्राज्यभट्ट हैं, कुछ ऐसे वर्णन हैं जिनसे पता लगता है कि काश्मीर के सुलतानों के शासनकाल में मद्रदेश कश्मीर राज्य का अंग था और सुलतानों ने मद्रदेश के हिंदू राजाओं की लड़कियों से विवाह सम्बन्ध भी किये थे। श्रीवर की राजतरंगिणी में वर्णन पाया जाता है कि बुत-शिकन सुलतान सिकदर (ई० १३८८-१४१३) के बेटे नूरखान ने मद्रदेश के राजा की लड़की से शादी की थी। अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर वह सुलतान अलीशाह के लकब से काश्मीर के सिंहासन पर बैठा। उसे उसके छोटे भाई शाहीखान ने तखत से उतार दिया और वह स्वयं सुलतान जैन-उल-आबिदीन के नाम से काश्कीर के सिंहासन पर बैठ गया। तखत खोकर अलीशाह अपने ससुर मद्रदेश के राजा की शरण में चला गया। श्रीवर ने इस राजा का नाम महेंद्र दिया है।

अपनी 'हिस्टरी ऑफ काश्मीर' में श्री बमज़ाई ने लिखा है कि सुलतान जैन-उल-आबिदीन (ई० १४२०-७०)* ने जम्मू के राजा की लड़की से विवाह किया जिसने चार पुत्रों को जन्स दिया। इन के नाम यथाक्रम आदमखान, हाजी, जसवत और बेहराम थे। आदमखान जो सब से बड़ा था अपने मामा मद्र के राजा माणकदेव के पास रहने लगा और वहीं एक लड़ाई में मारा गया। यही इतिहासकार आगे लिखता है कि अपने स्वामी सुलतान हसनशाह (ई० १४७२-८४) को दोबारा काश्मीर के सिंहासन पर बैठाने के लिये सेनापति ताज़ीभट्ट ने जम्मू के लोगों से अंगी सहायता ली थी। जम्मू की डोगरा सेना की मद्द से उसने स्यालकोट पर भी आक्रमण किया और उसे लूटा। इसी पुस्तक में पुनः उल्लेख है कि जब

---

* द्वितीय और तृतीय राजतरगिणियों के कर्ता जोनराज और श्रीवर सुलतान जैन-उल-अबिदीन के राजकवि थे।

पंजाब के लोदी पठान गवर्नर ने डोगरा देश को सताना शुरू किया तो डोगरों ने काश्मीर के सेनापति ताजी भट्ट से सहायता मांगी। पुनः जब अल्पायु सुलतान मुहम्मद शाह (ई० १४८४-८६) के शासन काल में वज़ीर सय्यद हसन काश्मीरियों पर अत्याचार कर रहा था तो काश्मीर की जनता ने जम्मू से सैनिक सहायता मांगी। श्रीवर लिखता है कि इस मांग पर जो मद्रदेश की सेना कश्मीर में आई उसके सिपाही नाटे कद के थे परन्तु रणभूमि में अजेय थे। इस मद्र सेना का नेता परशुराम था।

श्रीवर पुनः लिखता है कि जैन-उल-अबिदीन के बड़े बेटे आदमखान के पुत्र फतेहखान को पिता की मृत्यु के अनन्तर उसके मामा मद्रराज ने पाला था। उसे काश्मीरी जनता ने काश्मीर में बुलाकर अपना सुलतान बनाया और वह सुलतान फतेहशाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। उसने ई० १४८६ से १४९३ तक शासन किया। पूर्वोक्त राजतरंगिणियों में जहां कहीं भी वर्णन आता है कि काश्मीर के अमुक सुलतान ने मद्र के राजा की लड़की ब्याही, उसे मुसलिम इतिहासकारों और लेखकों ने जम्मू के राजा की लड़की समझा है। अर्थात् 'मद्र' शब्द को 'जम्मू' के अर्थ में लिया है।

मेरे विचार में यह न्याय-संगत नहीं है कि 'मद्र' शब्द को जम्मू का वाचक समझा जाए। इसमें पहली आपत्ति यह है कि जम्मू और इसके इर्द-गिर्द का पहाड़ी 'डुग्गर' प्रान्त मद्र देश के अन्तर्ग नहीं था। डुग्गर के निवासी डोगरा लोग जातीयता तथा आचार विचार की दृष्टि से मद्रदेश के लोगों से नितान्त भिन्न थे। डोगरा लोग शुद्ध आर्य जाति के थे, और मद्र देश के लोग, जो आरट्ट जात्ति और बाल्हीक नामों से विदित थे, अनार्य एवं म्लेच्छ समझे जाते थे। इस प्रदेश का प्राचीन नाम दार्व था, जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है। इस पक्ष की पुष्टि में जो अन्य प्रमाण दिये जा सकते हैं वे निम्नलिखित हैं :—

महाभारत में मद्रदेश का जो भौगोलिक विवरण दिया गया है यह सिद्ध करता है कि इसमें जम्मू और साथ का पहाड़ी डुग्गर इलाका शामिल नहीं था। महाभारत कर्णपर्व में कर्णशल्य संवाद प्रसंग में कर्ण मद्रदेश की इस प्रकार निन्दा करता है :—

वाहीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन् वाक्य मब्रवीत्

बहिष्कृता हिमवता गंगया च बहिष्कृता:

सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षोत्रेण चापि च ।।

इस उद्धरण में स्पष्ट लिखा है कि मद्रदेश हिमालय से बाहर मैदानी इलाका है । और गंगा, यमुना, सरस्वती तथा कुरुक्षेत्र ने भी इस देश को दूर से त्याग दिया है ।

वनस्पति-सम्पत्ति की दृष्टि से भी सिद्ध होता है कि जम्मू का डुग्गर प्रान्त मद्र देश के अन्तर्गत नहीं था । जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है, मद्र देश शमी, पीलु और करीर वृक्षों के वनों से आवृत था, परन्तु जम्मू के अन्तर्गिरि और बहिर्गिरि (कंडी) के प्रदेश में फुलाही, बबूर, वेर, गर्ना, वासा आदि भिन्न जाति के वृक्ष गुल्म पाये जाते हैं । कर्ण पर्व में मद्र देश के वर्णन प्रसंग में लिखा है :—

शमी पीलु-करीराणां वनेषु सुख वर्त्मसु
अपूपान् सक्तु-पिण्डांश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान्
पंच नद्यो वहन्त्येतां यत्र पीलु वनान्युत
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान्व्रजेत्

(कर्ण० प० अध्या. ४४)

तीसरी बात यह है कि मद्रदेश के नरनारी खाने पीने में गौ मांस, लहसन, और मदिरा का अनर्गल प्रयोग करते थे । रात को स्त्रियां नग्न होकर सामूहिक रूप से नाचती थीं और साथ ही 'हाहता' 'हाहता' ऐसे कहती जाती थीं[१] मंटगुमरी और मुलतान के जिलों में अनार्य स्त्रियां आज भी ऐसा करती हैं । इसी कारण महा भारत में लिखा है कि मद्र देश के लोग अनार्य, वेदवाह्य और व्रात्य थे । यही कारण हैं कि कर्ण शल्य को 'कुदेशज' और 'पापदेशज' के विशेषणों से पुकारता है । एक रात भी इनके साथ रहकर

---

१. नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिम्
कदा वाहेयका गाथा: पुनर्गास्यामि शाकले ।
पलाण्डु-गण्डूष युतान् खादन्ती चैडकान् बहून्
वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्य-गार्दभ-मौष्ट्रिकम्
ऐद्रं च येन खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ।। कर्ण०, अ० ४४
हे हते हे हतेत्येवं स्वामि भर्तृ हतेति च
आक्रोशन्त्य: प्रनृत्यन्ति व्रात्या: पर्व स्वसंयता: कर्ण०, अ० ४४

कार्य लोग अपने को प्रायश्चित का अधिकारी समझते थे । इसके विपरीत डुग्गर देश के निवासी पूर्ण रूप से वैदिक आर्य थे । उनका रहन-सहन वेशभूषा, आचार-विचार सब आर्य जनोचित थे और आज भी हैं । उनकी भाषा भी संस्कृत का अपभ्रंश है और डोगरी के कई शब्द वैदिक संस्कृत से तुलना रखते हैं। उनके श्रौत स्मार्त संस्कार भी शुद्धरूप से प्राचीन आर्य परम्परा का अनुसरण करते हैं।

मेरे विचार में जोनराज, श्रीवर और प्राज्य भट्ट की राजतरंगिणियों में जहां कहीं यह वर्णन मिलता है कि अमुक काश्मीर के सुलतान ने मद्रराज की लड़की से शादी की उसका यही अर्थ लेना चाहिये कि उसने स्यालकोट के राजा की लड़की से शादी की 'क्योंकि' मद्रदेश की राजधानी शाकल अर्थात् स्यालकोट थी। कश्मीर के सुलतानों के शासनकाल में स्यालकोट एक समृद्ध नगर था। एक और विचारणीय विषय यह है कि ग्यारहवीं सदी ईस्वी में जम्मू के आस-पास का पहाड़ी इलाका (डुग्गर) दुर्गर के नाम से विदित था। इसका समर्थन चम्बा राज्य से प्राप्त साहिल्ल वर्मन् के ताम्रपट्ट से होता है। इसमें राजा साहिल्ल वर्मन् के दुर्गर. सौमटिक, कीर और तुरुष्कों पर विजय प्राप्ति का वर्णन है[१]। अब ग्यारहवीं सदी में डुग्गर प्रान्त का दुर्गर नाम प्रचलित था तो ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता जिससे १४वीं सदी में इसका नाम अकस्मात् मद्र पड़ गया हो और राज्यभट्ट की चौथी राजतरंगिणी के काल (१६वीं सदी) तक व्यवहार में आता रहा हो।

श्रीवर की राजतरंगिणी के अनुसार सुलतान सिकंदर बुतशिकन के बेटे नूरखान ने मद्र के राजा महेंद्र की लड़की से शादी की । मुसलिम इतिहासकारों ने मद्र को जम्मू से मिला दिया है । राजा अवतारदेव (ई० ११वीं सदी) से लेकर जम्मू के डोगरा राजाओं की वंशावली में 'महेंद्र' नाम का कोई राजा उपलब्ध नहीं होता । श्रीवमजई ने अपनी 'हिस्टरी आफ काश्मीर' में लिखा है कि सुलतान जैन-उल-आबिदीन ने जम्मू के राजा माणिक देव की बेटी से शादी की । जम्मू की राजवंशावली में ई० १४वीं और १५वीं सदियों में इस नाम का भी कोई राजा नहीं मिलता।

---

१. चम्बा ताम्रपट्ट, सम्पादक प्रो० कीलहार्न,
पत्रिका -- इंडियन ऐंटिक्वरी, १८८८, पृ० ६

श्रीवर की राजतरंगिणी में यह भी लिखा है कि सुलतान मुहम्मद शाह के शासनकाल (१४८४-८६) में जब वजीर सैय्यद हसन काश्मीरियों पर अत्याचार कर रहा था तो लोगों ने मद्र देश से सेना की मदद मांगी और मद्र राज ने परशुराम की अध्यक्षता में सेना भेजी थी । यह परशुराम बाहु के राजा जगदेव का पुत्र परशुराम देव नहीं हो सकता, क्योंकि बाहु का परशुराम देव ई० १७वीं सदी में हुआ और मद्रदेश का परशुराम १५वीं सदी में फौज लेकर कश्मीर गया था । अत: यही निष्कर्ष निकलना है कि मद्र देश का परशुराम स्यालकोट के राजा का सेनानी होगा ।

पूर्वोक्त साक्ष्य के आधार पर यही प्रतीत होता है कि 'मद्र' शब्द जम्मू का पर्यायवाची नहीं हो सकता । मेरे विचार में जहां कहीं राज-तरंगिणियों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि काश्मीर के अमुक सुलतान ने मद्र देश के राजा की लड़की व्याही तो वहां यही समझना चाहिये कि यह विवाह सम्बन्ध काश्मीर के सुलतान और मद्र देश की राजधानी शाकल (स्यालकोट) के शासक राजवंश के बीच हुआ होगा ।

लेखक परिचय—

१ डा० सिद्धेश्वर वर्मा एम० ए० शास्त्री, डी० लिट (लण्डन)
पद्म भूषण, विद्यावाचस्पति,
आदरी संरक्षक, डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, जम्मू
Academic Adviser
विश्वेश्वरानन्द वैदिक संशोध संस्थान होशियारपुर
उपकार्यालय चण्डीगढ़।

२ प्रो० गौरीशंकर एम० ए० शास्त्री, बी० लिट (आक्सन)
रिटायर्ड प्रिन्सीपल, पी० इ० एस० (१),
रिसर्च स्कालर, ५४४, सैक्टर १६ डी०, चण्डीगढ़।

३ श्री धर्मस्वरूप गुप्त एम० ए०, पी० एच० डी०,
रिसर्च स्कालर, हिन्दी विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़,
मन्त्री शब्द ब्रह्म परिषद,
१४, टीचर्ज फ्लैट्स, सैक्टर १४ चण्डीगढ़।

४ श्री वेदप्रकाश शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०
विद्यावाचस्पति, पी० इ० एस०
संस्कृत प्राध्यापक गवर्नमेण्ट कालेज संगरूर।

५ प्रो० रामनाथ शास्त्री एम० ए० शास्त्री, एम० ओ० एल०
अध्यक्ष संस्कृत विभाग, मौलाना आज़ाद मैमोरियल कालेज, जम्मू।
प्रधान डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, जम्मू
३५, कर्ण नगर, जम्मू।

६ प्रो० शक्ति शर्मा एम० ए० प्रभाकर, साहित्य-रत्न,
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, गवर्नमेण्ट कालेज फार विमन, जम्मू।

उपप्रधान डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, जम्मू।
१५६, विजयगढ़, जम्मू।

७ श्री केदारनाथ शास्त्री एम० ए० शास्त्री,
अवकाश प्राप्त पुरातत्व विभाग भारत सरकार,
भूतपूर्व प्रधान डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट जम्मू
ऋषि भवन, पटेल चौक, जम्मू ।

८ श्री कार्तिक प्रसाद डोगरा,
भाषा विज्ञान के प्रौढ़ पण्डित,
महावीर प्रसाद द्विवेदी की पीढ़ी के लेखक,
'विश्वमित्र' कल्कत्ता के भूतपूर्व सम्पादक
६, कल्लम बाग, मुज़फ्फर नगर (विहार)

९ प्रो० गंगादत्त विनोद एम० ए० शास्त्री, साहित्याचार्य
प्राध्यापक अमरसिंह कालेज, श्रीनगर ।

१० श्री धर्मचन्द्र प्रशान्त
प्रौढ़ पत्रकार पी०टी०आई० के प्रतिनिधि तथा डोगरी और
हिन्दी के लेखक ३५, विजयगढ़, जम्मू

११ प्रो० सत्यपाल श्रीवत्स एम० ए० शास्त्री एम० ओ० एल०
प्राध्यापक हिन्दी संस्कृत, गवर्नमेण्ट कालेज कठूआ ।

१२ श्री शिवकुमार शर्मा एम० ए० साहित्य-रत्न, बी० एड०,
मुख्याध्यापक, गवर्नमेण्ट स्कूल झज्जर कोटली जम्मू ।

१३ श्री चरणसिंह,
डोगरी के उदीयमान रुतण कवि
सीनियर लिट्रेरी असिस्टैण्ट डोगरी विभाग
कल्चुरल अकाडमी, जम्मू ।

१४ श्री श्यामलाल शर्मा बी० ए० बी० टी० प्रभाकर बी० लिङ०,
मुख्याध्यापक, ओरियण्टल एकेडमी, जम्मू
रिसर्च स्कालर,
मन्त्री डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, जम्मू ।

डोगरी के कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन

त्रिवेणी डोगरी भाषा, संस्कृति ते साहित्य (निबन्ध संग्रह)
ले० शक्ति शर्मा, श्याम लाल शर्मा
श्रीपति प्रकाशन विजय गढ़, जम्मू । 3/-

मेघदूत, (महाकवि कालिदास की अमर कृति)
अनु० श्यामलाल शर्मा
श्रीपति प्रकाशन, विजय गढ़ जम्मू । 2/-

An Introduction to Modern Dogri Literature
by
Nilambar Dev Sharma
Cultural Academy, Jammu. 6/06

An Introduction to Dogri Folk Literature and Pahari Art. *by*
Lakshmi Narayan & Sansar Chand Sharma
Cultural Academy, Jammu. 7/22

डोगरी लोक गीत (३ भाग)
सम्पादक नीलाम्बर देव शर्मा तथा केहरि सिंह 'मधुकर'
कल्चुरल अकाडमी जम्मू । 6/-, 3/31, 3/90

Shadow & Sun Light
by
Dr. Karan Singh
Asia Publishing House, Bombay. 14/-

ब्रह्मसंकीर्तन
ले० स्वामी ब्रह्मानन्द तीर्थ
रिसर्च पब्लिकेशन डिपार्टमेंट श्रीनगर । 8/-

डोगरी भाषा और व्याकरण
ले० बन्सी लाल गुप्ता
कल्चुरल अकाडमी जम्मू 5/-

भर्तृहरि वैराग्य शतक
अनु० रामनाथ शास्त्री
डोगरी संस्था जम्मू ।